संक्षिप्त जायसी

(महाकवि जायसी के पदुमावति काव्य का संक्षिप्त संस्करण)

सम्पादक

शम्भूदयाल सक्सेना, 'साहित्य-रत्न'

कन्हैयालाल शास्त्री, एम० ए० (संस्कृत-हिन्दी)

प्रकाशक

लक्ष्मीनारायण अग्रवाल

पुस्तक प्रकाशक और विक्रेता

आगरा

लक्ष्मीनारायण अग्रवाल
पुस्तक - प्रकाशक
आगरा

नवीन संशोधित संस्करण
१९६०
मूल्य रु० ३.५०

मुद्रक
प्रेम प्रिंटिंग प्रेस,
आगरा

भूमिका

मलिक मुहम्मद जायसी की गणना हिन्दी के श्रेष्ठ कवियों में है। उनका स्थान सूर और तुलसी के पश्चात् ही समझा जाता है। उनका 'पदुमावति' काव्य हिन्दी की एक अत्यन्त सरस कृति है।

इतने महत्त्वपूर्ण कवि होने पर भी जायसी का पठन-पाठन बहुत कम देखा जाता है। उनकी सरस रचना का परिचय हिन्दी के बहुत कम छात्रों को हो पाता है। परीक्षाओं में जायसी को प्रायः स्थान नहीं दिया जाता। अवश्य ही इसके कारण हैं। 'पदुमावति' बहुत बड़ा काव्य है और भाषा की दृष्टि से भी पाठकों के लिये कठिन पड़ता है। छात्रों की आवश्यकता की पूर्ति करने वाला संक्षिप्त संस्करण तैयार करने की ओर भी विद्वानों का ध्यान नहीं गया। बहुत वर्षों पूर्व श्री श्यामसुन्दरदास का 'संक्षिप्त पदमावत' प्रकाशित हुआ था पर संक्षिप्त होने हुए भी वह काफी बड़ा था और साथ में टिप्पणियाँ भी बहुत संक्षिप्त थीं।

'पदुमावति' का यह संस्करण विशेषतः छात्रों के लिए प्रस्तुत किया गया है। काव्य को पर्याप्त संक्षिप्त कर दिया गया है पर संक्षेप करते समय दो बातों का ध्यान रखा गया है—

(१) काव्य का कथा-प्रवाह विच्छिन्न न होने पावे, और

(२) काव्य के सरस एवं भावपूर्ण अंशों को यथासंभव अधिक-से-अधिक स्थान दिया जाय।

साथ में अर्थ को स्पष्ट करने वाली विस्तृत टिप्पणियाँ दी गयी हैं जिनसे छात्रों को काव्य के हार्द को हृदयंगम करने में सहायता मिलेगी। आरंभ में एक विस्तृत प्रस्तावना में कवि तथा काव्य की बहुमुखी विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है।

आशा है यह संस्करण अपने उद्देश्य की पूर्ति में सफल होगा।

—संपादक।

विषय-सूची

प्रस्तावना

मलिक मुहम्मद जायसी और उनका पदमावत

(१) जीवन-परिचय और रचनाएँ

जायसी का पूरा नाम मलिक मुहम्मद जायसी था। मलिक उनकी वंशानुगत उपाधि थी। मुहम्मद नाम था। अवध प्रान्त के अन्तर्गत जायस नामक स्थान में रहने के कारण वे जायसी कहलाये। उनके सम्बन्ध में विशेष ज्ञातव्य बातो का अभाव है। स्वय उन्होंने जहाँ-तहाँ प्रसंगवशात् अपने सम्बन्ध में कुछ लिख दिया है, उसके एव विद्वानो की खोज के आधार पर ही उनका जीवनवृत्त सकलित किया गया है। उसमें सुधार और सस्कार की गुंजायश है। अभी तक उनके माता-पिता और जन्म-तिथि तक का ठीक-ठीक निश्चय नही हो सका। अपने निवास-स्थान के सम्बन्ध में स्वयं उनका कथन है—

जायस नगर धरम असथानू।
तहाँ आइ कवि कीन्ह बखानू॥

उनके जन्म-समय का निर्देश भी उन्ही को 'आखिरी कलाम' नामक पुस्तक में मिलता है। यह पुस्तक बादशाह बाबर के समय में १५२८ ई० के आसपास लिखी गयी थी। इस पुस्तक में वे लिखते हैं—

भा अवतार मोर नव सदी।
तीस बरस ऊपर कवि बदी॥

अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'पदमावत' के रचना-काल के विषय में वे लिख गये है—

सन नव सै सैंतालिस अहा।
कथा-अरभ-वेन कवि कहा।

इस कथन के अनुसार उनका जन्म सन् ९०० हिजरी अर्थात् ईस्वी सन् १४९२ के लगभग ठहरता है। जायसी ने अपने पदमावत काव्य के आरम्भ में सृष्टि और सृष्टिकर्ता को याद करने के बाद फारसी के मसनवी काव्य की परम्परा का अनुकरण करते हुए 'शाहेवक्त' शेरशाह की भी प्रशंसा की है और चूँकि शेरशाह के शासनकाल का आरम्भ १५४० ईस्वी से होता है, इसलिए यही समय जायसी का भी समझना चाहिए।

एक प्रचलित जनश्रुति के अनुसार उनका जन्म एक दरिद्र कुल में हुआ था। जब वे सात वर्ष के बालक थे तभी उनके शीतला का प्रकोप हुआ। उस बीमारी में उन्हे प्राण सकट तक उपस्थित हो गया। उनकी माता ने मकनपुर के शाहमदार की मनौती मानी, तब कही जाकर वे स्वस्थ हुए। इस बीमारी से वे बच तो गये परन्तु उनकी एक आँख जाती रही तथा एक कान की श्रवणशक्ति भी नष्ट हो गयी। नीचे दिये दोहे की अर्धाली से प्रकट है कि उनकी बायी आँख और बायाँ कान जाते रहे थे।

मुहमद बाई दिसि तजा, एक सरवन, एक आँख।

'एक आँख कवि मुहमद गुनी' इस प्रकार अपनी कुरूपता का उल्लेख करते हुए भी जायसी उस पर निराश और दुखी नही प्रतीत होते। उसे वे परमात्मा की देन समझकर स्वीकार करते हैं। तभी तो उन्हे देखकर उनकी कुरूपता का उपहास करनेवाले से वे पूछ बैठते हैं कि—

मोहि का हँसेसि, कि कोहरहि ?

अर्थात् तू मुझ पर हँसता है या मेरे बनानेवाले कुम्हार पर ?

भला इसका क्या उत्तर हो सकता ? कोई राजा हो या रंक, परमात्मा के प्रति सभी समानभाव से ऋणी हैं। उसकी अच्छी या बुरी सृष्टि पर किसी को हँसने का अधिकार नहीं है ? आज अगर कोई धनवान गरीब पर, या रूपवान कुरूप पर, हँसने का साहस करता है तो क्या कल ही वह दूसरों द्वारा हँसी का पात्र नहीं हो सकता है ? इतनी परिमित शक्ति रखकर भी यदि कोई मदान्ध हो जाता है तो समझना चाहिए कि वह उस समय उस परम सत्ता की प्रतीति से दूर हो गया है। उसे जायसी जैसे सदा ईश्वरानुभूति मे लीन सन्त ही सचेत कर सकते हैं।

जायसी सूफी सन्त थे। उनकी गणना निजामुद्दीन औलिया की शिष्य-परम्परा में है। शेख मुहीउद्दीन उनके धर्मगुरु थे। यह सब होते हुए भी भारतीय सन्त-परम्पराओं का प्रभाव उन पर पूरी तरह पड़ा था। उनकी उदार वृत्ति में संकुचित दृष्टिकोण का अभाव है। सभी मतों और परम्पराओं के साधु-सन्यासियों के साथ उनका सत्संग होता था और वे उनकी मान्यताओं को आदर की दृष्टि से देखते थे। उनकी इस बहुश्रुतता और उदाराशयता का परिचय पदमावत में कई स्थलों पर मिलता है। इतना होने पर भी अपने धर्म पर उनकी श्रद्धा अटल थी।

जायसी के सार्वदेशिक और उदार दृष्टिकोण को समझने के लिए पहले पदमावत की कथा को ही लीजिये। मुसलमान होकर भी उन्होंने हिन्दू कथानक का आधार लिया है और पूरी सहृदयता से उसका निर्वाह किया है। उसमें सिंघलद्वीप का वर्णन एवं पद्मिनी स्त्रियों का होना और रतनसेन का योगी बनकर वहाँ सिद्धि के लिए जाना आदि गोरखपंथी साधुओं के अनुसार हुआ है। हिन्दू देवी-देवताओं का वर्णन भी उन्होंने पूरी श्रद्धा के साथ किया है। इसी प्रकार हठयोग, वेदान्त और रसायन आदि की मान्यताओं का जहाँ-तहाँ उल्लेख हुआ है।

उन्होंने स्वय स्वीकार किया है, कि धार्मिक हठवादिता व्यर्थ है। परमात्मा की प्राप्ति के अनेक मार्ग हैं यथा—

विधिना के मारग हैं तेते।
सरग नखत तन रोवाँ जेते ॥

जायसी की इसी सार्वदेशिक भावना ने उन्हे हिन्दू और मुसलमान दोनों में श्रद्धेय बना दिया था। फिर वे बडे सरल स्वभाव तथा त्यागी वृत्ति के थे। कहते है कि वे जायस में साधारण किसान के रूप में रहते और परिश्रम करते थे। उनके साधु-स्वभाव और भक्त-हृदय का लोगो पर बडा अच्छा प्रभाव था। उनका नियम था कि वे अकेले भोजन न करते थे। एक बार एक कोढी के साथ बैठकर भोजन करके वे बडे सन्तुष्ट हुए थे। उनकी समदर्शी भावना को इस घटना से बहुत बल मिला था। उनका जीवन यों ही एक तपस्वी साधु का जीवन था, परन्तु समय-समय पर उनके ऐहिक बन्धन धीरे-धीरे कटते गये और प्रौढावस्था को प्राप्त होते-होते वे और अधिक विरक्त हो गये तथा फकीर बनकर जहाँ-तहाँ घूमने लगे। उनके जीवन पर गहरा प्रभाव डालनेवाली घटनाओं में उनके बेटो की मृत्यु की घटना भी है। कहते हैं कि उनके बेटे मकान गिर जाने से उसके नीचे दबकर मरे थे।

गृहत्यागी जायसी अपने समय के सिद्ध फकीर माने जाते थे। चारो ओर, क्या हिन्दू क्या मुसलमान, सभी में उनका बडा मान था। अमेठी के राजा रामसिंह उन पर विशेष श्रद्धा रखते थे। कहते हैं जायसी के आशीर्वाद से ही उनके पुत्र पैदा हुआ था। जायसी अकसर अमेठी के आसपास के वन में जाकर रहा करते थे। कहते हैं उनकी स्वाभाविक मृत्यु नहीं हुई थी, एक शिकारी की गोली लगने से वे मरे थे। राजा रामसिंह ने अमेठी के समीप ही इनकी कब्र बनवायी।

जायसी के लिखे हुए पाँच ग्रंथ मिले हैं—(१) पदमावत, (२) अखरावट और (३) आखिरी कलाम (४) कहरानामा और (५) चित्रावलि। इनकी रचना दोहा-चौपाई छंदो में हुई है एव इनकी भाषा अवधी है। जायसी ने अपनी रचनाएँ ग्रामीण अवधी भाषा में की हैं, उस पर नागरिक और साहित्यिक पालिश का लेश भी नही है। अवधी भाषा के ठेठ रूप को पदमावत जैसे महान काव्य-ग्रंथ की भाषा का आधार बनाकर जायसी ने ही पहले-पहल उस भाषा की सामर्थ्य को प्रकट किया। बाद में गोस्वामी तुलसीदास ने उसे साहित्यिक एव परिमार्जित भाषा का रूप दिया।

पदमावत—यह एक प्रेम-कहानी है, जिसमें इतिहास और कल्पना का मधुर मिलन हुआ है। चित्तौड़ की रानी पदमावती के इतिवृत्त के साथ सिंहलद्वीप के वातावरण को बडे कौशल से जोड दिया गया है। गोरख-पथी साधुओ की कल्पना के अनुसार सिंहल पद्मिनी जाति की सुन्दरियो से पूर्ण माना गया है। उसी सिंहल के राजा गधर्वसेन की अपरूप लावण्यवती कन्या पदमावती है, जिसके सौन्दर्य की चर्चा सात द्वीप, नवखड में पहुँची हुई है। सब जगह के राजकुमार उसके पाणिग्रहण के लिए आ-आकर फिर जाते हैं परन्तु पद्मावती का पिता किसी को अपनी कन्या के योग्य नहीं समझता। पद्मावती का तोता हीरामन वर खोजने के कठिन भार को अपने ऊपर लेता है। वह सिंहल से उडकर जाता है परन्तु मार्ग में एक बहेलिए द्वारा पकडा जाता है। बहेलिया उसे चित्तौड के एक ब्राह्मण के हाथ बेच देता है। ब्राह्मण द्वारा वह चित्तौड के राजा रतनसेन के पास पहुँचता है। रूपगर्विता रानी नागमती एक दिन उससे पूछ बैठी—हीरामन, तुमने देश-विदेश भ्रमण किया है। बताओ मेरे समान सुन्दरी भी कही देखी है?—इसके उत्तर में हीरामन ने पदमावती के रूप की प्रशंसा की और बताया कि रानी! उसमें और तुम में दिन और अँधेरी रात का अन्तर है।

नागमती ने देखा कि कहीं यही बात यह राजा रतनसेन के सामने न कह दे। इस डर से उसने अपनी दासी से हीरामन को मार डालने के लिए कहा, परन्तु दासी ने उसे छिपा रखा। जब राजा रतनसेन आखेट से लौटकर आया तो उसे हीरामन के द्वारा सारी बात मालूम हो गयी। पदमावती के रूप-लावण्य की प्रशंसा सुनकर वह तन-मन की सुधि भूल गया और जोगी का वेश बनाकर घर से निकल गया। उसके साथी सोलह हजार राजकुमारों ने भी अपना अपना घर छोड़ दिया और वैरागी बन गये। इन सब का पथप्रदर्शक बना हीरामन।

वियोगी जोगियों का यह समुदाय कलिंग से जहाजों में सवार होकर सिंहल की ओर चला। नाना कष्ट झेलकर अन्त में वे सब सिंहल पहुँच गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने सिंहल के एक प्रसिद्ध शिव-मन्दिर में डेरा डाला। उधर हीरामन ने जाकर पदमावती को समाचार दिया। यौवनवती पदमावती के हृदय में भी प्रेम की पीड़ा होने लगी। श्रीपंचमी के दिन पदमावती शिवपूजन के लिए मन्दिर में गयी और वहाँ रतनसेन से उसका दृष्टि-विनिमय हुआ। राजा पदमावती को देखते ही मूर्छित होकर गिर पड़ा। जब वह चली गयी तो उसकी व्याकुलता और बढ़ गयी। अन्त में भगवान शंकर से सिद्धि प्राप्त कर उसने सिंहल के गढ़ पर चढ़ाई करने की ठानी। वहाँ वह पकड़ा गया और उसे सूली दिये जाने की आज्ञा हुई। तब सोलह हजार जोगियों की सेना ने, जिनमें महादेव हनुमान आदि देवता भी वेश बदल कर शामिल हो गये थे, गढ़ को घेर लिया। राजा गन्धर्वसेन ने भगवान शंकर को पहचान लिया और उनकी इच्छा जानकर पदमावती का विवाह रतनसेन से कर दिया। कुछ दिन बाद पदमावती को लेकर रतनसेन चित्तौड़ लौट चला। लौटते समय समुद्र में तूफान आ गया जिसमें रतनसेन पदमावती से एक बार फिर बिछुड़ गया परन्तु समुद्र की कन्या लक्ष्मी के प्रसाद से वे फिर मिल

गये और पाँच विशेष पदार्थ भेंट में पाकर अपने घर चित्तौडगढ लौट आये।

कुछ दिन बाद राजा रतनसेन ने राघवचेतन नामक एक धूर्त पंडित को, जो उनका दरबारी भी था देश-निकाला दे दिया। वह चित्तौड से चलकर दिल्ली पहुँचा और बादशाह अलाउद्दीन के दरबार में गया। वहाँ उसने रानी पदमावती के रूप की इस प्रकार प्रशंसा की कि अलाउद्दीन व्याकुल हो गया। इस प्रकार अलाउद्दीन को वह चित्तौडगढ़ पर चढ़ा लाया। चित्तौडगढ घेर लिया गया पर अलाउद्दीन उसे अपने अधिकार में न कर सका। तब छल से सुलतान की ओर से संधि-प्रस्ताव किया गया। अलाउद्दीन चित्तौडगढ में एक मित्र के रूप में गया और शतरंज खेलते समय किसी प्रकार पदमावती को देख लिया। उसे देखते ही वह बेसुध हो गया। लौटते समय रतनसेन उसे पहुँचाने के लिए किले से बाहर आया तो सुलतान के सैनिकों ने गिरफ्तार करके उसे दिल्ली पहुँचा दिया।

इस घटना से रानी पदमावती बडी दुखी हुई पर तुरन्त ही उसने युक्ति से काम करने की सोची। गोरा-बादल नामक दो वीर क्षत्रिय सरदार सात सौ पालकियो में सवार हुए। बादशाह के पास यह संदेश भेज दिया कि रानी पदमावती दिल्ली आ रही है। वह सुलतान के महलों में रहने को तैयार है, केवल थोडी देर राजा रतनसेन से मुलाकात कर लेने की आज्ञा दी जाय। आज्ञा मिल गयी। पालकी रतनसेन की कोठरी के पास रखी गयी। पालकी में से रानी के स्थान पर एक लोहार निकला। उसने राजा की हथकडी-बेडी काटकर उसे मुक्त कर दिया। राजा घोडे पर सवार हो गया। अन्य वीर योद्धा भी पालकियो में से निकल पडे। सुल्तान की सेना के बहुत यत्न करने पर भी रतनसेन फिर उसके हाथ न आया। वह सुरक्षित चित्तौड पहुँच गया। वहाँ पहुँचकर उसे पदमावती द्वारा कुँभलनेर के राजा देवपाल की दुष्टता का पता चला। उसने भी पदमावती को फुसलाने के लिए राजा की अनुपस्थिति में एक दूती को भेजा था। इस पर रतनसेन ने कुंभलनेर पर

चढाई कर दी। दोनो राजाओं में युद्ध हुआ और दोनो परस्पर लडते हुए मारे गये। नागमती और पदमावती दोनो रानियाँ अपने स्वामी के शव के साथ सती हो गयी।

इस सपूर्ण कथा को एक सरस आख्यान काव्य के रूप में लिखकर अन्त में जायसी ने लिख दिया है कि—

तन चितउर मन राजा कीन्हा। हिय सिंघल बुधि पदमिनि चीन्हा।
गुरू सुआ जेहि पंथ दिखावा। बिन गुरु जगत को निरगुन पावा॥
नागमती यह दुनियाँ धंधा। बाँचा सोइ न एहि चित बंधा।
राघव दूत सोइ शैतानू। माया अलादीन सुलतानू॥
प्रेम-कथा एहि भाँति विचारहु। लेहु बूझि बूझै जो पारहु।

अर्थात् यह लौकिक आख्यान अपने सहज रूप में एक प्रेम-कथा अवश्य है परन्तु इसका दृष्टिकोण यहीं तक नही है। इसमें आध्यात्मिक संकेत भी है। जो विचारशील पाठक हैं अथवा जो विचारने की क्षमता रखते हैं, उन्हें इसमें निरूपित उस अध्यात्म-पक्ष पर भी अवश्य विचार करना चाहिए। ऐसे जिज्ञासु पाठको की प्रवृत्ति को उद्बुद्ध करने के लिए ही जायसी को यह बताना पडा है कि यह सारी प्रेम-कथा जीवात्मा को परमात्मा को पाने के लिए व्याकुल चेष्टा तथा उनके सम्मिलन की कथा है। इसमें चित्तौड, रतनसेन, सिंहल, पदमावती हीरामन, नागमती, राघवचेतन, अलादीन (अलाउद्दीन) और सभी प्रतीक रूप से गृहीत हुए हैं। 'आदि' शब्द यहाँ इसलिए जोडना प्रतीत होता है कि इनके अतिरिक्त और भी ऐसे व्यक्ति रह जाते हैं, पारमार्थिक पक्ष में जिनको प्रतीकता ग्रहण किये बिना रूपक का ठीक आरोप नहीं होता। लेकिन साथ ही ऐसा करने में कथा और काव्य की संगति का विचार आवश्यक है। काव्यरस की हानि करके अध्यात्म-पक्ष की पुष्टि शायद कवि को भी अभीष्ट न रही होगी, क्योंकि 'पदमावत' वस्तुत एक काव्य ही है दर्शन या सिद्धान्त-ग्रंथ नहीं।

अखरावट—यह जायसी का दूसरा ग्रंथ है। यद्यपि इसकी रचना भी इस्लामी काव्य पद्धति पर हुई है, परन्तु फारसी के बहर या रुबाई आदि छन्दों का प्रयोग न करके जायसी ने इसमें भी हिन्दी के छन्दो का ही प्रयोग किया है। 'पदमावत' के अनुसार इसकी रचना में भी हिन्दू और इस्लामी संस्कृतियो और पद्धतियो का मेल हुआ है। पुस्तक का नामकरण भी हिन्दी में है। 'पदमावत' में चौपाई की सात अर्धालियों के बाद दोहे का क्रम रखा गया है। 'अखरावट' में उस क्रम का निर्वाह तो है परन्तु उसमें प्रत्येक दोहे के बाद चौपाई आरम्भ होने से पूर्व एक-सोरठा अधिक दे दिया गया है। उसमें वर्णमाला के एक-एक अक्षर को लेकर अध्यात्म-सिद्धान्तो का निरूपण किया गया है। आरम्भ में इस्लामी मान्यता के आधार पर संक्षेप में सृष्टि-विस्तार की कथा है। इसमे विधि-निषेध, पाप-पुण्य, स्वर्ग-नरक, जीव-ब्रह्म, गुरु और शैतान सभी का- वर्णन है। इस छोटी-सी पुस्तक को सूफी संतों का धर्मशास्त्र कह सकते हैं, जिसमें भारतीय दर्शन और उपनिषदो की विचार-परम्परा का भी जहाँ-तहाँ समावेश है। जायसी तत्वदर्शी सन्त थे। उनमे हठवाद और संकुचित दृष्टि का अभाव था। उनके उदार दृष्टिकोण में मतों और सम्प्रदायो की दीवार बाधक न थी। जहाँ भी सार्वभौम सौन्दर्य, सत्य और गुणो का योग मिला उसे स्वीकार करने में उन्होने हिचक न की। 'प्रेम की पीर' जो बिना भेदभाव के सार्वजनिक भावना है, वही सूफी और वैष्णव दोनो की उपासना- का आधार है। 'अखरावट' के अन्त में 'सोऽहम्' का उल्लेख है, और इस तत्व की अनुभूति द्वारा पूर्ण शक्ति की उपलब्धि को जायसी ने स्वीकार किया है। इस पुस्तक में उन्होंने अपनी साधना तथा गुरु-परम्परा का उल्लेख इस प्रकार किया है—

कही तरीक़त चिसती पीरू। उधरित असरफ औ जहँगीरू।
तेहि के नाव चढ़ा हौं धाई। देखि समुद-जल जिउ न डेराई।

साँची राह सरीअत, जेहि बिसवास न होइ।
पाँव राखि तेहि सीढ़ी, निभरम पहुँचै सोइ॥

आखिरी कलाम—यह जायसी की तीसरी कृति है। यह इसी नाम से फारसी लिपि में मुद्रित है। इसमें दर्शन का वह 'पदमावत' जैसा है। प्रचार-प्रसार में यह 'अखरावट' से कम नहीं है। 'पदमावत' जैसा कुछ आकार इसका नहीं है। जिस प्रकार अखरावट में सृष्टि-कथा तथा धर्म-ज्ञान भक्ति आदि की व्याख्या है उसी प्रकार 'आखिरी कलाम' में सृष्टिकर्ता परमेश्वर की महिमा, मृत्यु के बाद जीव की दशा तथा कयामत के आखिरी न्याय का वर्णन हुआ है। इसी ग्रंथ के अन्त में कवि ने अपने जन्म तथा निवास स्थान का विशेष रूप से उल्लेख किया है और लिखा है कि उसके पैदा होते ही एक भयानक भूकम्प हुआ था।

भा औतार मोर नौ सदी।
तीस बरस ऊपर कवि बदी॥
आवत उधत-चार बिधि ठाना।
भा भूकंप जगत अकुलाना॥
धरती दीन्ह चक्र बिधि भाई।
फिरै अकास रहँट कै नाईं॥
गिरि पहार मेदिनि तस हाला।
जस चाला चलनी भरि चाला॥
मिरित-लोक ज्यों रचा हिंडोला।
सरग-पताल पवन-खट डोला॥

गिरि पहार परबत ढहि गये।
सात समुद्र कीच मिलि गये॥
धरती फाटि, छात भहरानी।
पुनि भइ भया जो सिष्टि दिढानी॥

इस पुस्तक के रचनाकाल के सम्बन्ध में जायसी का कथन है—

नौ सै :बरस छतीस जो भये।
तब यहि कथा क आखर कहे॥

इसमें मकाइल, जिब्राइल, इसराफील और अजराइल आदि फरिश्तों के कार्यों का उल्लेख करते हुए रसूल मुहम्मद का आखिरी न्याय में प्रवृत्त होना वर्णित है। अंत में इस्लामी धर्म-ग्रंथों के स्वर्ग और उसके आनन्द का इस प्रकार वर्णन करते हुए पुस्तक को समाप्त किया गया है—

नित पिरीत, नित नव-नव नेहू।
निति उठि चौगुन होइ सनेहू॥
नित्तइ नित्त जो बारि बियाहैं।
बीसों बीस अधिक ओहि चाहैं॥

तहाँ न मींचु, न नींद दुख, रह न देह महँ रोग।
सदा अनंद 'मुहम्मद' सब सुख मानैं भोग॥

जायसी की जिन पांच कृतियों का यहाँ परिचय दिया गया है, उनसे यह तो स्पट है कि कवि को अमर कीर्ति दिलानेवाली उसकी पहली कृति ही है। भाषा और छन्द-प्रबन्ध एक-सा होते हुए भी अन्य दोनों रचनाएँ काव्य की कोटि से बाहर हैं। केवल 'पदमावत' को ही जायसी की काव्य प्रतिभा का प्रतीक मानना चाहिए। उसी में लौकिक जीवन का सरस, सुन्दर और स्निग्ध चित्र है। एकान्त पारमार्थिक दृष्टिकोण में काव्य को

सरसता कब संभव है ? इसीलिए इस अन्योक्ति-काव्य में लोक-पक्ष ही गहरे रंगों से रँगा है। अध्यात्मपक्ष की अस्फुट व्यंजना केवल जहाँ-तहाँ ही अपनी झलक दिखाती है। कवि हृदय की विभूति दोनों हाथों से इस काव्य में लुटाकर जायसी स्वयं अमर हो गये हैं और सरस्वती के मन्दिर में छोड़ गये हैं अपनी अक्षय निधि। इस अनुपम अंजलि के लिए हम हिन्दू और तुरुक का भेद-भाव मिटाकर उनका अभिनन्दन करते और कहते हैं कि हे कवि-शिरोमणे ! तुमने हमारी वाणी को अपनी लेखनी से लिखकर धन्य किया है। तुम्हारे काव्य में हिन्दू और मुस्लिम तत्त्वज्ञान को पृथक पृथक तलाशने की हम परवाह नहीं करते, न तुम्हारे हाथों अपने आदर्शों की लाञ्छना का भय ही होता है, इसलिए तुम्हारी सफलता-विफलता के साथ हमारा हर्ष-विषाद पूर्णतया संलग्न है।

इन तीन कृतियों के अतिरिक्त कहरानामा और चित्रावलि नामक दो और कृतियों का पता चला है। ये प्रकाशित भी हो चुकी हैं।

(२) जायसी का हिन्दी-साहित्य पर ऋण

भारत में इस्लाम विजेता बनाकर आया था। प्राचीन आर्य संस्कृति की वारिस महान् हिन्दू जाति उससे आतंकित और संत्रस्त ही अधिक हुई थी, प्रभावित कम। भारत में मुस्लिम सत्ता की स्थापना के बाद पारस्परिक संसर्ग आवश्यक हो गया और एक दूसरे के निकटतर पहुँचने का समय आया। यद्यपि विजेता और विजित का भेद-भाव बना हुआ था पर पारस्परिक सहानुभूति का क्षेत्र धीरे-धीरे विस्तृत हो रहा था। धार्मिक कट्टरता दोनों ओर से व्यवधान बनकर उस आदान-प्रदान में बाधा उपस्थित करती थी, तो विचार की दुनियाँ में उसकी भर्त्सना और उसका तिरस्कार भी किया जाता था। कबीर जैसे साधकों की वाणी इसका उदाहरण है। उन्होंने सदा सत्यान्वेषी दृष्टिकोण से जीवन की मीमांसा की, और मिथ्यापंथी हिन्दू और मुस्लिम दोनों की कटु आलोचना करने में कभी कमी नहीं की। परन्तु यह सब करके कबीर ने एक

सर्जन का काम किया। उनकी कडवी औषधि और चीरफाड ने जनता के मानसिक स्वास्थ्य को सड़ने से जरूर बचा लिया, परन्तु वह अमृत के घूट बनकर उसे अपनी ओर खीच न सकी। जायसी ने उस कमी की पूर्ति की। उन्होने लोक-हृदय और लोकजीवन की नाडी का बड़ी बारीकी से अध्ययन किया। विधि-निषेध और खडन-मडन की शैली से वास्ता न रखकर उन्होंने कहानी के मधुर पथ्य का आधार लिया। लोकजीवन के रसिया जायसी ने अपने कथानक का चुनाव हिन्दू या मुस्लिम पौराणिक साहित्य से न करके लोक-साहित्य से ही किया, किन्तु उसमें सत्य का आरोप करने के लिए पदमावती को इतिहास-प्रसिद्ध पद्मिनी के साथ तथा बादशाह को सुलतान अलाउद्दीन के साथ जोड दिया है। इससे दो बातें हुई। एक तो 'सिहल' आदि के लोकप्रसिद्ध सिद्धिपीठ का आधार मिल गया, जहाँ कल्पना की अतिरंजना भी अस्वाभाविक प्रतीत नही होती। दूसरे पदमावती जैसी सुन्दरी के मनमाने रूपवर्णन की सुविधा हो गयी, और यह सब हुआ प्रेम की उदात्त भावना को तीव्रतर करके दिखाने के लिए। इस प्रकार प्रेम-कथा को लेकर जायसी ने अपने काव्य का निर्माण किया, और इस काव्य के द्वारा प्रेम की भावना को सर्वसाधारण की वस्तु बनाया। मुसलमानों के सामने इस हिन्दू प्रेम कथा को रख कर उन्होने बताया कि मानव-हृदय सर्वत्र एक-सा ही है। प्रेम ही उसके लिए स्वास्थ्यप्रद पथ्य है। प्रतिनायक अलाउद्दीन प्रेम की उस सुन्दर दुनिया के नाश का कारण बनता है। यह दिखाकर जायसी ने जहाँ अपने हृदय की शालीनता को प्रकट किया है वही प्रकारान्तर से न्याय-नीति की भावना के प्रचार में योग दिया है। पाठक हिन्दू या मुसलमान कोई भी हो उसकी सहानुभूति कभी अलाउद्दीन के साथ नही हो सकती। यदि उसे न्यायासन पर बिठा दिया जाय तो वह बिना जातीय पक्षपात के उस पापी को नरक की ज्वाला में जलने की आज्ञा सुना देगा। इस सहानुभूति और समानता का भाव हिन्दू-मुसलमानो में प्रचारित करने में जायसी के इस काव्य ने अच्छा कार्य किया। आगे के लेखक

भी भाषा और वेश का विचार किये बिना सांस्कृतिक सम्मिलन में योग देने की प्रेरणा जायसी से प्राप्त करते रहे हैं। इस दृष्टि से उनका हिन्दी और हिन्दू मुस्लिम जगत पर बहुत बड़ा ऋण रहा है।

(३) 'पदमावत' की कथा में इतिहास और कल्पना का संयोग

'पदमावत' में ऐतिहासिक पात्रों और घटनाओं का उल्लेख होने से उसे ऐतिहासिक काव्य भी कह सकते हैं, परन्तु है वह काव्य, इतिहास नहीं। कवि ने अपनी कथा का बीज प्रचलित लोकगाथा से लिया प्रतीत होता है। कहते हैं, उत्तर प्रदेश में प्राचीन काल से 'रानी पदमिनी और हीरामन तोते' की जो लोक-गाथा प्रचलित चली आ रही थी, जिसे घर-घर द्वार-द्वार कुछ पेशेवर गानेवाले गा-गाकर अपनी अजीविका पैदा करते थे, जिसमें प्रेम की पीडा, विरह-व्याकुलता आदि मानवहृदय की शाश्वत भावनाओं की बड़ी सुन्दर व्यंजना हुई थी, उसी को जायसी ने अपने काव्य का आधार बनाया। जायसी पर सभी धर्म और मतों का प्रभाव था। वे एक प्रकार से लोक-जीवन की रुचि को अपने भीतर लिए रहते थे। परन्तु विशेष रूप से सूफी मत ही उन्हें मान्य था, जिसके अनुसार उनके आराध्य की कल्पना बड़ी ही सौन्दर्यमयी और माधुर्यपूर्ण थी। उनके लिए आत्मा की बेकली और प्रेम की पीर का उनके यहाँ बड़ा ऊँचा स्थान है। यह कथानक इन सब प्रवृत्तियों के अनुकूल उन्हें प्रतीत हुआ। फिर अवध में पैदा होने के कारण बचपन से वे यह कथा सुनते आ रहे होंगे और उनके गीतों का गहरा प्रभाव उनके जीवन पर पड़ा होगा। अतः इस लोक-कथा द्वारा लोकपक्ष और अध्यात्मपक्ष दोनों की अपने मनोनुकूल व्यंजना होते देखकर जायसी ने उसे काव्य का रूप दिया। बहुत संभव है दोहे और चौपाइयों की शैली भी जायसी ने वहीं रखी हो जो प्रचलित चली आ रही थी, परन्तु इसमें संदेह नहीं कि उस मूल कथा बीज के साथ उन्होंने अपनी कल्पना और भावुकता का जी खोलकर उपयोग किया। या यों कह सकते हैं कि जायसी जैसे महाकवि

के हाथों में पड़कर यह लोक-कथा एक प्रेम-काव्य बन गयी—ऐसा प्रेम काव्य जिसके लिए कोई भी साहित्य ईर्ष्या कर सकता है और जिसके कारण हिन्दी-साहित्य को गर्व है।

जहाँ जायसी ने इस कथा को अपनी मोहक कल्पनाओं से रंगकर मौलिक रूप दिया है, वहाँ मधुर भावुकता के रस से सिक्त करके उसके साथ अपने हृदय की कोमलता को जोड़ दिया है। यह सब करके उन्होंने कवि के कार्य को पूरा किया है। उनकी काल्पनिक सृष्टि की पहली वस्तु है सिंहलद्वीप, जहाँ लोक-प्रचलित धारणा के अनुसार प्रसिद्ध सुन्दरी पद्मिनी स्त्रियाँ पायी जाती हैं। दूसरी है रत्नसेन की सिंहल-यात्रा जिसमें सागर-संतरण का कल्पनात्मक वर्णन प्रमुख है। रानी नागमती भी एक कल्पित पात्र है। इस कल्पना ने जायसी के काव्य को बहुत कुछ दिया है। कल्पना द्वारा सृजित यह पात्र उनकी भावुकता और अनुभूति-प्रदर्शन का सब से बड़ा आधार सिद्ध हुआ है। अन्य काल्पनिक पात्रों में शिवजी, हनुमान, लक्ष्मी तथा सागर आदि कुछ मानवेतर पात्र हैं। परन्तु सच्चे स्रष्टा के रूप में वे तभी दिखायी पड़ते हैं जब वे अपनी इस काल्पनिक सृष्टि को इतिहास के साथ जोड़कर घटनाओं की सत्यता पर विश्वास करने को कहते हैं। कथानक का ऐतिहासिक अंश राघवचेतन के देश निकाले से प्रारम्भ होता है। अलाउद्दीन की पदमावती के लिए चित्तौड़ पर चढ़ाई, चित्तौड़ का घेरा, रत्नसेन से उसकी भेंट, पदमावती दर्शन, राजा की गिरफ्तारी और छुटकारा तथा युद्ध आदि घटनाएँ इतिहास-सम्मत हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि जायसी कवि और स्रष्टा दोनों के रूप में सफल हैं। कल्पना, भावुकता और इतिहास का इतना सुन्दर समन्वय उन्होंने किया है कि चकित रह जाना पड़ता है। नाम-सादृश्य का लाभ उठाकर लोक-कथा को ऐतिहासिक कथानक बनाकर पेश करने की सफलता हमारे कलाकारों में केवल जायसी को प्राप्त है। इसी प्रकार जीवन-व्यापी लौकिक प्रेम-कथा का संसार, जीव और परमात्मा के

साथ सादृश्य सम्बन्ध दिखाकर एक महान अन्योक्ति-काव्य (Allegory) लिखनेवालों में वे शायद अपनी समता नहीं रखते।

(३) जायसी का धर्म

जायसी मुसलमान थे। इस्लाम उनका धर्म था। अपने धर्म के प्रति उनकी गहरी आस्था थी। पैगम्बर मुहम्मद साहब के प्रति उन्होंने पूर्ण श्रद्धा प्रकट की है और उन्हे परमात्मा की ज्योति से निर्मित बताया है—

कीन्हेसि पुरुख एक निरमरा। नाम मुहम्मद पूनौं-करा ॥
प्रथम जोति विधि ताकर साजी। औ तेहि प्रीति सिहिटि उपराजी ॥
दीपक लेसि जगत कहँ दीन्हा। भा निरमल जग मारग चीन्हा ॥
जो न होत अस पुरुख उजारा। सूझि न परत पथ अँधियारा ॥
दूसर ठाँव दैव वै लिखे। भये धरमी जे पाढ़त सिखे ॥
जगत बसीठ दई ओहि कीन्हा। दुइ जग तरा नाँव जेइ लीन्हा ॥

'आखिरी कलाम' में बहिश्त, रसूल और फरिश्तों का जो वर्णन है। यह सब इस्लाम मान्यता के अनुसार है। और भी जहाँ तहाँ उन्होंने 'मुहम्मद खेवा' (मुहम्मद के मत) का वर्णन किया है। सृष्टि की उत्पत्ति और प्रलय के वर्णन में भी वे इस्लाम के अनुसार चले हैं। यद्यपि उन्होंने संसार के दूसरे धर्मों को ईश्वरीय मार्ग मानने की उदारता दिखायी है—

विधिना के मारग हैं तेते। सरग नखत तन रोवाँ जेते ॥

परन्तु एक कट्टर मुसलमान की भाँति उन सब मार्गों में श्रेष्ठ इस्लाम को ही बताया है। उसमें दीक्षित होने को उन्होंने कैलाश अर्थात् स्वर्ग की उपलब्धि कहा है—

तिन्ह महँ पंथ कहौं भल गाई। जेहि दूनौं जग छाज बड़ाई ॥
सो बड पंथ मुहम्मद केरा। है निरमल कैलास बसेरा ॥

यह सब कुछ होते हुए भी जायसी सूफी सन्त थे। उनके लिए इस्लाम की निराकारोपासना के स्थान पर साकारोपासना को प्रधानता

देना मुख्य था। ईश्वर को सौन्दर्यमय, प्रेममय मानना तथा उस सौन्दर्य और प्रेम की सत्ता पर निछावर होना आवश्यक था। धार्मिक विधि-निषेध को उस कड़ाई से वे नहीं मानते थे, जिसका विधान धर्मशास्त्रों में किया गया था। साधु सन्तों और फकीरों के सत्सग को वे छोड़ नहीं सकते थे। नाना मतो और धार्मिक सस्कारों का प्रभाव उनके ऊपर पड़ा था, और पड़ता था। जिसके फल स्वरूप उनकी दृष्टि तत्त्वदर्शी हो गयी थी। वे हर एक मत के सार तत्त्व को ग्रहण कर लेते थे। अपने धर्म के प्रति श्रद्धावान रह कर भी वे उदार-हृदय और सार्वदेशिक विचार रखते थे, दूसरों को मान्यताओं को सहानुभूति की दृष्टि से देख सकते थे। इसीलिए मुसलमान फकीरो की एक प्रसिद्ध गद्दी की शिष्य-परम्परा में होते हुए भी उन्होंने भेदभाव को अपने जीवन में स्थान नहीं दिया था। पदमावत काव्य की जिस सहृदयता से उन्होंने रचना की है, उससे उनकी उदारता का पता चलता है। क्या भाषा और क्या कथा-विन्यास, किसी में भी उन्होंने जातीय अथवा धार्मिक कट्टरता को आने नहीं दिया है। उन्होंने जो कथानक अपने काव्य के लिए चुना है उसमें जातीय या धार्मिक कट्टरता रखनेवाले के लिए हिन्दू-मुस्लिम तत्त्वो का निर्वाह कर ले जाना साधारण बात न थी, पर जायसी की व्यक्तिगत साधना इतनी ऊँची हो चुकी थी जहाँ इस प्रकार की मनोवृत्ति को स्थान न था। वे सुसस्कृत होने से मनुष्यता के पुजारी बन गये थे। उनकी सहिष्णुता का क्षेत्र बहुत व्यापक हो गया था। उनका धर्म लोक-धर्म तक पहुँच चुका था।

(४) जायसी का रहस्यवाद

इस्लाम के ससर्ग से भारतवर्ष में जिस रहस्यवाद का विकास हुआ उसमें भारतीय वेदान्त, और फारस के सूफी दृष्टिकोण, का मिश्रण पाया जाता है। एक लोकपक्षी है, दूसरा स्वपक्षी। व्यक्तिगत साधना से अनुभूत स्वपक्षी रहस्यवाद सूफियो में खूब विकसित हुआ। निर्गुण धारा के सन्त साधको पर इसका व्यापक प्रभाव है। लोक-चिन्ता से मुक्त

आत्मसंस्कार द्वारा उस परोक्ष सत्ता की रहस्यमयी अनुभूति की प्रतीति उन्होंने की है, और उसे नाना रूपकों के मिस व्यक्त किया है। उनकी अनुभूति बड़ी गहरी है और उनके प्रेम की वेकली बड़ी तीव्र है, किन्तु लोक बाह्य होने से वह ऐकान्तिक है। जायसी साधक के साथ-साथ एक भावुक कवि का हृदय रखते थे। उनकी अनुभूति व्यापक और विश्व-जनीन है, इसीलिए उनके रहस्यवाद को स्वर्गीय शुक्लजी ने 'अद्वैती रहस्यवाद' नाम दिया है, और कहा है, कि 'वे सूफियों की भक्ति-भावना के अनुसार कहीं तो परमात्मा को प्रियतम के रूप में देखकर जगत् के नाना रूपों में उस प्रियतम के रूपमाधुर्य की छाया देखते हैं और कहीं सारे प्राकृतिक रूपों और व्यापारों का 'पुरुष' के समागम के हेतु प्रकृति के शृङ्गार, उत्कंठा या विरह-विकलता के रूप में अनुभव करते हैं।' दूसरे प्रकार की भावना 'पदमावत' में अधिक मिलती है।

जायसी कवि थे और भारतवर्ष के कवि थे। भारतीय पद्धति के कवियों की दृष्टि फारस वालों की अपेक्षा प्राकृतिक वस्तुओं और व्यापारों पर कहीं अधिक विस्तृत तथा उनके मर्मस्पर्शी स्वरूपों को कहीं अधिक परखनेवाली होती है। इससे उस रहस्यमयी सत्ता का आभास देने के लिए जायसी बहुत ही रमणीय और मर्मस्पर्शी दृश्यसंकेत उपस्थित करने में समर्थ हुए हैं। कबीर आदि में चित्रों की न वह अनेकरूपता है, न वह मधुरता। देखिये, उस परोक्ष ज्योति और सौन्दर्य-सत्ता की ओर कैसी लौकिक दीप्ति और सौन्दर्य के द्वारा जायसी संकेत करते हैं—

बहुतै जोति जोति ओहि भई।

रवि, ससि, नखत दिपहिं ओहि जोती।
रतन पदारथ मानिक मोती॥
जहँ तहँ विहँसि सुभावहि हँसी।
तहँ तह छिटकि जोति परगसी॥

नयन जो देखा कँवल भा, निरमल नीर सरीर।
हँसत जो देखा हँस भा, दसन जोति नग-हीर॥

रहस्यवाद के सम्बन्ध में जायसी भारत और फारस दोनों की परम्परा का प्रतिनिधित्व करते हैं। वे केवल अन्तस् में ही उस छवि का दर्शन नहीं करते, वरन् बाह्य जगत् के कण-कण को भी उसी शोभा से शोभायमान पाते हैं। यह लोक और संसार भी उसी प्रियतम की ज्योति से उद्भासित है, इस अनुभूति को अपने हृदय में लिये फिरने के कारण ही वे लोक-पक्ष में भी सहृदय ठहरते हैं। बाहर और भीतर ऐसा कौनसा प्रदेश है जो उनकी ज्योति ने जगमग नहीं करता? मानस के भीतर जब उसकी किरण फूटती है तब क्या दशा होती है इसका संकेत वे इन पंक्तियों में देते हैं—

देखि मानसर रूप सोहावा।
हिय हुलास पुरइनि होइ छावा॥
गा अँधियार रैनि-मसि छूटी।
भा भिनुसार किरन-रवि फूटी॥
कँवल विगस तस बिहँसी देही।
भँवर दसन होइ कै रस लेहीं॥

उसी प्रकार उसके प्रेम से दृश्य जगत् का कण-कण बिंधा है। जहाँ देखिये उसी की प्रेम-पीड़ा से कराह रहे हैं। उसने सबको छेद डाला है। क्या धरती, क्या आकाश, क्या सूर्य, क्या चन्द्र सभी तो उसके रूप की बंसी में उलझे हैं। देखिये—

उन्ह बानन अस को जो न मारा?
बेधि रहा सगरौ संसारा॥
गगन नखत जो जाहि न गने।
वै सब बान ओहि के हने॥

धरती बान बेधि सब राखी।
साखी ठाढ देहिं सब साखी॥
रोव-रोवँ मानुस तन ठाढे।
सूत-हि-सूत बेध अस गाढे॥

बरुनि चाप अस ओ पहँ, बेधे रन बन-ढाँख।
सौंजहि तन सब रोवाँ, पंखिहि तन सब पाँख॥

सृष्टि-व्यापारो को अन्य उद्देश्य से देखने की छुट्टी जायसी ऐसे साधक को कहाँ थी? वे तो परमात्म-सत्ता के सम्बन्ध से ही सब को देखते थे। उसी के सयोग-वियोग और हर्ष-विमर्ष से पृथ्वी और स्वर्ग की जीवनचर्या का निर्माण होता है। बादल उसी के अनुराग से रँगे हैं। सूय उसी के वियोग से उत्तप्त है। बसत और वनस्पति उसी के रग से रगीन हैं, इस भेद को समझनेवाले जायसी रहस्यवादी कवियो और भावुको में अपना एक विशेष स्थान रखते हैं। उनकी रहस्यात्मक अनुभूति बडी गहरी है। वह भावुकता का चरम रूप प्रस्तुत करती है—

सूरुज बूडि उठा होइ ताता।
औ मजीठ टेसू बन राता॥
भा बसत, राती बनसपती।
औ राते सब जोगी-जती॥
भूमि जो भीजि भयेउ सब गेरू।
औ राते सब पंखि-पखेरू॥
राती सती अगिनि सब काया।
गगन मेघ राते तेहि छाया॥

सूफी रहस्यवादियो की इस परम्परा का प्रभाव माधुर्य भाव के उपासक कृष्ण-भक्तो पर पडा। वैष्णव कवियो और भक्तो में यह अनुभूति

स्पष्ट झलकती है। भारतीय भक्त-परम्परा एवं हिन्दी-साहित्य को प्रेम मार्गी शाखा के सूफी कवियों की यह देन बड़ी महत्वपूर्ण है, और जायसी का उसमें प्रमुख भाग है। आगे चल कर इसी से भावात्मक और गीतात्मक साहित्य का स्रोत फूट पड़ा है।

(५) जायसी की भावुकता

'पदमावत' की कथा का बीज नरपति नाल्ह कृत 'बीसलदेव-रासो' से लेकर उसे लोक-प्रचलित कथा और इतिहास के साथ गूँथ दिया गया हो, तो कोई आश्चर्य नहीं। उक्त रासो में भी राजा का अपनी रानी को छोड़कर निकल जाना एव रानी का विरह आदि वर्णित है। जो भी हो, कथावस्तु को अपने अनुकूल गढने में जायसी का उद्देश्य एक कवि का ही उद्देश्य रहा है। उन्होने यही प्रयास किया है कि किस प्रकार अपने हृदय के अदर घुमड रही भावनाओ को लोगों तक पहुँचाया जाय। काव्य के मार्मिक स्थलो की परख करने में उन्हे कठिनाई पड़ी हो ऐसा प्रतीत नही होता। बडी सीधी-सादी रीति से उन्होने कथानक को उठाया है और वैसी ही सरलता के साथ उसका निर्वाह किया है। उनकी इस सरल और सीधी शैली मे यही विशेषता है कि भावुकता-प्रदर्शन का अवसर पाते ही उनके भीतर का कवि प्रकट हो जाता है। साधारण-से-साधारण वर्णन को भावुकता से अभिषिक्त करके रोचक और हृदयग्राही बनाने की जायसी में अपूर्व क्षमता है। जैसे सिंहलगढ की घडी का घंटा बजने का वर्णन वे इस प्रकार करते हैं—

जबहीं घरी पूजि तेहि मारा। घरी-घरी घरियार पुकारा॥
परा जो डाँड जगत सब डाँडा। का निचिंत माटी कर भाँडा?
तुम्ह तेहि चाक चढे हौ काँचे। आहेहु रहै न थिर होइ बाँचे॥
घरी जो भरी घटी तुम आऊ। का निचित होइ सोउ बटाऊ?

मुहमद जीवन जल भरन, रहँट-घरी कै रीति।
घरी जो आयी ज्यों भरी, ढरी, जनम गा बीति॥

घटा बजते और समय को व्यतीत होते हुए सभी देखते हैं पर जायसी का देखना कितना दार्शनिक और भावुकतापूर्ण है। एक मनीषी कवि का पर्यवेक्षण जायसी की दृष्टि में हमें सर्वत्र मिलता है।

यत्र-तत्र प्रकृति का ऐसा सुन्दर और सश्लिष्ट वर्णन जायसी ने किया है जो पाठक के हृदय को रस-मग्न कर देता है। नागमती के विरह की बारहमासी लिखने में जायसी ने सारी सृष्टि को रुला डाला है। मानव हृदय के साथ प्रकृति की कितनी सहानुभूति है, यह सजीव करके दिखा दी है। नागमती के दुख से सारी दुनियाँ दुखी हो गयी है। अन्त में एक पक्षी से न रहा गया। उसने आकर रानी से पूछा—

तू फिरि-फिरि दाहै सब पाँखी।
केहि दुख रैनि न लावसि आँखी?

रोकर रानी नागमती ने उत्तर दिया—

नागमती कारन कै रोई। का सोवै जो कंत-बिछोई॥
मनचित हुँते न उतरै मोरे। नैन क जल चुकि रहा न मोरे॥
जोगी होइ निसरा सो नाहू। × × × × ×
जहवाँ कंत गये होइ जोगी। हौं किंगरी भइ झूरि वियोगी॥
वै सिंगी पूरी गुरु भेंटा। हौं भइ भसम, न आइ समेटा॥

हाड भये सब किंगरी, नसैं भयीं सब ताँति।
रोवँ-रोवँ ते धुनि उठै, कहौं बिथा केहि भाँति?

जायसी के भाव-जगत् में सारी सृष्टि सहानुभूतिमय है। जब एक एक अणु और परमाणु में वे एक ही ज्योति के दर्शन करते हैं तो एक ही आत्मा का विस्तार सर्वत्र देखें इसमें आश्चर्य ही क्या है। 'मेघदूत' के यक्ष का सन्देश कालिदास ने मेघ के द्वारा भिजवाकर अपनी भावुकता का ही परिचय दिया था। यह भावुकता ही कवियों के काव्य का प्राण है। 'उत्तर रामचरित' में भवभूति के भावुक हृदय की शीतल छाया में ही

पाठक को विश्राम मिलता है। अपने 'पदमावत' में जायसी ने भी जगह-जगह भावुकता की अमराइयाँ लगायी हैं। उनकी छाँह में जो शान्ति हृदय को मिलती है, जो प्रेरणा प्राणों को प्राप्त होती है, काव्य का पारायण किये बिना उसका ठीक अनुभव नही हो सकता।

(६) जायसी का दृश्य-चित्रण

दृश्य-चित्रण की क्षमता जायसी में खूब है। यों तो इस विषय में उन्होंने भाषा-कवियो की परंपरा का ही अनुसरण किया है, प्रकृति के साथ हम सर्वत्र उन्हें एक-प्राण हुआ नही पाते। वस्तु-परिगणन की शैली ही उनमें मुख्य है। प्राचीन संस्कृत-साहित्य में जिस प्रकार दृश्यों का मनोहर और हृदयहारी चित्रण मिलता है, वैसा जायसी में नही है। आदि-कवि वाल्मीकि ने रामायण में वनवासी कवि-हृदय का परिचय दिया है। उनके जीवन में नदी, नाले, बादल, पर्वत, वन और पशु-पक्षियो का क्या स्थान रहा होगा यह उनके वर्णनो से ज्ञात होता है। महाकवि कालिदास और भवभूति में भी आश्रमो और वन-पर्वतो का वैसा ही नैसर्गिक वर्णन है, परन्तु बाद के भाषा-कवियो का प्राकृतिक दृश्यो का वह साहचर्य नही रह गया। फलतः उनका दृश्य-चित्रण भी हृदय के रस से अभिषिक्त नही हो सका है। इसके लिए हम जायसी को दोष नही दे सकते। परन्तु एक बात है, अपने दृश्य-चित्रो को भावपूर्ण बनाने में जायसी ने किसी प्रकार प्रयत्न अवश्य किया है और अन्य कवियो के मुकाबले में वे सफल भी हुए हैं। जायसी में सबसे बड़ी विशेषता है उनकी पारमार्थिक दृष्टि। यह दृष्टि उनमें सदा जागती रहती है। वे जब किसी अद्भुत या रमणीय दृश्य की ओर आकर्षित होते हैं और उसका वर्णन करने लगते हैं तो उसकी अद्भुतता और रमणीयता का कोई-न-कोई आध्यात्मिक हेतु उन्हें मिल जाता है। उस हेतु की कल्पना करके वे उस पर अपनी शैली की छाप उसी प्रकार लगा देते हैं जिस प्रकार गोस्वामी तुलसीदास। गोस्वामीजी की दृष्टि लोक-संग्रही है अतः उनके

वर्णन (शरद् और वर्षावर्णन) अपने ढग के हैं। उन्हे दादुर-ध्वनि में वेदपाठी ब्रह्मचारियो की ध्वनि सुनायी पडती है। अगस्त्य के उदय होने और मार्गों के जल सूखने में सतोष की प्राप्ति और लोभ की हानि दिखाती है, इत्यादि। लोक-कल्याण के भाव में मग्न रहने के कारण गोस्वामीजी को वैसी ही बातें सूझती हे। जायसी में आत्म-कल्याण की दृष्टि विशेष होने से वे इस प्रकार वर्णन करते हैं। सिंहल-द्वीप की अमराई का वर्णन करते हुए वे कहते हैं—

घन अमराउ लाग चहुँ पासा। उठा भूमि हुँत लागि अकासा॥
तरिवर सबै मलयगिरि लायी। भई जग छाँह रैनि होई आयी॥
मलय समीर सोहावनि छाँहा। जेठ जाड लागै तेहि माँहा॥
ओही छाँह रैनि होइ आवै। हरिअर सबै अकास दिखावै॥
जेइ छायी वह छाँह अनूपा। फिरि नहि आइ सहै यह धूपा॥

जायसी की अमराई पथिक को उस परम शान्ति का भान करा देती है जिसको पाकर भव तापों मे शान्ति का अनुभव होने लगता है—इस प्रकार इन महाकवियो ने परम्परा-मुक्त वर्णनो में भी नवीनता और मौलिकता की सृष्टि कर दी है।

'पदमावत' एक बृहत् काव्य है। उसमें स्थल की कमी नही है। इसका लाभ उठाकर जायसी ने अनेक ऐसे दृश्यो का वर्णन किया है जो या तो लोकजीवन में महत्त्व रखते हैं या काव्य-सौन्दर्य को बढानेवाले हैं। जैसे पनघट का वर्णन, जलकेलि का वर्णन, प्रतिमा-पूजन का वर्णन, वसन्त का वर्णन, विवाह का वर्णन, ज्योनार-वर्णन, युद्ध-वर्णन आदि-आदि। जब रतनसेन सिंहल-यात्रा के लिए नौकारोहण करता है तो मार्ग के सात समुद्रो का वर्णन भी जायसी ने किया है। सागर का वर्णन बडा सजीव और स्वाभाविक हुआ है, जैसे—

भा किलकिल अस उठै हिलोरा। जनु अकास टूटै चहुँ ओरा॥
उठै लहरि पर्वत कै नाईं। फिरि आवै जोजन सौ ताईं॥

धरती लेइ सरग लहि बाढ़ा । सकल समुद जानहुँ भा ठाढ़ा ॥
नीर होइ तर ऊपर सोई । माथे रंभ समुद जस होई ॥
फिरत समुद जोजन सौ ताका । जैसे भँवै कोंहाँर क चाका ॥
भइ परलै नियराना जबहीं । मरै जो जब परलै तेहि तबहीं ॥

गइ औसान सबन्ह कर, देखि समुद कै बाढ़ि ।
नियर होत जनु लीलै, रहा नैन अस काढ़ि ॥

इसके अतिरिक्त खारसमुद्र, खीरसमुद्र, दधिसमुद्र, उदधिसमुद्र, सुरासमुद्र तथा मानसर-समुद्रों का वर्णन है । इनके वर्णन में कवि परम्परा का अनुसरण हुआ है, परन्तु जायसी की उसी विशेषता के साथ जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है । जैसे क्षीरसमुद्र का वर्णन करते हुए कवि वहाँ की माया का वर्णन करके कहता है कि इस माया के प्रति स्वाभाविक आकर्षण जो हृदय में होता है उसे संवरण करना ही पथिक (साधक) के लिए श्रेय है, इत्यादि । जैसे—

खीर-समुद का बरनौं नीरू । सेत सरूप, पियत जस खीरू ॥
उलथहिं मानिक मोती हीरा । दरब देखि मन होइ न धीरा ॥
मनुआँ चाह दरब औ भोगू । पंथ भुलाइ बिनासै जोगू ॥
जोगी होइ मनै सो सँभारै । दरब हाथ कर समुद्र पवारै ॥
दरब लेइ सोई जो राजा । जो जोगी तेहि के केहि काजा ।
पंथिहि पंथ दरब रिपु होई । ठग, बटमार, चोर सँग सोई ॥
पंथी सो जो दरब सौं रूसे । दरब समेटि बहुत अस मूसे ॥

मानव-स्वभाव और हाव-भावों के समयोचित और स्वाभाविक चित्र भी जायसी ने अनेक खींचे हैं । उनमें इनकी सफलता दर्शनीय है । ये जिस कौशल के साथ शारीरिक भाव-भंगियों को अंकित करते हैं, उसी कौशल के साथ मनोभावों को । जलक्रीडा में पदमावती और उसकी युवती सखियों के आनन्दोल्लास के साथ उनकी अंग-भंगिमाओं का भी बड़ा बारीकी से दिग्दर्शन हुआ है । यही बात मनोव्यापारों के प्रदर्शन में,

जहाँ-तहाँ दिखायी है। यह सब देखकर कह सकते हैं कि जायसी कवि के साथ ही एक सफल चितेरे हैं। जायसी ने अपने वर्णनो के द्वारा आगे आने वाले बडे-बडे कवियो को प्रचुर भाव सामग्री दी है। तुलसी और बिहारी जैसे कविरत्नो ने उनकी उक्तियो और उनके चित्रणो से अपने काव्य का शृङ्गार किया है तो दूसरे कवियो का तो कहना ही क्या ? परन्तु जायसी का काव्य ग्रामीण अवधी में होने के कारण अधिक प्रचलित नही हुआ और सर्वसाधारण में उसकी इन विशेषताओ पर चर्चा भी नही हो सकी। 'पदमावत' की प्रतियाँ प्राय फारसी लिपि मे लिखी हुई प्राप्त हुई हैं, जो अधिकतर मुसलमान सज्जनो के पास मिली हैं। इससे उनके काव्य कोशल के प्रचार में बाधा पडी है। जायसी ने अप-भ्रश काव्य एव फारसी मसनवी से लाभ अवश्य उठाया है, परन्तु सस्कृत-साहित्य का ज्ञान न होने से वे उससे वचित से ही रहे हैं। इतने पर भी उनकी प्रतिभा दूसरो के लिए ईर्ष्या की वस्तु हो उठी है। उसका कारण है उनमें भावप्रवणता, निरीक्षण पटुता और सरल अभिव्यजना का अद्भुत मेल।

(७) पदमावत के पात्र और उनका चरित्र-चित्रण

पदमावत के पात्रो में मनुष्य मुख्य हैं सही परन्तु उनका कार्य आने से इतर श्रेणी के पात्रो की सहायता बिना नही चलता। उन्हे देव-श्रेणी के पात्रो की मदद दरकार है। उनके हितसाधन में पशु पक्षी भी सहायक होते है। बल्कि हीरामन तोता ही एक प्रकार से इस सारी कथा का सूत्रधार है। उसका सृजन कर के जायसी ने जन्मान्तरवाद पर आस्था प्रकट की है और सस्कारो का एक जन्म से दूसरे जन्म में पहुँचना भी माना है। हीरामन में पूर्व-भाव की विद्या के संस्कार हैं। वह वयस्क है। उसके गले में कंठी है। वह द्विज होने से ब्राह्मण-वर्ग का है। वेदपाठी और पडित है। वह सूरज (राजा रतनसेन) को चाँद (पदमावती) से मिलाने का वचन राजा को देता है। वही राजा के हृदय में पदमावती का प्रेमाकुर

पैदा करता है। वही राजा का सिंहलद्वीप तक पथ-प्रदर्शन करता है। वहाँ पहुँचकर पदमावती को राजा के पहुँचने का समाचार देता है तथा राजा के प्रेम का इस प्रकार वर्णन करता है कि पदमावती के हृदय में भी अनुराग की आग प्रज्वलित हो उठती है। वह अपने योगी (प्रेमी) से साक्षात् करने को देवपूजन के बहाने से मन्दिर में पहुँचती है। अध्यात्मपक्ष में हीरामन ईश्वर-प्राप्ति के मार्ग में गुरु का काम करता है। 'दुनियाँ-धधा' नागमती से राजा को विरक्त करके परम ज्योति पदमावती की ओर उसकी चित्तवृत्ति को मोड़ देता है और समय-समय पर उसे उस मिलन के लिए उचित परामर्श देता है। रतनसेन-पदमावती-मिलन के साथ उसका कार्य समाप्त हो जाता है; काव्यपक्ष में भी और अध्यात्मपक्ष में भी।

देव-श्रेणी के पात्रो में हनुमान, महादेव, पार्वती और लक्ष्मी आदि हैं। योगी के वेश में वियोगी रतनसेन जब देवस्थान को ककनू पक्षी की तरह जला देने की अवस्था में पहुँच जाता है तो देवताओ में खलबली मच जाती है और हनुमान का लांगूल जलने लगता है तब वे भगवान् शंकर को खबर देते हैं। शंकर पार्वती-सहित घटनास्थल पर पहुँचते हैं। पार्वती कौतूहलवश रतनसेन के प्रेम की परीक्षा लेती है, और प्रसन्न होकर शकर जी से उसकी सहायता की प्रार्थना करती हैं। फलत. रतनसेन पदमावती को पत्नी रूप में प्राप्त करता है। अध्यात्मपक्ष में इसकी कोई विशेष संगति नही है। केवल इतना कह सकते हैं कि अनन्य प्रेम के बिना ईश्वरप्राप्ति नही हो सकती और जब वैसा प्रेम उत्पन्न हो जाता है तो देवताओ का सहयोग भी प्राप्त हुए बिना नहीं रहता।

लक्ष्मी और समुद्र को जायसी ने देव-श्रेणी के पात्रों में नही रखा प्रतीत होता है। कथा को रोमांटिक स्पर्श देने के लिए उन्हें अति-मानवीय पात्रों के रूप में ग्रहण किया है। नागमती का सदेश पाकर

रतनसेन की इच्छा फिर उस ससार में लौट चलने की हुई है अत विश होकर सिंहल से भारत की जलयात्रा जब वह अपनी प्रिया पदमावती और अपने साथियों के साथ करने लगे तो तूफान में नौकाएँ जलमग्न हो गयी। बहती हुई पदमावती लक्ष्मी और उसकी सखियो को मिली। उसके रूप-यौवन और उसकी करुण दशा पर लक्ष्मी को दया आयी। अपने पिता सागर से कहकर उसने रतनसेन को खोज मंगाया तथा पाँच अनमोल रत्नराशि देकर उन्हे विदा किया। इस अन्तर्कथा का भी अध्यात्मपक्ष में कोई मेल नहीं है। पदमावती के प्रति रतनसेन का प्रेम आत्मा की परमात्मा के प्रति व्याकुलता के रूप में है, परन्तु यहाँ पदमावती को वियोग व्याकुल दिखाया गया है।

पदमावति कहँ दुख तस बीता। अस असोक-बीरौ तर सीता।
कनकलता दुइ नारँग फरी। तेहि के भार उठि होइ न खरी।
तेहि पर अलक भुअंगिनि डसा। सिर पर चढ़ै हिये परगसा।
रही मृनाल टेकि दुख-दाधी। आधी कवल भयी, ससि आधी।
नलिन खंड दुइ तस करिहाऊँ। रोमावली बिछूक कहाहूँ।
रही टूटि जिमि कंचन-तागू। को पिउ मेरवै देइ सोहागू।
पान न खाइ करै उपवासू। फूल सूख, तन रहा न माँसू।

पदमावत मे प्रेम-परीक्षा के अनेक स्थल हैं, वहाँ सर्वत्र आध्यात्मिक रूपक की चिन्ता व्यर्थ है। बिंब-प्रतिबिंब भाव रखने की चेष्टा करके रूपक-निर्वाह का कवि ने प्रयास नहीं किया है। यदि करता तो काव्य की रुचिरता और सरसता का अभाव हो जाता। पदमावती और नागमती का अन्त में रतनसेन के साथ सती हो जाना भी एक ऐसा ही स्थल है। खैर, यहाँ तो हमें यही बताना है कि दैवी और अतिमानवीय चरित्रो की जायसी ने अवतारणा तो की है, काव्य के घटनाचक्र में उनका सहयोग भी कम नहीं है, परन्तु उनके चरित्र की विशेष व्याख्या की न आवश्यकता थी, न कवि उस व्यर्थ प्रयास में प्रवृत्त हुआ है। मनोवैज्ञानिक

चारित्रिक विकास उनके मानवी पात्रों में ही देखा जाता है जिनमें रतन-सेन, पद्मावती, नागमती, राघवचेतन, सुलतान अलाउद्दीन तथा गोरा-बादल मुख्य हैं। इनमें जायसी ने कई पात्रों का आध्यात्मिक अर्थ में भी अध्याहार करने का संकेत किया है। परन्तु उनके लौकिक अस्तित्व में किसी प्रकार बाधा उपस्थित नहीं होती।

रतनसेन—वह राजा है। चित्तौड उसकी राजधानी है। आध्यात्मिक अर्थ में वह मन का प्रतीक है जो शरीर-रूपी राजधानी पर राज्य करता है, परन्तु यहाँ हमें उस अर्थ का प्रयोजन नहीं है। हमें तो उसके मानवी चरित्र-विकास को ही देखना है। नागमती जैसी सतीसुन्दरी रानी के होते हुए भी, उसका हीरामन द्वारा पद्मावती के रूपगुण की प्रशंसा पर एकाएक इस प्रकार प्रेम में पागल होकर घरबार त्याग देना उसके चरित्र को कुछ ऊँचा नहीं उठाता। उसमें लोभ और वासना की उत्कट गंध है। परन्तु पद्मावती के प्रति उसके प्रेम की उत्कटता और एका-न्तता में उसकी लगन और निष्ठा निखर गयी है, पार्वती और लक्ष्मी द्वारा ली गयी परीक्षा में उसकी परीक्षा भी हो गयी है। फिर तो वह प्रेम सघन और गंभीरतर होता गया है। उसकी परिणति में वह वासना नहीं रह गयी है। नागमती का संदेश पाकर चित्तौड आने तथा पद्मावती और नागमती में सौहार्द्र स्थापित कराने के सफल प्रयत्न में उसके चरित्र पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। वह परस्पर झगड़ती हुई सपत्नियों के पास जाकर कहता है—

एक बार जो पिय मन बूझा। सो दुसरे सौं काहेक जूझा।
अस गियान मन आव न कोई। कबहूँ राति, कबहुँ दिन होई।
धूप छाँह दोउ पिय के रंगा। दूनौं मिले रहैं इक संगा।
जूझ छाँडि अब बूझहु दोऊ। सेवा करहु सेव-फल होऊ।

गंग-जमुन तुम नारि दोउ, लिखा मुहम्मद जोग।
सेव करहु मिलि दूनौ, तौ मानहु-सुखभोग।

एक को गंगा और दूसरी को जमुना बताकर तथा उन्हे बारी-बारी से गले लगाकर वह बेचारी नागमती का परितोष-मात्र नही करता है। आगे राघवचेतन जैसे पाखडी को निर्वासन दड देने में, तथा सुलतान अलाउद्दीन पर सहसा विश्वास कर लेने में उसके स्वभाव की अदूरदर्शिता और निश्छलता स्पष्ट है। उसके व्यक्तिगत वीरता-प्रदर्शन के अवसर नही आये हैं, पर घटनाचक्र से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वह एक वीर योद्धा था। अन्त में युद्धक्षेत्र में ही वह वीरगति को प्राप्त होता है।

पदमावती—वह रूप और प्रेम की देवी है। उसके चरित्र की विशेषता रतनसेन के प्रति उसके अनुराग में है। यदि वह कही अपनी पराजय स्वीकार करती है तो अपने प्रियतम के चरणो में, नही तो अपने रूप-गुण का गुमान उसे कम नही है। अनेक स्थलो पर वह स्वय अपने रूप और यौवन की प्रशसा करती है। चित्तौड आकर रतनसेन नागमती के कक्ष में अपनी रात बिताता है। इस एक रात के अपनी सपत्नी के सौभाग्य को वह सहन नही कर पाती। वह कुपित होकर सबेरे राजा से कहती है—

हौं कै नेह कुआँ महं मेली। सींचै लाग झुरानी बेली॥

फिर कहती है—

मै हौं सिंघल कै पदमिनी। सरि न पूज जंबू-नागिनी॥
मोरी बास भवर सँग लागहि। ओहि देखत मानुस डरि भागहि॥
हौं पुरुखन कै चितवन दीठी। जेहि के जिउ अस अहौं पईठी॥

सौत के सम्बन्ध में जो अपने स्वामी के प्रति इतनी अनुदार है, वही उसकी अनिष्ट-आशका के प्रति इतनी उदार भी है कि राघवचेतन को शान्त करने के निमित्त उसे अपना अनमोल ककण भी दे देती है। इसमें उसकी दूरदृष्टि भी व्यक्त है। राजा को सुलतान द्वारा दिल्ली ले जाये जाने पर उसकी गोरा बादल से मत्रणा उसकी वीरता-धीरता की

परिचायक है। देवपाल के प्रलोभन तथा अन्य प्रलोभनों में पूरी उतर जाने में उसके सतीत्व की परीक्षा होती है, और उसका अंतिम अध्याय पूर्ण होता है उसके चितारोहण में। पदमावती कुल मिलाकर रूप में देवांगना, धर्मपालन में साध्वी और सांसारिक व्यवहार में औसत नारी है।

नागमती—यह एक साथ ही दुखिया और सुखिया कही जा सकती है। इसका चरित्र दिव्य और आकर्षक है। कवि ने इसे आध्यात्मिक अर्थ में 'दुनियाँ धन्धा' माना है। हीरामन तोते ने इसके रूप का निरादर किया है। इसे अपने रूप और सौभाग्य का जो गर्व था उस पर उसने आघात किया है। अनेक स्थलों पर 'पदमावत' में इसे साँवरी और पदमावती को गोरी कहा गया है। अपने लिए जहाँ पदमावती कहती है—

हौं पिउ जैसी कुंद, नेवारी।
हौं सिंगार हार जस तागा।

वहीं अपनी सपत्नी नागमती से वह कहती है—

मोहिं तोहि मोति-पोत कै जोरी।

फिर उसके रूप पर इस प्रकार कटाक्ष करती है—

ठाढि होसि जेहि ठाईं, मसि लागै तेहि ठावँ।
तोंहि डर राँध न बैठौं, मकु साँवरि होइ जाँव॥

इस कथन में कटाक्ष है तथ्य नहीं, क्योंकि यदि नागमती इतनी कुरूप और गुणहीन होती तो पदमावती की उपस्थिति में उसे पुनः सौभाग्य प्राप्त न होता। स्वयं कवि ने दोनों का एक साथ इस प्रकार वर्णन किया है—

दुवौ नवल भरि जोबन गाजैं।
अछरी जनहुँ अखारे बाजैं॥

इससे ज्ञात होता है कि नागमती अपनी सौत जैसी ही सुन्दरी थी; दूसरी अप्सरा थी। गुणवती कैसी थी यह उसके उद्‌गारों और विचारों से जहाँ तहाँ व्यक्त होता है। अपनी सौत के लिए उसका सन्देसा है—

हमहु बियाही संग ओहि पीऊ। आपुहि पाइ जानु पर जीऊ॥
अबहु मया करु, करु जिउ फेरा। मोहि जियाउ कंत देइ मेरा॥
मोहि भोग सौं काज न बारी।
सौंह दीठि कै चाहनहारी॥
सवति न होसि तू बैरिनि, मोर कंत जेहि हाथ।
आनि मिलाव एक बेर, तोर पाँय मोर माथ॥

अपने स्वामी के लिए उसका जो कहना है कि—

यह तन जारौं छार कै, कहौं कि पवन! उड़ाव।
मकु तेहि मारग उडि परै, कंत धरै जहँ पाँव॥

हृदय की इसी उदारता, प्रेम की इसी प्रशस्तता, के बल पर उसे अपने स्वामी का अखंड सौभाग्य प्राप्त था, उसने स्वयं अपने दाम्पत्य-जीवन की उपमा सारस की जोड़ी से दी है—

सारस-जोरी कौन हरि मारि बियाधा लीन्ह।

जब सिंहल से लौटकर रतनसेन उसके महल में पहुँचता है, तो स्वाभाविक मान से उसका हृदय भर जाता है—

नागमती मुख फेरि बईठी।
सौंह न करै पुरुष सौं दीठी॥
ग्रीसम जरत छाँड़ि जो जाई॥
सो मुख कवन दिखावै आई?

यह अपने स्वामी की बड़ी मार्मिक भर्त्सना करती है—

काह हँसौ तुम मो सौं, किएउ और सौं नेह।
तुम मुख चमकै बीजुरी, मोहि मुख बरसै मेह॥

भलेहि सेत गंगाजल मीठा।
जमुन जो साम नीर अति मीठा ॥

सचमुच ही पदमावती और नागमती के प्रेम में गंगा और जमुना के जल का सा अन्तर है। वह देखने में शुभ्र है, यह पीने में मधुर है। इस प्रकार नागमती के जीवन को व्यथा की ज्वाला में तपाकर जायसी ने बड़ा आकर्षक बना दिया। इस दुखिया नारी के लिए पाठक की सब से अधिक सहानुभूति उन्होने सुरक्षित कर दी है। अन्यत्र तड़क-भड़क है, संघर्षण-विघर्षण है, भीड़-भाड और आमोद-प्रमोद है परन्तु यहाँ सीधा-सरल किन्तु, असर करनेवाला, आत्म-समर्पण है। इसमें उत्कट स्वार्थ का भाव नही है। इसमें दो बूँद जल की आकाक्षा है। उस प्रदान में कवि ने कृपणता नहीं की है। उसकी उपलब्धि कराकर प्रेम के मार्ग को बियावान में खो जाने से बचा लिया है। उन्हे कहना पडा है—

पलुही नागमती कै बारी।
सोने फूल फूलि फुलवारी ॥

इससे अधिक नागमती की प्रेम-परीक्षा दरकार न थी तो भी कवि ने उसका स्वामी के शव के साथ चितारोहण वर्णन किया है।

राघवचेतन—इसका परिचय कवि के शब्दो में इस प्रकार हैं—

चित चेता, जानै बहु भेऊ। कवि बियास, पण्डित सहदेऊ ॥
बरनी आइ राज कै कथा। पिंगल महँ सब सिंघल मथा ॥

बेद-भेद जस बररुचि; चित चेता तस चेत।
राजा भोज चतुरदस, भा चेतन सौं हेत ॥

'दूज' के निर्णय में पण्डितो से विवाद उठ खड़ा होने पर पण्डितो ने उसके सम्बन्ध में कहा—

राघव करै जाखिनी-पूजा।
चहै सो भाव दिखावै दूजा ॥

यहि कर गुरू चमारिन लोना।
सिखा काँवरू पाढ़ै टोना॥

इसके बाद पण्डितों ने राजा को भरमाने के लिए कहा—जो अमावस को द्वितीया ला सकता है ऐसे पाखडी जादूगर को राजद्वार में नहीं रखना चाहिए, क्योंकि कभी वह चन्द्रमा के लिए राहु को भी बुला सकता है। इसी तरह की छल-प्रपचमयी विद्या द्वारा राजा भोज छले गये थे। पण्डितों के भावी सकेत-सूचक इन द्वि-अर्थक शब्दों के चक्र में आकर रतनसेन राघवचेतन को निर्वासन की आज्ञा देता है।

इस समाचार से पदमावती कुछ अस्त-व्यस्त होता है। वह कहती है—

ज्ञान-दिस्टि धनि अगम विचारा।
भल न कीन्ह अस गुनी निसारा॥
जेहि जाखिनी पूजि ससि काढा।
सूर के ठाँव करै पुनि ठाढा॥
कवि कै जीभ खडग हरद्वानी।
एक दिसि आगि, दुसर दिसि पानी॥

इस आशका से भयभीत पदमावती ने राघवचेतन को प्रसन्न करने के निमित्त सूर्यग्रहण का दान लेने के बहाने बुलाया। राघवचेतन ब्राह्मण था, इनकार कैसे करता? जायसी कहते हैं—

बाम्हन जहाँ दच्छिना पावा।
सरग जाइ जौ होइ बुलावा॥

परन्तु अब तक वह यह न जानता था कि पदमावती इतनी सुन्दरी है। जब झरोखे से वह अपने हाथ का ककण फेंकने लगी तो उसकी रूप-छटा देखकर राघवचेतन, जो विद्या और बुद्धि में इस प्रकार सचेत था, हतचेत होकर गिर पड़ा। उसके मुँह से कवि ने कहलाया भी है—

लेइ गयी जीउ दच्छिना धोखे।

परन्तु पदमावती की प्राप्ति का कोई उपाय न देखकर उसने दूसरा ही मार्ग ग्रहण करना उचित समझा, और कहा—

कँवल बखानौं जाइ तहँ, जहँ अलि अलाउदीन।
सुनि कै चढ़ै भानु होइ, रतन जो होइ मलीन॥

इस निश्चय में पदमावती की प्राप्ति की उतनी आशा न थी कि जितनी रतनसेन से बदला लेने की।

इस प्रकार विद्या बुद्धि का अवतार राघवचेतन एक भयंकर प्राणी है। वेद और शास्त्र, धर्म और कर्त्तव्य, का घनिष्ट परिचय होने से उनके प्रति उसकी आस्था उठ गयी प्रतीत होती है। जाति, धर्म और देश का विचार स्वार्थ के सामने उसे नगण्य है। सुलतान से चित्तौड़ के राजसिंहासन का वचन मिल जाना ही उसके लिए पर्याप्त है।

अलाउद्दीन का इतिहास-प्रसिद्ध चरित्र ही अंकित हुआ है। गोरा-बादल के चरित्र में राजपूती वीरता का ओजस्वी चित्र है। जायसी पात्रो के निर्माण और उनके चित्रण में सफल हुए हैं परन्तु गोस्वामी तुलसीदास या सूरदास की भाँति उनके पात्रों का व्यक्तित्व अपनी-अपनी विशेषता नहीं रखता। चरित्र-निर्माण में गहरी और हलकी रेखाओं का ध्यान कम रखा गया है, परन्तु उसका बिलकुल अभाव नहीं है। उनके चरित्र चित्रण में एक ही कमी है कि 'भिन्न-भिन्न परिस्थितियो की अन्त:वृत्ति का सूक्ष्म निरीक्षण इनमें नही है।' लेकिन जहाँ कही इस ओर उन्होने ध्यान दिया वहाँ उनसे कोई शिकायत नही है। इसका पहला कारण तो यही है कि जायसी में निरीक्षण शक्ति से अधिक भावुकता है। वे प्रेम की पीर अपने कवि हृदय में लिये फिरते हैं। उस पीडा को, हृदय की उस भाव-गंगा को, जहाँ भी अवसर मिले वहा देने को वे तैयार हैं। सासारिकता उन्हे कम रुचती है, उनके यहाँ व्यावहारिक जीवन की सार्थकता प्रेम और भावुकता के प्रति आत्म-समर्पण करने में ही है।

परन्तु जहाँ तहाँ काव्य में उन्हें व्यवहार की कठिन भूमि पर उतर आना ही पड़ा है तब एक तलदर्शी की भाँति उसका उन्होंने निर्वाह किया है। गोरा बादल के चरित्र-चित्रण में उनकी भावुकता और व्यावहारिकता एक प्राण हुई दिखती हैं। राघवचेतन के चरित्र में उनका व्यावहारिक रूप अधिक प्रत्यक्ष है।

(८) 'पदमावत' मे पात्रो के सम्बन्ध से प्रेम के भिन्न-भिन्न रूप

जिस प्रकार स्वाति की बूँद का पात्र भेद से भिन्न-भिन्न फल होता है, उसी प्रकार 'पदमावत' में प्रेम-तत्त्व के पात्र-भेद से भिन्न-भिन्न रूप मिलते हैं। रतनसेन का पदमावती के प्रति प्रेम एक तरह का है, नागमती का रतनसेन के प्रति प्रेम उससे भिन्न प्रकार का है। पदमावती का रतनसेन के लिए प्रेम और ही प्रकार का है। अलाउद्दीन का पदमावती के प्रति प्रेम अपनी अलग कोटि रखता है।

आध्यात्मिक रूपक की सार्थकता के हेतु, जिसका उल्लेख कवि ने काव्य के अन्त में किया है, रतनसेन का पदमावती के लिए प्रेम विह्वल होकर अपने शरीर का भाव भूल जाना जीव की परमात्मा के लिए स्वाभाविक व्याकुलता का सूचक है। किन्तु लौकिक अर्थ में यह कुछ अस्वाभाविक सा हो गया है। हीरामन से पदमावती के रूप और यौवन की प्रशंसा सुनते ही राजा रतनसेन का व्याकुल हो उठना, अपना घर-बार छोड़ देना, नागमती जैसी प्रेम की मूर्ति की चिन्ता न करके एक अज्ञात सुन्दरी के लिए जोगी बनकर निकल भागना, जिसके हृदय की स्निग्धता और रुचि का उसे कोई ज्ञान नहीं है, बहुत कुछ औपन्यासिक हो गया है। यह प्रेम फारस की प्रेम-परम्परा से मिलता-जुलता है जिसमें पुरुष प्रेमी स्त्री प्रेमपात्र के लिए जीवन के जोखिम की परवाह न करके उसमें लग जाता है। शीरीं और फरहाद की प्रेम-कहानी कुछ इसी प्रकार विकसित होती है। पर्वत काटकर नहर बनाने की सूरत में ही प्रेमिका की प्राप्ति होने की आशा में जीवन का संकट मौजूद है। यहाँ

भी सिंहल तक पहुँचने में ही सात समुद्रों को पार करना है। इन समुद्रों की कल्पना भी कवि ने बड़ी विचित्र की है। यदि किसी प्रकार उन्हें पार भी किया जा सके तो भी पद्मावती की प्राप्ति एक आकाश-कुसुम की प्राप्ति से कम कठिन नहीं है। प्रश्न होता है कि भारतीय मिट्टी से बने रत्नसेन में, जो स्वयं विवाहित है, जिसे अपने दाम्पत्य जीवन के प्रति कोई असन्तोष नहीं है, इस अस्वाभाविक प्रेम-पथ का पथिक बनने की आवश्यकता क्या है ? जो न उसके संस्कारों के अनुकूल है, न आदर्शों के। यहीं पर भारतीय-अभारतीय का अन्तर प्रकट हो जाता है। यदि कोई भारतीय कवि इस कथानक को लिखता तो वह नागमती की सृष्टि शायद ही करता। जायसी के सामने यह समस्या उतने उग्र रूप में न थी। उनके मजहब-इस्लाम में बहुपत्नी-प्रथा एक शास्त्र सम्मत तथ्य है। उसमें कोई अनौचित्य नहीं है। नायक के व्यक्तित्व और सदाचार में इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। फिर उनके सामने भारतीय साहित्य में प्रसिद्धि-प्राप्त नल-दमयन्ती की कथा मौजूद थी, जो हंस द्वारा प्रेम सूत्र में ग्रथित हो चुके थे। परन्तु वहाँ उनके प्रेम का आधार था। नल दमयन्ती के विषय में और दमयन्ती नल के विषय में बहुत पहले से ही सुन चुके थे और एक दूसरे के रूप गुण पर निछावर थे। इधर रत्नसेन के लिए पद्मावती एक अपरिचित सुन्दरी है। उसकी प्राप्ति में यदि उसे कोई सहारा है तो केवल हीरामन का। आध्यात्मिक अर्थ में हीरा-मन कैसा ही महान व्यक्तित्व रखता हो, वह पथप्रदर्शक गुरु ही क्यों न हो, लौकिक दृष्टि से वह अशक्त है—इतना अशक्त कि बिल्ली के डर से सिंघल छोड़कर भाग निकलता है, बहेलिये के जाल में फँस जाता है, नागमती के क्रोध का शिकार होता है। यदि दासी उसे बचाकर न रखती तो शायद वह यह सब कहने के लिए जीवित भी न रहता। इस तिनके का सहारा लेकर रत्नसेन का यह महान अभियान उसका दुस्साहस-पूर्ण कार्य है। वह प्रेम से उतना प्रेरित नहीं है, जितना लोभ से। यदि रत्नसेन के इस प्रयत्न में औचित्य है, तो अलाउद्दीन का प्रयत्न भी तो

कुछ कुछ इसी प्रकार का था था। उसमें और इसमें एक ही बात का अन्तर है। रतनसेन एक कुमारी की प्राप्ति में लगा है और अलाउद्दीन एक विवाहिता नारी की।

अपने सच्चे अर्थों में पदमावती के लिए रतनसेन का प्रेम उस समय से आरम्भ होता है, जब वह देव-स्थान में उसे देखकर मूर्छित होता है। पार्वती द्वारा प्रेम परीक्षा में वह इसीलिए सफल हो सका है कि उसे अपनी प्रेयसी के आकार-प्रकार का ज्ञान है। बाद की घटनाओं में उसका प्रेम औचित्यपूर्ण और स्वाभाविक है। ज्यों-ज्यों पदमावती के साथ उसका समागम विस्तृत होता गया है त्यों-त्यों प्रेम का रूप भी सघन और भद्र होता गया है। परिणति में प्रेम की स्वाभाविकता का अच्छा निर्वाह हुआ है। उसमें क्रमशः लोक-कल्याण की भावना का विकास भी, छानबीन के साथ देखें तो, मिल जाता है। यदि प्रारम्भ से ही रतनसेन का प्रेम एकान्तिक और अनन्य मान लिया जाय तो बहुत निराश होना पड़ेगा। क्योंकि पदमावती के साथ शारीरिक सम्बन्ध होने के कुछ समय बाद हम रतनसेन में एक तृप्ति का अनुभव करते हैं, जो विरक्ति का आभास देती है। वह अब सिंहल छोड़कर चित्तौड़ की ओर जाना चाहता है। काव्य में ऐसी कोई घटना घटित तो नहीं हुई कि पदमावती उसके साथ जाने से इनकार कर देती और तब देखती कि वह क्या निर्णय करता? परन्तु ऐसा होने पर भी वह चित्तौड़ जाये बिना नहीं मानता यही कहने को जी चाहता है। इस सूरत में रतनसेन के प्रेम की शृङ्खला छिन्न-भिन्न होकर बिखर जाती है और वह एक साधारण पुरुष का साधारण नारी के प्रति नैसर्गिक ऐन्द्रिय-प्रेम-मात्र रह जाता है। अपने शुद्ध अर्थ में प्रेम वह है जो स्वार्थ और वासना-परक न होकर आत्मोत्सर्ग की भावना से पूर्ण हो, जो एक बार जगकर उत्तरोत्तर घनतर होता जाय, जो प्रेम-पात्र के सुख-सन्तोष की ओर ही देखे, अपने सुख सन्तोष की ओर से मुँह मोड़ ले।

नागमती का रतनसेन के प्रति प्रेम एक कुलवधू का अपने जीवन सर्वस्व के लिए प्रेम है। प्रेम के इस चित्र को अंकित करने में जायसी ने भारतीय नारी जीवन को बड़े स्वाभाविक रूप में दिखाया है। पदमावती और नागमती के नामों के वाच्यार्थ को लेकर कवि ने जहाँ-तहाँ एक को मधुमयी तो दूसरी को विषैली बताया है और आध्यात्मिक अर्थ में भी पिछली को दुनियाँ-धंधा माना है तो भी उसके प्रेम को जिस सहृदयता से खोलकर दिखाया है वह सबसे उज्ज्वल हो उठा है। नागमती का प्रेम पार्थिव प्रेम है सही, परन्तु वह घृणित नहीं है। उसमें इन्द्रियविलास की परछाई पड़ती है, परन्तु कर्तव्य और धर्म की सीमा का उल्लंघन नहीं है। वह पृथ्वी पर प्रेम की स्वर्गीय देवी का मन्दिर है, वह मृत्युलोक में इन्द्रिय-विलास की मिट्टी में, मानवी खाद-पानी से सींचा हुआ प्रेम का ऐसा पारिजात है जिसमें नंदनकानन की दिव्य सुगन्धि और चन्द्रलोक की सुधा का एक साथ ही निवास है। काव्य में नागमती का पहला दर्शन कुछ सुन्दर नहीं है। वह हीरामन तोते के सामने एक रूप-गर्विता और स्वार्थलिप्सा में डूबी हुई नारी के रूप में दिखायी पड़ती है। हीरामन को मार डालने के लिए दासी को आज्ञा देते समय उसका चित्र बड़ा क्रूर रहा है। उसके बाद से, जब से रतनसेन सिंघल जाने को तैयार है, उसका जीवन और रूप बड़ा ही आकर्षक बन जाता है। उसकी करुण और अश्रुसिक्त मूर्ति पिछली कालिमा से धुलकर एकदम दिव्य बन जाती है। उसके प्रेम में भी उसके रूप की पवित्र छाया पड़ती रहती है। उसे हम पाशवी से मानवी और मानवी से देवी बनते देखते हैं। उसके प्रेम में उत्सर्ग की भावना निरन्तर बढ़ती जाती है। मालूम पड़ता है कवि की इस शिक्षा को नागमती ने अक्षर-अक्षर अपने जीवन में चरितार्थ कर दिखाया है—

पपिहै स्वाती सौं जस प्रीती। टेकु पियास, बाँध मन थीरी।
धरतिहि जैस गगन सौं नेहा। पलटि आव बरसा रितु मेहा।।

मिलहिं जो बिछुरे साजन, अंकम भेंटि गहंत।
तपनि मृगसिरा जे सहैं, ते अद्रा पलुहंत ॥

नागमती के विरह के सामने मृगशिरा की 'तपनि' भी कोई चीज नहीं थी। उसने अपने प्रियतम के सिंघल-प्रवास के दिवस जिस तरह बिताये थे उसका उल्लेख जिस विस्तार और सहृदयता से जायसी ने किया था, वह अनुपम है, और देखते ही बनता है—

रकत कै आँसु परहिं भुइँ टूटी। रेंगि चलीं जस बीर-बहूटी।
सखिन्ह रचा पिउ संग हिंडोला। हरियरि भूमि कुसुंभी चोला॥
हिय हिंडोल अस डोलै मोरा। बिरह झुलाइ देइ झकझोरा।
जग जल बूड जहाँ लगि ताकी। मोरि नाव खेवक बिनु थाकी॥

परवत समुद अगम बिच, बीहड घन बन ढाँख।
किमि मैं भेंटौं कन्त तुम्ह, ना मोहि पाँव, न पाँख॥

बरसै मघा झकोरि झकोरी। मोर दुइ नैन चुवैं जस ओरी।
धनि सूखै भरे भादौं माहाँ। अबहु न आएन्हि सीचेन्हि नाहा।

(इस विरह में कितनी करुणा है, इस प्रेम में कितने आँसू हैं, इस आह्वान मे कितनी कातरता है, कितनी विवशता है। इसमें वासना की आँधी नहीं है, इसमें इन्द्रिय-विलास का बवंडर नहीं है, इसमें तरल-प्रेम की स्निग्ध ज्योत्स्ना है। नागमती के प्रेम का सागर इस में उमड रहा है। धूल में लोटता हुआ बालक जैसे स्वर्ग की समानुभूति करा देता है वैसे ही नागमती का यह प्रेम सासारिक होते हुए भी वाग्जाल्पन से कहीं उच्च है। वह सच्चे अर्थों में प्रेम का प्रतीक है। वह परिचय और सहवास से उत्पन्न हुआ है, विरह और वियोग ने उसे स्थायी और व्यापक बनाया है। इसीलिए उसमें दूसरे के सुख दुख को समझने-समझाने की विश्वभावना का उदय हो गया है, जिसका काव्य में एकाध स्थल पर सकेत मिलता है। नागमती का प्रेम दाम्पत्य-प्रेम का नमूना है जिसमें

प्रेम-पात्र के लिए सर्वस्व-त्याग की भावना को भावना नही रहने दिया गया है, उसे चरितार्थ करके दिखाया गया है।)

काव्य की नायिका पदमावती का रतनसेन के प्रति प्रेम बहुत दूर तक प्रेम के रूप में नही है। उसे एक नवयुवती की कामवासना का प्रतीक ही कहा जा सकता है। यौवन-मद से मतवाली राजकुमारी मे जो आंधी उठ रही है वह पुरुष की इच्छा के रूप में है, किसी विशिष्ट प्रणयी के लिए नही। हीरामन के आश्वासन का उसे ध्यान है पर किसी विशेष पुरुष के लिए उसकी उत्कंठा नही है। वह किसी भी सुन्दर सुदर्शन युवक के प्रति अपने रूप और यौवन को अर्पण कर सकती है। यह स्थिति काव्य की नायिका के लिए बडी भयावह है। परन्तु वह कुमारी है। अभी तक उस पर किसी पुरुष का अधिकार नही हुआ है, अत वह निर्दोष मान ली जा सकती है।) रतनसेन मे देवस्थान में चार आँखें होने से प्रेम का उदय होता है। इससे निकट-पूर्व की अवस्था पूर्वानुराग की अवस्था मानी जा सकती है परन्तु जब से उसका प्रेम विशेषोन्मुख हो जाता है, हम बराबर उसे एक सच्ची प्रेमिका के रूप मे पाते हैं। (प्रेम-मार्ग से एक तिल भर वह विचलित नहीं होती। रतनसेन को सूली की आज्ञा होने पर वह अपने प्राण देने को तैयार हो जाती है। समुद्र में नौकाएँ नष्ट हो जाने पर वह वहती-बहती जब लक्ष्मी द्वारा बचा ली जाती है तब भी हम उसे स्वामी बिना जीवन नष्ट करने को तत्पर देखते हैं। ज्यो-ज्यो सहवास का रस परिपक्व होता है उसका प्रेम भी गहरा होता जाता है)। चित्तौड में पहुँच जाने पर पदमावती में गृहिणी की बुद्धि और सद्भावना जग जाती है। उसके प्रेम का रग निर्मल हो जाता है। पूर्वानुराग की अवस्था से विकसित होते-होते उसका प्रेम निर्भर प्रेम की दशा तक पहुँच जाता है। अपनी पहली अवस्था में जो प्रेम शारीरिक तृप्ति की आकाक्षा तक ही सीमित था, आगे चलकर उसे कर्तव्य बुद्धि हुई है, और उसे अपना मार्ग समझा है। पदमावती के प्रेम की विकासमान

दशा का उस अवस्था मे जाकर अवसान होता है जिसे आदर्श दाम्पत्य-प्रेम कह सकते हैं। यह प्रेम नागमती के प्रेम से भिन्न प्रकार का और भिन्न पथ से आते हुए भी अन्त में उसका समानान्तर हो जाता है।

चौथे प्रकार का प्रेम अलाउद्दीन का पदमावती के प्रति दिखाया गया है। परन्तु वह प्रेम नही रूप लोभ है। जायसी ने भी उसे शैतान द्वारा प्रेरित माया (प्रवचना) का कार्य ठहराया है। एक विवाहित स्त्री की प्राप्ति के लिए सुलतान द्वारा किया गया प्रयत्न प्रेम का कार्य नही कहा जा सकता। प्रेम का परिणाम मगलमय होना चाहिए, उसका प्रयास भी प्रेमपात्र की हितकामना से प्रेरित होना चाहिए। अलाउद्दीन का प्रयत्न उससे बिलकुल उल्टा है। उसका प्रारम्भ भी शैतानी भयकरता से होता है और अन्त भी। कोई भी समाज इस प्रेम की कामना नही करेगा। काव्य में उसका उपयोग काली पृष्ठभूमि का है जिस पर रगो की विविधता उज्ज्वल हो उठती है।

(६) जायसी का विरह-वर्णन

'जायसी की भावुकता' आदि अन्यान्य शीर्षको के अन्तर्गत जहाँ-तहाँ इस विषय का सकेत किया जा चुका है कि नागमती के विरह-वर्णन में कवि ने वियोगिनी नारी के हृदय को बडी सहृदयता से दिखाया है। ससार के अधिकाश महाकवियो की सहृदयता की परख उनके विप्रलम्भ वर्णन से हो की जाती है। मानव-जीवन में दाम्पत्य-प्रेम एक अत्यन्त कोमल अनुभूति है। उसकी प्रखरता सयोग में नही, वियोग पक्ष में ही अधिक सभव है। वियोगदशा में कठिन-से-कठिन हृदयवाला मानव इस अनुभूति से तरल-स्निग्ध होता हुआ देखा जाता है। फिर कवियो का तो कहना ही क्या ? वे तो अनुभूतियो और भावनाओ के अमृत को ही पीते और उसी में जीते हैं। अपने उन स्वर्गीय स्वप्नों को ही वे ससार को दे जाते है। सूर और तुलसी, भवभूति और कालिदास सभी ने इस शाश्वत मानव अनुभूति को अपने काव्यो में दिया है, बल्कि काव्यो

के सबसे सुन्दर स्थल वे ही हैं जो इस दशा की व्यञ्जना में सार्थक हुए हैं। 'मेघदूत', जो संसार के काव्यों में एक स्वर्गीय-विधान है, वियोग शृङ्गार का ही काव्य है। वियोगपक्ष की मार्मिक अभिव्यंजना के कारण ही श्रीमद्भागवत इतना सर्व-जन-प्रिय है।

जायसी के 'पदमावत' में यद्यपि संयोगपक्ष बड़े विस्तार से वर्णित है, कवि ने उसके देने में न स्थल संकोच का भय किया है न उसके प्रति किसी प्रकार की उदासीनता दिखायी है। बड़े उत्साह और बड़ी रुचि के साथ संपूर्ण विवरण सहित उसका उल्लेख किया है। परन्तु उसके कारण 'पदमावत' की प्रसिद्धि नहीं हैं। वही काव्य का सबसे मार्मिक और सुन्दर स्थल नहीं है। 'पदमावत' जिसके लिए जायसी की अमर-कृतियों में गिना जाता है वह है उसका वियोग-वर्णन। इस वियोग के वर्णन में कवि ने मानव-हृदय को प्रभावित करने की पूरी और सफल चेष्टा की है। वियोग के जितने स्थल प्राप्त हो सकते थे उनका सदुपयोग कवि ने किया है परन्तु सच्चे अर्थों में, प्रस्तुत काव्य में, वियोग-दशा का अनुभव नागमती को ही हुआ है, इसलिए नागमती का विरह-वर्णन ही सबसे विशद, विस्तृत और स्वाभाविक है। किसी ने यह बिलकुल सच कहा है कि वियोग और विषाद की अभिव्यञ्जना करनेवाला काव्य ही सबसे मधुर होता है। जायसी इस कथन में अन्तर्विहित भाव का मर्म समझते हैं, और एक मरमी कवि के नाते उस सुयोग को कभी हाथों से निकलने नहीं देते। रतनसेन को घर से निकले बारह महीने हो जाते हैं, ये बारह महीने उसके लिए कोई गिनती नहीं रखते, जल्दी-जल्दी बीत जाते हैं, क्योंकि उसका प्रयास एक सिद्धि की ओर उन्मुख है, परन्तु भरी जवानी और जीवन तथा आनन्द के सब सुखों को लिये लिये रानी नागमती ने विरह के ये दिन कैसे बिताये? वह अपने हृदय के उमड़ते हुए प्यार का प्याला किसके होठों से लगाये? यदि उसका स्वामी अपने कर्त्तव्य-पालन के लिए किसी युद्ध आदि में प्रवृत्त होने गया होता, क्योंकि वह भी एक क्षत्रिय था, तो सम्भव था वह भी एक वीरा-

ना की भाँति आचरण करती, परन्तु उसे तो मालूम है कि वह उसकी सौत की तलाश में गया है। उसे यह भी भय है कि उसी अनुपम रूप-लावण्यवती पदमावती ने ही दिनो तक उसे रूपजाल में लुभा रक्खा है। कोई पाश्चात्य नायिका होती तो ऐसी दशा में या तो प्रतिशोध की ज्वाला से धधक उठती या फारखती लिखकर अपने जीवन का नया पथ निर्माण कर लेती। नागमती तो ठहरी भारतीय आर्य-नारी। जन्म-जन्मान्तर के लिए स्वामी के चरणो में समर्पित। उसके लिए तो इसके सिवा कोई दूसरा मार्ग ही न था कि वह झरोखे में दिन रात बैठी-बैठी पथ हेरा करती, विरह में झुरती और आँसुओ में बहती। ऐसी दशा में विरह का एक-एक पल पहाड़ होकर आता और एक-एक दिन युग बन जाता। रानी नागमती के ऊपर उन बारह महीनो का बोझ बारह मन्वन्तरों का बोझ है। उसे जायसी जैसा सहृदय कवि नजर-अन्दाज कैसे कर सकता था। इसीलिए बारहमासे के रूप में कवि ने रानी की वियोग-दशा को दिखाया है। प्रत्येक ऋतु-परिवर्तन का उस अबला पर क्या प्रभाव पड़ता है उसे चित्रित किया है। जो सुख के साधन थे, वे दुख का घर बन गये हैं। जो शीतल प्रतीत होते थे, वे दाहक हो गये हैं। उस बेचारी पर स्वामी का ही अत्याचार नही है, सारी सृष्टि का है। प्रकृति का एक एक दृश्य, समय का एक-एक क्षण और वसुधा का एक-एक पदार्थ आज उसे सताने की तैयारी मे लगा है। एक वह दिन भी था जब ये ही सब आनन्द-विधायक थे। इनके साथ उस सौभाग्यकाल की कितनी स्मृतियाँ सलग्न हैं? वे सुनहरी रेशमी सस्मृतियाँ आज उसे और भी अधिक रुला रही है। उनकी एक-एक झलक हृदय को कचोट लेती है। जायसी यदि विरहिणी की स्वाभाविक दशा का चित्रण करते तो आज उन्हें कौन पूछता? ऐसा होने से 'पदमावत' साधारण काव्यो का अल्प जीवन पाकर काल के गाल में कभी का समा गया होता।

इसीलिए जायसी के प्रशसक शुक्लजी ने उनके विरह-वर्णन के सम्बन्ध में कहा है कि 'नागमती का विरह-वर्णन हिन्दी-साहित्य मे

एक अद्वितीय वस्तु है। नागमती उपवनो के पेड़ों के नीचे रात-रात भर रोती फिरती है। इस दशा में पशु-पक्षी, पेड़-पल्लव जो कुछ सामने आता है उसे वह अपना दुखड़ा सुनाती है। वह पुण्यदशा धन्य है, जिसमें ये सब अपने सगे लगने लगते हैं। और यह जान पड़ने लगता है कि इन्हें दु:ख सुनाने से भी जी हलका होगा। सब जीवो का शिरोमणि मनुष्य, और मनुष्यो का अधीश्वर राजा। उसकी पटरानी, जो कभी-कभी बड़े-बड़े राजाओ और सरदारो की बातो की ओर भी ध्यान न देती थी, वह पक्षियों से अपने हृदय की वेदना कह रही है, उनके सामने अपना हाथ खोल रही है। हृदय की इस व्यापक दशा का कवियो ने केवल प्रेमदशा के भीतर ही वर्णन किया है, यह बात ध्यान देने योग्य है। मारने के लिए शत्रु का पीछा करता हुआ क्रोधातुर मनुष्य पेड़ो और पक्षियों से यह प्रश्न करता हुआ कहीं नहीं पाया गया है कि 'भाई! किधर गया ?"

आगे चलकर वे कहते हैं 'इस प्रकार नागमती की वियोगदशा का विस्तार केवल मनुष्य जाति तक ही नहीं, पशु-पक्षियों और पेड़-पौधो तक दिखायी देता है।...इसी नागमती के विरह-वर्णन के अन्तर्गत वह प्रसिद्ध बारहमासा है जिसमें वेदना का अत्यन्त निर्मल और कोमल स्वरूप, हिन्दू दाम्पत्य-जीवन का अत्यन्त मर्मस्पर्शी माधुर्य, अपने चारो ओर की प्राकृतिक वस्तुओ और व्यापारों के साथ विशुद्ध भारतीय हृदय की साहचर्य-भावना तथा विषय के अनुरूप भाषा का अत्यन्त स्निग्ध सरल, शुद्ध और अकृत्रिम प्रवाह देखने योग्य है।' जायसी को हम विप्रलम्भ शृङ्गार का प्रधान कवि कह सकते हैं। जो वेदना, जो कोमलता, जो सरलता और जो गम्भीरता इनके वचनो में है, वह अत्यन्त दुर्लभ है।'

इसमें सन्देह नहीं कि सूफी प्रेममार्गी सन्तो की परम्परा में प्रधान-रूप से, और हिन्दी साहित्य में सामान्य-रूप से, जायसी का विरहवर्णन एक उत्कृष्ट साहित्यिक सृष्टि है। उसमें नारीजीवन की शाश्वत भावना

का सर्वजन-अनुभूत चित्र है। संस्कृतियों और सभ्यताओं के साथ जो बदलनेवाला नहीं है, जो युगों के साथ पुराना होनेवाला नहीं है। (कवि ने रानी नागमती को वियोग की कथा में इतना लीन कर दिया है, कि वह रानी नहीं रह गयी। वह प्रोषितपतिका सामान्य गृहिणी हो गयी है। उसका सुख-दुख लोक जीवन और लोक हृदय का सुख-दुख हो गया है। वह प्रेम की प्रतीति में हमारी सहानुभूति ही नहीं चाहती, हमें प्रेममार्ग में चलने का सबल भी देती है। रानी होकर प्रेम की भीख माँगने जैसी दयनीय दशा में उतर आना, लोक-जीवन में प्रेम की कटुता को सह्य बनाना है। प्रेम की यह पीड़ा अध्यात्म-पक्ष को भी उज्ज्वल करती है। संसार में इस मिट्टी के पुतले मानव द्वारा प्रेम की साधना जब इतनी कठोर हो सकती है तो वह जिस असली प्रेमतत्त्व की प्रतीति है। उसकी साधना कितनी कठोर परीक्षा-सापेक्ष होगी, इसका आभास साधक को पहले ही मिल जाता है। उसे साधना के मार्ग में अग्रसर होने लायक बल इससे प्राप्त होता है। किसी भी दृष्टि से देखें इस प्रयास में जायसी हमारे, तुम्हारे और सब के साधुवाद के पात्र हैं।)

(१०) दुःखान्त या सुखान्त

यह देखना है कि 'पदमावत' दुःखान्त या सुखान्त में से कौनसी श्रेणी में आता है। यों तो उसमें संयोग का वर्णन भी कम नहीं है। पदमावती और रतनसेन के संयोग और मिलन का इतना विशद वर्णन उसमें हुआ है कि वह एक आनन्द, उत्सव और मिलन का काव्य कहा जाय तो कोई अनुचित नहीं। इसे बहुत अधिक विवरण के साथ देने के कारण ही उसमें कई उत्तेजक स्थल आ गये हैं। प्रेम के जिस आवेग के वशीभूत होकर रतनसेन योगी बनकर निकल पड़ा था, उसमें तो यह दृश्य अनुकूल हैं। जिस उत्कट अभिलाषा का भाव उस के प्रेम में था, और जिस कठिनाई से उस प्रेम की प्राप्ति हुई थी, उसी के अनुसार प्राप्त आनन्द का उपभोग न दिखाने से एक बड़ा दोष रह

जाता। उस इष्ट का मूल्य भी घट जाता। इस दृष्टि से सम्भोग शृङ्गार के नग्न-वर्णन का भी औचित्य समझ में आ सकता है। सम्भोग के दूसरे स्थलो का भी काव्य में जायसी ने उपयोग किया है, परन्तु मुख्य स्थल रतनसेन-पदमावती का सिंहल में मिलन ही है।

काव्य में वियोग के भी अनेक स्थल हैं परन्तु नागमती का वियोग-खण्ड ही सर्वोपरि है। यथास्थान इसका निर्देश हो चुका है कि इस वियोग खंड ने अपनी मार्मिकता के आगे किस तरह काव्य के दूसरे स्थलों को फीका कर दिया है। यहाँ तो हमें देखना यही है कि पदमावत को दु खान्त कहा जाय तो क्यों और सुखान्त माना जाय तो किस लिए। कथानक के स्वाभाविक झुकाव और परिणति पर ध्यान देना स्पष्ट है कि दो प्रेमियो का जो मिलन हुआ था वह दुनियाँ से देखा न गया। ससार कभी नही चाहता कि उसके देखते कोई प्रेम और आनन्द की दुनियाँ में निर्बाध विचरण करे। इसी स्वाभाविक ईर्ष्या का मूर्त प्रतीक राघवचेतन अलाउद्दीन और देवपाल में है। उनके प्रयत्न द्वेष की आग में निरन्तर जलने वाले ससार के प्रयत्न हैं। उस संघर्ष का परिणाम है स्वप्न जगत् का चूर-चूर हो जाना। किसी के हाथ कुछ न लगना। उसे कवि ने इन शब्दो में कहा है :—

आइ साह जौ सुना अखारा।
होइगा राति दिवस उजियारा॥
छार उठाइ लीन्ह इक मूठी।
दीन्ह उड़ाइ, पिरथिमी झूठी॥

एक मुट्ठी धूल के सिवा सुलतान अलाउद्दीन को क्या मिलना था। काव्य का अन्त सुखान्त नहीं जा सकता। चित्तौड की सूनी दुनियाँ में पहुँच कर हृदय एक शून्य निर्जनता और विषादमयी शून्यता में डूब जाता है। जो सुन्दरी पदमावती के राग रंग का स्थल था, जो सौंदर्य और प्रेम का देवस्थान था। जहाँ रतनसेन के लौट आने से कुछ समय पहले

सूखी फुलवारियाँ हरी-भरी हो गयी थी। और लताएँ सोने के फूल फूलती थी। अप्सराओ के उस नन्दन कानन में एक मुट्ठी धूल—चिता का अवशेप। कितना विपादजन्य, कितना हृदय विदारक और कितना ममभेदी था वह दृश्य। उसे देखकर अलाउद्दीन का दिल भी दहल गया उसके अन्तर से निकली हुई एक उच्छ्वासित निश्वास काव्य के आस-पास फैली हुयी है। जिसे पाठक अच्छी तरह अनुभव कर सकता है। इस प्रकार 'पदमावत' एक दु खान्त काव्य है—दु.खान्त के अलावा वह और कुछ नही हो सकता।

किन्तु एक दूसरा दृष्टिकोण भी है और वह है आध्यात्मिक। ससार माया रूप है, और असत् है। जीवात्मा परमात्मा का अश है और उसी में उसका अविसान सायुज्य मोक्ष है। जब जायसी स्वय कहते हैं कि 'मेरा यह काव्य सासारिक दृष्टि से काव्य जरूर है पर इसका एक उद्दिष्ट सकेत भी है।' वह उद्दिष्ट सकेत आध्यात्मिक अर्थ में उसका समाहार करता है। तब पदमावती और नागमती का रतनसेन के शव के साथ जल जाना ही वास्तविक मिलन है। वह मिलन नित्य और शाश्वत है। शैतान की दुनियाँ से बाहर है। ईर्षा और द्वेप की भूमि से वह प्रेम का स्वर्ग बहुत ऊँचाई पर है, जहाँ इस जगत का धुंवा भी शुभ्र और स्वच्छ होकर ही प्रवेश पाता है। जो पाठक काव्य के इस सकेतार्थ को हृदयगम करने की योग्यता रखता है, उसी दृष्टि में 'पदमावत' एक सुखान्त काव्य ही है।

पदमावत एक अन्योक्ति काव्य

अत में जैसा जायसी ने स्वय कहा है कि मैंने इस कथा का पडितो से अर्थ पूछा, तो उन्होने बताया कि हमें तो इसके अलावा और कुछ समझ नही पडता कि यह मनुष्य शरीर ही ब्रह्माण्ड है। इसी में तीन लोक चौदह भुवन की सृष्टि बसती है। इसी में भौतिक और आध्यात्मिक द्वन्द चलता रहता है। इस दृष्टि से 'पदमावत' की कथा पर विचार करने से वह सासारिक प्रेम कहानी का आध्यात्मिक अर्थ

में आरोप समझ पडती है। उस दशा में चितौर का शरीर में, रतनसेन का मन में, सिंघल का हृदय-धाम में, पदमावती का बोध (चिद् रूप ब्रह्म) में, हीरामन का गुरु में आरोप करना पडेगा। यह आध्यात्मिक दृष्टि से विचार करनेवाले पंडितो का दृष्टिकोण है। जायसी स्वयं एक साधक थे अतः उनका पंडितो और साधको से संसर्ग होना स्वाभाविक है। उनकी राय भी अपने काव्य पर उन्होने ली हो तो कोई आश्चर्य नही। परन्तु पंडितों की इस पंडिताऊ सम्मति का आधार क्या है, यहाँ हमें यही देखना है? क्या सचमुच जायसी का उद्देश्य एक अन्योक्ति-काव्य लिखना ही था? क्या इस लौकिक-प्रेम कथा को आध्यात्मिक अर्थ की व्यंजना के लिए ही उन्होने पसंद किया था? क्या प्रस्तुत लोकपक्ष से अप्रस्तुत परलोक-पक्ष ही उन्हें अधिक वर्णनीय समझ पड़ा था, और उसी के लिए उन्होने पदमावत का विशाल रूपक बाँधा है? अथवा वर्णनीय विषय तो था लोकपक्ष परन्तु आध्यात्मिक साधना में आनन्द पानेवाले कवि का ध्यान लोकपक्ष का वर्णन करते समय परलोक को भुला नही सका है?

इसके लिए 'पदमावत' में भी कवि के मुँह से हमें सुन पड़ता है कि काव्य-सृष्टि का उसका उद्देश्य क्या है—

मुहमद कवि यह जोरि सुनावा। सुना सो पीर प्रेम कर पावा।
जोरी लाइ रकत कै लेई। गाढ़ि प्रीति नयनन्ह जल भेई।
औ मैं जानि गीत अस कीन्हा। मकु यह रहै जगत महँ चीन्हा।

केइ न जगत जस बेंचा, केइ न लीन्ह जस मोल।
जो यह पढै कहानी, हम्ह सँवरै दुइ बोल॥

इन शब्दो पर ध्यान देने से स्पष्ट है कि दुनियाँ में अपने बाद अपना स्मृतिचिह्न-रूप यह काव्य छोड जाना कवि को अभिप्रेत था। उसकी काव्य-रचना के पीछे, अन्य कवियो की भाँति ही, कीर्ति-लोलुपता झाँक रही है। हम उसे दरगुजर नही कर सकते। इस अभिलाषा में उसकी

सासारिकता प्रकट है। जहाँ उसका प्रयत्न स्वान्त सुखाय हो सकता है वही लोकरजन भी उसकी दृष्टि से ओझल नही है। अत अन्तिम अनुमान ही 'पदमावत' की रचना में काम करता मालूम पडता है। यदि ऐसा न होता तो वह काव्य न होकर दर्शन-ग्रन्थ बन जाता। जायसी दार्शनिक अभिरुचि रखनेवाले सत कवि थे, पर थे वे कवि, इसमे किसी के दो मत नही हो सकते। इसीलिए काव्य-रचना में जहाँ कही उन्हे अवसर मिल गया है, वहाँ उसका दार्शनिक दृष्टि से विचार किये बिना वे नही माने हैं।

पदमावती के रूप-वर्णन में वे स्वर्गीय ज्योति का वर्णन करते हैं—

प्रथम सो जोति गगन निरमयी।
पुनि सो पिता माथे मनि भयी॥
पुनि वह जोति मातु घट आयी।
तेहि ओदर आदर बहु पायी॥

रतनसेन पदमावती को देखकर मूर्च्छित हो गया था। मूर्च्छा जाने पर वह अनुभव करता है—

आवत जग बालक अस रोवा।
उठा रोइ हा! ग्यान सो खोवा॥
हौं तौ अहा अमरपुर जहाँ।
इहाँ मरनपुर आयेउँ कहाँ?

बाद में वह एक स्थान पर पदमावती के प्रेम की व्यापकता को इन शब्दो में याद करता है—

परगट गुपुत सकल महँ, पूरि रहा सो नावँ।
जहँ देखौं तह ओही, दूसर नहि जह जावँ॥

जब रतनसेन ने हीरामन के मुख से पदमावती का रूप-वर्णन सुना तो अपने को उसका प्रेमी घोषित करने लगा। हीरामन ने उसे इन शब्दों में समझाया—

साधन सिद्धि न पाइय, जौ लगि सधै न तप्प।
सो पै जानै बापुरा, करै जो सीस कलप्प॥

का भा जोग कथन के कथे। निकसै घिउ न बिना दधि मथे॥
जौं लहि आप हेराइ न कोई। तौ लहि हेरत पाव न सोई॥
तू राजा! का पहिरसि कन्था। तोरे घरहि माँझ दस पंथा॥
काम, क्रोध, तिस्ना, मद, माया। पाँचौ चोर न छाँड़हि काया॥
नवौं सेंध तिन्ह का दिठियारा। घर मूसहिं निसि की उजियारा॥

इन समस्त अवतरणों में उनकी आध्यात्मिक अभिरुचि का परिचय मिलता है, तो भी इसमें शक नहीं कि वे काव्य ही लिख रहे हैं। अपने विचारों की छाया न आने देना उनके वश की बात नहीं है। ईश्वर प्रेम-रूप है, यह विश्वास उनमें इतना गहरा है कि जहाँ भी प्रेम-चर्चा का अवसर आया है, वहीं बिना किसी विचार के उन्होंने उसमें विश्वव्यापक शक्ति का आरोप किया है। पदमावती रतनसेन के लिए कहती है—

पिउ हिरदय महँ, भेंट न होई।
को रे मिलाव, कहौं केहि रोई॥

यहाँ रतनसेन एक सर्वव्यापक ईश्वरीय सत्ता का प्रतिरूप भी हो सकता है, जिससे सायुज्य पाने के लिए पदमावती व्याकुल है। पदमावती ही क्यों, नागमती भी तो उसे उसी रूप में अनुभव करती है। वह कहती है—

मिलतहु महँ जनु अहौं निनारे।
तुम सौं अहै अँदेस पियारे!॥
मैं जानेउ तुम मोही माहाँ।
देखौ ताकि तौ हौ सब पाहाँ॥

अपने इसी दृष्टिकोण के हेतु सौन्दर्य-वर्णन में वे उसी ज्योतिर्मय सत्ता का आभास पाते हैं तथा घड़ियाल बजते सुनकर उन्हें मानव की

क्षणभंगुरता और अनित्यतना का प्रतिभान होता है। शुक के पिंजरे से निकलकर उड़ चलने में उन्हें शरीर से प्राण पखेरू उड़ने की बात याद आ जाती है। निरभ्र अकूल आकाश में उसके उड़कर चले जाने की बात जब वे सोचते हैं तो एक नये देश की कल्पना इस प्रकार करते हैं—

जहाँ न राति न दिवस है, जहाँ न पौन न पानि।
तेहि बन सुअटा चलि बसा, कौन मिलावै आनि॥

इसी भाँति सुलतान द्वारा रत्नसेन के दिल्ली ले जाये जाने पर कवि दिल्ली को ऐसा अगम देश बताता है जहाँ से गया हुआ कोई वापस नहीं आता—

सो दिल्ली अस निबहुर देसू। कोइ न बहुरा कहै सँदेसू।
जो गवनै सो तहाँ कर होई। जो आवै किछु जान न सोई॥
अगम पंथ पिउ तहाँ सिधावा। जो रे गएउ सो बहुरि न आवा॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि लोक-कथा को काव्य का रूप देते समय कवि अपनी विचारधारा को तटस्थ नहीं रख सका है। वह उसकी रचना में दूध-पानी की भाँति मिल गयी है। अतः पदमावत में जहाँ एक लौकिक प्रेम-कथा का आनन्द उठाते हैं, जहाँ उसमें काव्यरस पाते हैं, वहीं प्रणेता की जीवन-व्यापी साधना की सुगन्धि भी पाते हैं। उसमें अध्यात्म-चिंतन का एक अंत स्रोत बराबर बह रहा है। कहीं-कहीं वह धरातल के ऊपर भी अपनी झलक दिखा जाता है। यही कारण है कि पंडितों का ध्यान इधर गया। 'पदमावत' कोरे कवि की रचना नहीं है यह बताने के लिए ही उन्होंने उपर्युक्त राय दी प्रतीत होती है। इसका यह आशय कदापि नहीं है कि काव्य को एक पहेली मान लिया जाय तथा उसके अंग-प्रत्यंग को आध्यात्मिक रूपक में घटाया जाय, एवं उसके पात्रों की कड़ाई के साथ आध्यात्मिक अर्थ में संगति बैठायी जाय। काव्य के अन्त में पंडितों की सम्मति-रूप जो संकेत है, उसे संकेत रूप से ही ग्रहण करना समीचीन है। पत्थर की लीक मानकर यदि काव्य का परीक्षण करेंगे तो

बड़थ्वालजी के इन शब्दों को दुहराना पड़ेगा—'अन्योक्ति का सूत्र कहानी के एक से दूसरे सिरे तक बेधता नहीं चला गया है। आध्यात्मिक और लौकिक दोनों पक्ष कहानी में सर्वत्र एकरस नहीं दिखायी देते। ' आध्यात्मिक और लौकिक, प्रस्तुत और अप्रस्तुत, इन दोनों में समत्व बनाये रखना जायसी के बूते का काम नहीं।.........इसके अतिरिक्त प्रतीक की एकरूपता का भी जायसी ने एकरस निर्वाह नहीं किया है। एक वस्तु को एक ही वस्तु का प्रतीक नहीं माना है।' परन्तु हमने ऊपर कहा है कि यह सवाल तो तभी उठता है जब हम उपर्युक्त कथन को पत्थर की लीक मान कर चलें। पर ऐसा करने से हम कवि जायसी के साथ अन्याय करेंगे। 'पदमावत' के पाठक का मुख्य उद्देश्य तो कथा और काव्य का आनन्द लेना होना चाहिए, यदि इसके अतिरिक्त उसकी आध्यात्मिक परितुष्टि की सामग्री भी उसमें मिल जाती है तो उसके लिए उसे कवि को साधुवाद देना चाहिए। शर्बत में गुलाब की सुगन्धि तो डाल देते हैं पर उससे उसकी परख गुलाब के इत्र की तरह नहीं की जाती, और यदि कोई करने लगे तो उसे निराश होना ही पड़ेगा। अतः दोनों पक्षों का मेल ठीक न बैठाने के लिए जो जायसी के आलोचकों को उनसे शिकायत है, हमारी समझ में वह व्यर्थ है। बिंब-प्रतिबिंब-भाव देने के चक्कर में न पड़कर जायसी ने अपने काव्य को काव्य रहने दिया है। यही काव्योचित हुआ है।

प्रेम-मार्गी शाखा के अन्य कवि और उनके काव्य तथा पदमावत का उनमें स्थान

भारतीय सूफी-परम्परा की एक अटूट शृङ्खला कई दिनों तक हिन्दी साहित्य को अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करती रही है। जब हिन्दू-मुस्लिम-संपर्क पुराना हो चुका था तो कोई कारण नहीं था कि वे एक दूसरे की बोली में न बोलते, एक दूसरे के राग में न गाते। वे सर्वथा स्वाभाविक उद्‌गार थे जिन्हें इन सूफी सन्तों ने भाषा में प्रकट किया।

हिन्दी उनके लिए विभाषा नही रह गयी थी। भारतीय आदर्श उनके अपने आदर्श हो चुके थे। उन्हे कुछ तलवार तो चलानी नही थी। अध्यात्म-प्रेम की चर्चा करनी थी। इसलिए उन्होंने अपनी आवश्यकता के अनुकूल जहाँ भी मसाला पाया वही से चुन लिया। उन्होने अपनी इन अनमोल कृतियो की रचना में सच्ची मधुप-वृत्ति का परिचय दिया है। इनमें सर्व-प्रथम मृगावती के रचयिता कुतुबन का नाम आता है। उसके बाद 'मधुमालती' के कवि मझन उल्लेख्य है। तीसरे प्रमुख कवि स्वय जायसी हैं। इनके बाद 'चित्रावली' के प्रणेता उसमान तथा 'इन्द्रावती' के रचयिता नूरमुहम्मद है। नूरमुहम्मद तक पहुँचते-पहुँचते हिन्दी से मुसलमानो का रुख फिरता हुआ देखते हैं। इससे पहले इस प्रकार का कोई भाव न था। खैर, इस प्रेम-काव्य-परपरा में जायसी बीच की शृङ्खला हैं। इन तक आते-आते उत्कर्ष अपनी चरमता को पहुँच जाता है। उसके बाद अपकर्ष-काल का आरभ हो जाता है। किन्तु सम्पूर्ण धारा में कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं जो हस्तान्तरित होने पर भी सुरक्षित रही हैं। इन कवियो में सभी सूफी मुसलमान थे। उनका धार्मिक विश्वास अहले-इस्लाम पर था, तो भी उन्होने भारतीय जीवन में अपने आदर्श की खोज की। कथानक प्राय. सब हिन्दू लिये या कल्पित किये। सबने थोडे बहुत परिवर्तन के साथ दोहे-चौपाइयो की छद-योजना स्वीकार की। सबसे बडी बात काव्य के नायक की एक स्त्री और एक प्रेमिका इस प्रकार दो स्त्रियाँ होना है। हम पहले एक स्थान पर लिख चुके हैं कि यह भारतीय आदर्श नही हो सकता। यह इस्लामी शरियत से अनुमोदित तथा उसी के जीवन से ग्रहण किया गया प्रतीत होता है। इस कल्पना को परपरा का रूप देने में सभव है इन कवियो को प्रेम की अतिशयता, अनन्यता, गभीरता तथा एकरसता दिखाना इष्ट रहा हो। इनके कथानको का ढाँचा भी पूर्णतया मौलिक नही है, वह भी परपरा-बद्ध है। स्वय जायसी जैसे महाकवि के काव्य का कथानक उनके पूर्ववर्ती कुतुबन और मझन के 'मृगावती' तथा 'मधुमालती' से

थोड़ा-बहुत मिल जाता है। केवल मिल ही नहीं जाता है बल्कि यह मानने के लिए विवश करता है कि पद्मावत की कथा के अंगों का विकास कहाँ से हुआ है।

मृगावती की कहानी का सारांश यह है—चन्द्रगिरि के राजा गनपतिदेव का बेटा कंचननगर के राजा रूपमुरारि की कन्या मृगावती पर मोहित हुआ। यह राजकुमारी उड़ने की विद्या जानती थी। अनेक कष्ट झेलकर राजकुमार उसके पास गया पर एक दिन मृगावती कहीं उड़ गयी। राजकुमार उसकी खोज में योगी होकर चल पड़ा। समुद्र से घिरी एक पहाड़ी पर पहुँचकर उसने रुक्मनी नाम की एक सुन्दरी का उद्धार किया। उस सुन्दरी के पिता ने राजकुमार के ही साथ उसका विवाह कर दिया। इधर मृगावती का पिता मर चुका था और मृगावती उसके सिंहासन पर बैठकर राज कर रही थी। रुक्मनी को पिता के घर छोड़कर राजकुमार वहाँ पहुँचा और बारह साल तक मृगावती के यहाँ रहा। अन्त में उसके पिता का सदेसा आया। तब वह मृगावती के साथ घर की ओर चला। मार्ग में से रुक्मनी को भी साथ ले लिया। घर आकर वह बहुत दिन तक आनन्द से रहा पर अन्त में एक बार आखेट के समय हाथी से गिरकर मर गया। उसकी दोनों प्यारी रानियाँ उसके साथ सती हो गयी।

अब मधुमालती की कथा का सार देखिये—कनेसर के राजा सूरजभान के पुत्र मनोहर को, जब वह सो रहा था, अप्सराएँ उठा ले गयी और ले जाकर महारस की राजकुमारी मधुमालती की चित्रसारी में छोड़ दिया। वे दोनों मिले। प्रेमालाप हुआ। दोनों सो गये। उसी समय अप्सराओं ने राजकुमार को उसके घर वापस पहुँचा दिया। परन्तु राजकुमार मधुमालती के प्रेम में दीवाना हो गया और योगी बनकर निकल पड़ा। जब वह सागर पार करके जा रहा था तभी तूफान आ गया और वह अकेला एक पटरे पर बह चला। पटरा एक जंगल के तट

पर जाकर लगा, जहाँ एक सुन्दरी पलग पर लेटी दिखायी दी। वह चितविसरामपुर के राजा की बेटी प्रेमा थी। उसे एक राक्षस हरण करके ले आया था। कुमार ने राक्षस को मारकर प्रेमा का उद्धार किया। प्रेमा के पिता ने दोनो का व्याह कर देना तय किया पर प्रेमा ने कहा कि मनोहर मेरा भाई है। मै उसकी प्रेयसी अपनी सखी मधुमालती से उसे मिलाऊँगी। इसके बाद मधुमालती से उसका मिलन होता है और मिलन के बाद शीघ्र ही विछोह हो जाता है और एक बार फिर राजकुमार को मधुमालती के वियोग में योगी बनकर घूमना पडता है। अन्त में बडी कठिन और विचित्र घटनाओ के उपरान्त उनका पुन मिलन होता है।

इस कथा में भारतीय आदर्श की छाप है। एक बार प्रेमा मनोहर को भाई कहकर उसके साथ विवाह करने से इनकार करती है। इसी भाति आगे कथा में एक दूसरे राजकुमार ताराचन्द का नाम आता है जो मधुमालती को बहन कहकर उसे उपभोग्य नहीं मानता। शेष जितनी कथाएँ इस परम्परा में हैं, उनमें यह बात नही मिलती।

इस परपरा के परवर्ती प्रेमाख्यानो में भी लगभग इसी प्रकार का कथा-विन्यास है। मालूम पडता है इन कथाकारो का उद्देश्य कथानक को मौलिक बनाना उतना नही था जितना प्रेम की पीडा को प्रदर्शित करना और उसके द्वारा जीव और परमात्मा के प्रेम-सम्बन्ध की ओर सकेत करना। अप्रस्तुत की व्यजना ही उनका प्रधान लक्ष्य होने से प्रस्तुत की विशेष चिन्ता उनसे नहीं बन पडी है। इन समस्त सतो में जायसी सबसे अधिक प्रतिभाशाली, मर्मज्ञ और सहृदय थे। अत. उन्होने प्रस्तुत और अप्रस्तुत दोनो का बडा सुन्दर विधान और बहुत उपयुक्त समाहार किया है। वे इस काव्य-धारा के मध्याह्न-सूर्य थे। अपने प्रकाश से वे दिवस के हृदय को तो आलोकित कर ही गये, आने वाली सध्या की झोली में भी कचन की अनमोल भेंट डाल गये।

अलकार-योजना

काव्य के लिए अलकार अनिवार्य नही हैं परन्तु जो कवि है उसका आलकारिक होना अनिवार्य है। सच्चा कवि बात को किसी-न-किसी सुन्दर ढग से ही कहेगा। बात कहने की वह चमत्कार-पूर्ण शैली ही तो अलकार है। कवि होने के नाते जायसी को भी अलकार-योजना में प्रवृत्त होना पडा है—ज्ञात और अज्ञात रूप से। ज्ञात-रूप से कहने का तात्पर्य यह है कि जायसी अधिकतर काव्य परपरा के अनुसार चले हैं। उनके वर्णन प्राय. भाषा-काव्य की प्रचलित परपरा के भीतर ही हैं, अत: उनमें बँधे-बँधाये अलकारो का तो प्रचुर विधान है ही। रूप और नखशिख-वर्णन मे इसी प्रकार के अलकारो की भरमार है। वहाँ जानबूझकर कवि ने उनकी योजना की है। ऐसे स्थलो पर उन्हे अलकारो की लडी पिरोते हुए देखकर इस युग का पाठक कुछ क्षुब्ध हो उठता है, उसका धैर्य विचलित हो जाता है, परन्तु प्राचीन काव्य-परपरा से परिचित होने पर जायसी उसे क्षम्य प्रतीत होते हैं, वे अपने समय के कवि-समुदाय के बीच रहते हुए जान पडते हैं। वे कहते हैं—

बरनौं माँग सीस उपराही। सेंदुर अबहिं चढा जेहि नाही॥
कंचन देखि कसौटी कसी। जनु घन महँ दामिनि परगसी॥
तेहि पर पूरि धरे जो मोती। जमुना माँझ गंग कै सोती।
कहौं लिलार दुइज कै जोती। दुइजइ जोति कहाँ जग ओती॥
भौंहैं स्याम धनुक जनु ताना। जा सहुँ हेर मार विष-बाना॥
नैन बाँक सरि पूज न कोऊ। मानसरोदक उलथहिं दोऊ॥
बरुनी का बरनौं इमि बनी। साधे बान जानु दुइ अनी॥
नासिक देखि लजानेउ सूआ। सूक आइ बेसरि होइ ऊआ॥
अधर सुरंग अमीरस-भरे। बिंब सुरग लाजि बन फरे॥
जस भादौं निसि दामिनि दीसी। चमकि उठै तस बनी बतीसी॥
हरे सो सुर चातक कोकिला। बिन बसंत यह बैन न मिला॥

पुनि बरनौं का सुरंग कपोला । एक नारंग दुइ किए अमोला ॥
स्रवन सीप दुइ दीप सँवारे । कुंडल कनक रचे उजियारे ॥
बरनौ गीउ कबु कै रीसी । कंचन-तार-लागि जनु सीसी ॥
कनक-दंड दुइ भुजा कलाई । जानौं फेरि कुंदेरै भाई ॥

इत्यादि-इत्यादि ।

इस परंपराभुक्त अलंकार-योजना में भी कवि के सामर्थ्य की परख हो जाती है । जायसी के ऐसे वर्णन भी किसी से कम उत्कृष्ट नहीं है । वे उत्कृष्ट कोटि के वर्णनो के साथ रखे जा सकते है ।

अज्ञात-रूप से अलंकार-योजना में प्रवृत्ति उनमें हम वहाँ कहेंगे जहाँ कवि-परंपरा के अनुसरण का ध्यान उन्हे नही है, जहाँ झूठे उपमानो को बटोरने में वे नही लगे है और भाव-व्यंजना की ओर ही उनकी प्रवृत्ति है, परन्तु तो भी जहाँ शैली की स्वाभाविकता में ही अलंकारों का समावेश हो गया है । ऐसे स्थलो पर अलौकिक चमत्कार के साथ रमणीय भाव व्यंजना सोने में सुहागे का काम दे गयी है । उनमें भावार्थ का प्रसार बहुत व्यापक और प्रभावकारी हो गया है । जैसे—

मिलिहहि बिछुरे साजन, अंकम भेंटि गहन्त ।
तपनि मृगसिरा जे सहैं, ते अद्रा पलुहन्त ॥

कहना नही होगा कि जायसी में अपने भावो में डूब जाने की अद्भुत प्रवृत्ति है, इसलिए इस प्रकार के भावयोग का उनमे प्राचुर्य है । उससे अभिषिक्त उनकी अलंकार योजना बडी प्रभावक और मीठी है । काव्य में प्राय सर्वत्र ही उसकी झलक पाठक को मिलती है ।

यो तो जायसी मे अनेक अलंकारो का विधान है पर कुछ ऐसे भी हैं जिनमें उनकी चित्तवृत्ति अधिक रमी है, जैसे उत्प्रेक्षा और रूपकातिशयोक्ति । तुलसी को उपमा का और सूर को रूपक का कवि कहे तो जायसी को उत्प्रेक्षा का कवि कहने में कोई दोष न होगा । सचमुच ही अपनी उत्प्रेक्षाओ की हेतु कल्पना में जायसी ने दृश्य और अदृश्य जगत् में से किसी को छोडा नही है । उनका 'पदमावत' स्वय ही प्रस्तुत के

द्वारा अप्रस्तुत की प्रतीति का एक सुन्दर प्रयास है। एक बात और है, अलंकार योजना में जायसी की सादृश्य-मूलक अलंकारों की ओर जितनी रुचि है उतनी असादृश्य-मूलक अलंकारों की ओर नहीं। कहीं कहीं इनकी अलंकार योजना अप्रसिद्ध उपमानों के कारण दुर्बोध भी हो गयी है, परन्तु ऐसे स्थल अधिक नहीं हैं।

जायसी की भाषा

जायसी की भाषा अवधी है। इस भाषा का प्रयोग जायसी से पूर्व भी कवियों द्वारा हो चुका था। जायसी ने अपने काव्य में उसके ठेठ रूप को ग्रहण किया है। उनकी भाषा को परिमार्जित या साहित्यिक भाषा नहीं कह सकते। भाषा-संस्कार की ओर उन्होंने ध्यान कम दिया है। उन्होंने चरित-काव्य की जिस शैली का अनुकरण किया वह निकट अतीत से तो सबद्ध है ही, उसकी शृङ्खला दूर अतीत से चली आती है। अपभ्रंश और आदि-हिन्दी के वीरगाथा-काव्यों से उसका सम्पर्क अभी छूटा नहीं है। इस चरित-काव्य की पद्धति का बीज वहीं से प्राप्त हुआ है। जायसी तथा इस परम्परा के अन्य कवियों के काव्य में प्रयुक्त शब्दों के अपभ्रंश रूप इस बात के साक्षी हैं कि चरित-काव्य की इस परम्परा का सम्बन्ध बिल्कुल विदेशी मसनवी से नहीं बल्कि इसी देशी शैली (रास-शैली) से है।

जायसी की यह विशेषता है कि बोल चाल की सीधी सादी ठेठ अवधी में उन्होंने अपने ग्रन्थों की रचना की। बड़े-बड़े समास उसमें कहीं न मिलेंगे। यदि कहीं समस्त पद हैं तो बहुत छोटे-छोटे। परन्तु उनकी भाषा अत्यन्त मधुर है। बे-मेल भाषा की सरसता अगर देखनी हो तो जायसी में देखिये। यह देखकर आश्चर्य होता है कि इस लोक-भाषा पर उन का कितना व्यापक अधिकार था। उनके ग्रंथों में गहन-से-गहन और गूढ़-से-गूढ़ विचार-सकेत मिलते हैं। भावों और व्यापारों की सूक्ष्म व्यञ्जना में वे किसी से पीछे नहीं हैं, उन्होंने प्रथम श्रेणी के कवियों

की प्रतिभा का सर्वत्र परिचय दिया है, परन्तु भाषा का वही ठेठ रूप रखा है। इस प्रयत्न के द्वारा वे हमें इस उक्ति पर विश्वास करने को कहते हैं कि 'उकति अनूठी चाहिए भाषा कोऊ होइ।'

उनकी भाषा में कहीं-कहीं फारसी शब्दों का व्यवहार भी हुआ है। भाषा के ठेठ रूप पर ही मुख्यतः आश्रित रहने के कारण उनका वाक्य-विन्यास सुसबद्ध और स्वच्छ नहीं है। उसमें जहाँ-तहाँ शिथिलता और दोष रह गये हैं। जायसी को देश-देशान्तर की भाषाओं और बोलियों का भी परिचय प्रतीत होता है। वह उनके भ्रमणशील होने का परिचायक है। इसका असर भी उनकी वाणी पर पड़ा है। जायसी संस्कृत-साहित्य के पण्डित नहीं थे परन्तु भाषा-साहित्य का भण्डार उनका देखा-भाला था। इसीलिए जहाँ उनमें प्रान्तीय प्रयोग मिलते हैं वहीं प्राचीन रूप भी मिल जाते हैं। इसलिए कभी-कभी भाषा की एकरूपता नष्ट होती प्रतीत होती है, और उसमें एक प्रकार की अव्यवस्था सी दीखती है।

प्रत्येक भाषा और बोली में चमत्कारपूर्ण उक्तियाँ, मुहाविरे और कहावतें प्रयोग में आये बिना नहीं रहते। जहाँ वे एक ओर भाषा के सौष्ठव में योग देते हैं, वहीं थोड़े में बहुत अर्थ की अभिव्यक्ति भी कराते हैं। वाक्चातुर्य और वाग् विदग्धता के प्रदर्शन के लिए कवि लोग उनका उपयोग करते हैं। जायसी में उनका प्रयोग तो मिलता है पर ऐसा मालूम पड़ता है कि भाषा के स्वाभाविक विस्तार में अनायास उनका प्रयोग हो गया है। कवि ने जानबूझकर, केवल भाषा में चमत्कार उत्पन्न करने के लिए, उन्हें नहीं दिया है। जायसी के ऐसे अधिकांश प्रयोगों में उनकी रसात्मकता और भावुकता का ही अधिक परिचय मिलता है। ऐसे स्थलों पर उनका वाक्छल प्रायः गौण रह जाता है और रसज्ञता एवं भावज्ञता प्रमुख हो उठती है। इसीलिए हमें कहना पड़ता है कि जायसी जितने भावों में डूबे हुए थे उतने भाषा में सतर्क नहीं थे। इसी से उनकी भाषा चमत्कारपूर्ण जितनी नहीं है उतनी रसवन्ती है। देखिये—

(१) 'मुहम्मद' जीवन जल भरन, रहँट घरी कै रीति।
घरी जो आई ज्यों भरी, ढरी जनम गा बीति ॥

(२) काह हँसौ तुम मो सौं, किएउ और सौं नेह।
तुम मुख चमकै बीजुरी, मोहिं मुख बरसै मेंह ॥

(३) 'मुहमद' बिरिध जो नइ चलै, काह चलै मुइँ टोइ।
जोबन-रतन हिरान है, मकु धरती मह होइ ॥

(४) बिरिध जो सीस डुलावै, सीस धुनै तेहि रीस।
बूढ़ी आऊ होउ तुम्ह, केइ यह दीन्ह असीस ॥

(५) माटी मोल न किछु लहै, औ माटी सब मोल।
दिस्ट जो माटी सौं करै, माटी होय अमोल ॥

(६) भोर होइ जौ लागै, उठहिं रौर कै काग।
मसि छूटै सब रैन कै, कागहि केर अभाग ॥

(७) मुहमद चिनगी पेम कै, सुनि महि गगन डेराइ।
धनिबिरही औ धनि हिया, जहँ अस अगिनि समाइ ॥

(८) पानी महँ जस बुल्ला, तस यह जग उतिराइ।
एकहि आवत देखिये, एकहि जात बिलाइ ॥

(९) नवरस गुरु पहँ भीज, गुरुप्रसाद सो पिउ मिलै।
जामि उठै सो बीज, मुहमद सोई सहस बुँद ॥

(१०) गलि सोइ माटी होइ लिखनेहारा बापुरा।
जौं न मिटावै कोइ, लिखा रहै बहुतै दिना ॥

दृष्टान्त रूप से ऊपर जो छन्द लिखे गये हैं उनमें मालूम पड़ता है कि कविवर जायसी की सूक्तियाँ कोरी भाषा की कलाबाजी नहीं हैं, वे रस और भाव की चाशनी में भी डूबी हुई हैं। भाषा के ठेठ रूप में शब्द और अर्थ शक्ति का इतना चमत्कार उनके सिवा और कहाँ है? गहन अनुभूति का आनन्द देनेवाली ऐसी सूक्तियों का भंडार जायसी के पास

है, जो उनके भाषा तत्वविद् होने का प्रमाण चाहे न हो, पर सीधी-से-सीधा भाषा में अपने हृदय-रस को निचोड़कर उसे हृदयग्राही बना देने की क्षमता का प्रमाण अवश्य है।

उपसंहार

प्रेम मार्गी सूफी कवियों ने विश्व-साहित्य को बहुत कुछ दिया है। जीवन की साधना और आराधना से ऊपर अध्यात्म-प्रेम की पीड़ा से जिनका हृदय व्याकुल हो उठता है वे सजीव और प्राणमय उद्‌गार संसार को दे जाते हैं, उनसे जीवन-मरुस्थल चिरकाल तक हरा-भरा रहता है। इस्लामी सभ्यता के रक्त-रंजित इतिहास में सूफीमत एक ऐसा ही तत्त्व है, जिसने अध्यात्म प्रेम की मानिक-मदिरा से अपने होठों को लाल किया था और उसके मद में मतवाला बनकर एक अपूर्व संगीत कानों में डाल दिया था।

अरब और फारस से भारत का सम्बन्ध होने पर यह कब संभव था कि भारत के पल्ले में सिर्फ विष-ही-विष पड़ता और इस्लाम के लिए अमृत रह जाता। महमूद गजनवी के साथ सूफी संतों का समागम भी अवश्यम्भावी था। तलवार, रक्तपात एवं धार्मिक विध्वंस के साथ प्रेम और मस्ती के तराने भी यहाँ आने से रुक नहीं सकते थे। न रुके ही। राजनैतिक और सामाजिक क्षेत्र में अरब और भारत गले नहीं मिल सके, पर प्रेम और साहित्य क्षेत्र में वे आलिंगन-पाश में बँध गये। सूफी-मतावलंबी जायसी में हम हिन्दू-मुसलमान दोनों को एक कंठ से गाते हुए पाते हैं। उनमें कितना अंश हिन्दू है, कितना मुसलमान, इसका विश्लेषण करने चलें तो उसमें दोनों का सौंदर्य नष्ट हो जायगा। जायसी को जिन्होंने पढ़ा है वे देख चुके होंगे कि वे सर्वथा भारतीय सूफी बन चुके थे। फारसी सूफी होकर वे कभी 'पदमावत' की रचना न करते। उन जैसे प्रतिभाशाली के लिए कथानकों की क्या कमी थी? भाषा और छन्द की ऐसी बड़ी बाधा न थी जिसे वे पार न कर सकते, पर

उनके सामने वह सकुंचित दृष्टि न थी। वे भारतवर्ष में पाकिस्तान की कल्पना करनेवाली दुनियाँ में न बसते थे। उन्होंने अपने स्वाभाविक रूप से अपने प्राणों का संगीत गाया है। उनके संगीत में उनके हृदय और उनकी आत्मा की झलक है। उनकी तीव्र अनुभूति उनके काव्य में सभी बन्धनों को छिन्न-भिन्न करके व्याप्त हो रही है इसलिए प्रबन्धकाव्य होकर भी पदमावत भाव-प्रधान काव्य है। जायसी ने भाव पक्ष पर विशेष बल दिया है। सीधी-सादी ग्रामीण भाषा और सरल सुबोध छन्द को चुनकर उन्होंने यह बता दिया है कि कला और कवित्व कवि में रहते हैं। वह किसी भी सामग्री से अपनी प्रतिभा के द्वारा क्रान्तदर्शी साहित्य की सृष्टि कर सकता है।

पदमावत जैसे रत्न का प्रादुर्भाव करके हिन्दी-साहित्य को जायसी ने सूफी-सम्प्रदाय का चिरऋणी बना लिया है। गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस की रचना में कई बातों में इसी ग्रंथ को अपने दृष्टि-पथ में रखा है। काव्य टैकनीक के दो चार दोषों के रहते हुए भी पदमावत सत कवि जायसी की अनमोल भेंट है। मिलनोत्कठा एव विरह-वर्णन में जायसी ने जो प्रतिभा दर्शायी है वह बडे-बडे कवियों में मिलनी कठिन है। प्रिय के लिए इस तडपन ने जायसी को आत्मा और परमात्मा के अद्वैत की ओर प्रेरित किया है। यही उनके रहस्यवाद का जन्म होता है। यह रहस्यवाद उनकी एक विशेषता है, और उनकी आध्यात्मिकता का सुन्दर प्रतीक है। जीव और ईश्वर, तथा सृष्टि और जगत्, के सम्बन्ध में उन्होंने बहुत गहरी डुबकियाँ लगायी हैं। यद्यपि जीवन के व्यापक क्षेत्र को उन्होंने अपने काव्य का विषय नहीं बनाया है पर जो क्षेत्र उनके सामने आ गया है उसकी व्याख्या में सदा बड़ी सचाई से काम लिया है। अलंकारों की योजना में भी वे जीवन की व्याख्या को भूले नहीं हैं, जिसके फलस्वरूप वे शब्दालकारों के शब्दाडम्बर में पडने से बच गये हैं।

पद्मावत के कवि जायसी अखरावट में दार्शनिक विचारक बन गये हैं, यद्यपि उनकी दार्शनिकता के बीज पद्मावत में ही परिपक्व हो चुके हैं। प्रेम-कथा के लौकिक पक्ष का सरसता से निर्वाह करते हुए भी वे उसके आध्यात्मिक पक्ष का संकेत देते रहे हैं। काव्य-साहित्य की दृष्टि से यह आवश्यक भी था कि वे लौकिक पक्ष की मधुरिमा कायम रखते, पर लौकिक प्रेम ही चरम लक्ष्य न होने से उन्हें अपने सिद्धान्तों की प्राण-प्रतिष्ठा के लिए भी प्रयत्न करना पड़ा है, और काव्य का उपसंहार करते समय उन्हें उस ऐतिहासिक प्रेम-कथा को भी एक रूपक बताकर अपने कवि और अपने ऐतिहासिक का सामञ्जस्य स्थापित कर देना पड़ा है, कलाकार और विचारक दोनों को एक मूर्ति में गढ़ देना पड़ा है। अखरावट उनके इस काव्य की उत्तरवर्ती रचना है। प्रेम-कथा उसका आधार नहीं है। इसलिए उसमें लौकिक की असारता मुख्य नहीं, आध्यात्मिक उपलब्धि का सार मुख्य है। उसमें जायसी विचारक के रूप में हैं, कलाकार के रूप में नहीं।

संक्षिप्त जायसी

पदुमावति

[१]

अस्तुति-खंड

ईश्वर स्तुति

सुमिरौं आदि एक करतारू ।
जेहि जिउ दीन्ह, कीन्ह संसारू ॥
कीन्हेसि प्रथम जोति-परगासू ।
कीन्हेसि तेइ पिरीति कबिलासू ॥
कीन्हेसि अगिनि, पवन, जल, खेहा ।
कीन्हेसि बहुतै रंग उरेहा ॥
कीन्हेसि धरती, सरग, पतारू ।
कीन्हेसि बरन-बरन औतारू ॥
कीन्हेसि दिन, दिनअर, ससि, राती ।
कीन्हेसि नखत, तराइन-पाँती ॥
कीन्हेसि धूप, सीउ, औ छाँहा ।
कीन्हेसि मेघ, बीजु तेहि माँहा ॥
कीन्हेसि सपत दीप बरम्हंडा ।
कीन्हेसि भुवन चौदहौ, खंडा ॥

कीन्ह सबै अस जा कर, दूसर छाज न काहि ।
पहिलै ता कर नाँव लै कथा करौं औगाहि ॥

कीन्हेसि सात समुद अपारा।
कीन्हेसि मेरु, खिखिंद पहारा॥
कीन्हेसि सीप, मोति जेहि भरे।
कीन्हेसि बहुतै नग निरमरे॥
कीन्हेसि साउज, आरन रहई।
कीन्हेसि पंखि, उडहिं जहँ चहई॥
कीन्हेसि मानुस, दिहेसि बडाई।
कीन्हेसि अन्न, भुगति तेहि पाई॥
कीन्हेसि दरब, गरब जेहि होई।
कीन्हेसि लोभ, अघाइ न कोई॥
कीन्हेसि जिअन, सदा सब चहा।
कीन्हेसि मीचु, न कोई रहा॥
कीन्हेसि कोइ भिखारि, कोइ धनी।
कीन्हेसि संपति, विपति पुनि घनी॥

कीन्हेसि कोइ निभरोसी, कीहेसि कोइ बरियार।
छारहिं तें सब कीन्हेसि, पुनि कीन्हेसि सब छार॥

जावत जगत हस्ति औ चाँटा।
सब कहँ भुगुति रात-दिन बाँटा॥
पखि-पतंग न बिसरे कोई।
परगट-गुपुत जहाँ लगि होई॥
ता कर कीन्ह न जानै कोई।
करै सोइ, जो चित्त न होई॥
परगट-गुपुत सो सरब-बिआपी।
धरमी चीन्ह, न चीन्है पापी।
ना ओहि पूत न, पिता न माता
ना ओहि कुटुँब, न कोइ सँग नाता।

हुत पहिले, अरु अब है सोई।
पुनि सो रहै, रहै नहि कोई॥
ना ओहि ठाउँ, न ओहि बिन ठाऊँ।
रूप-रेख बिन. निरमल नाऊँ॥
ना वह मिला, न बेहरा, ऐस रहा भरि-पूरि।
दीठिवत कहँ नीयरे, अंध-मुरुख कहँ दूरि॥३॥

स्तुति

कीन्हेसि पुरुख एक निरमरा।
नाम मुहम्मद, पूनो-करा॥
प्रथम जोति बिधि ता कर साजी।
औ तेहि प्रीति सिहिटि उपराजी॥
दीपक लेसि जगत कहँ दीन्हा।
भा निरमल जग, मारग चीन्हा॥
जौ न होत अस पुरुख उजारा।
सूझि न परत पंथ अँधियारा॥
दुसरे ठावँ दई ओहि लिखे।
भये धरमी, जे पाढ़त सिखे॥
जेहि नहि लीन्ह जनम भरि नाऊँ।
ता कहँ कीन्ह नरक महँ ठाऊँ॥
जगत बसीठ दई ओहि कीन्हा।
दुइ जग तरा, नावँ जेहि लीन्हा॥
गुन-अवगुन बिधि पूछब, होइहि लेख औ जोख।
वह बिनउब आगे होइ, करब जगत कर मोख।

सेरसाहि दिल्ली सुलतानू ।
चारिउ खंड तपै जस भानू ॥
ओही छाज छात औ पाटा ।
सब राजै भुइँ धरा लिलाटा ।
जाति सूर औ खाँडै सूरा ।
औ बुधिवंत, सबै गुन पूरा ॥
अदल कहौं पुहुमी जस होई ।
चाँटा चलत न दुखवै कोई ॥
परी नाथ कोइ छुवै न पारा ।
मारग मानुख सोन उछारा ॥
गऊ-सिंघ रेंगहि एक बाटा ।
दूनौ पानि पियहिं एक घाटा ॥
जो कोइ जाइ एक बेर माँगा ।
जनम न भा पुनि भूखा-नाँगा ॥

दानि जग उपजा सेरसाहि सुलतान ।
अस भयेउ, न होइहि, ना कोइ देइ अस दान ॥५॥

सैयद असरफ पीर पियारा ।
जेहि मोहि पंथ दीन्ह उँजियारा ॥
लेसा हिये प्रेम कर दीया ।
उठी जोति, भा निरमल हीया ॥
मारग हुत अँधियार जो, सूझा ।
भा अँजोर, सब जाना-बूझा ॥
खार-समुद्र पाप मोर मेला ।
बोहित-धरम लीन्ह कै चेला ॥

उन्ह मोर कर बूडत कै गहा ।
पायो तीर घाट जो अहा ॥
जा कहँ ऐस होइ कनधारा ।
तुरत बेगि सो पावै पारा ॥
दस्तगीर गाढे के साथी ।
वह अवगाह, दीन्ह तेहि हाथी ॥

मुहमद तेइ निचिंत पथ, जेहि सँग मुरसिद पीर ।
जेहि क नाव करिया औ खेवक, बेगि पाव सो तीर ॥६॥

र्णन

एक-नयन कवि मुहमद गुनी ।
सोइ बिमोहा, जेइ कवि सुनी ॥
चाँद जैस जग बिधि औतारा ।
दीन्ह कलंक, कीन्ह उजियारा ॥
जग सूझा एकै नयनाहाँ ।
उआ सूक जस नखतन्ह माहाँ ॥
जायस नगर धरम-अस्थानू ।
तहाँ आइ कबि कीन्ह बखानू ॥
औ बिनती पँडितन सन भजा ।
टूट सँवारेहु, मेरएहु सजा ॥
सन नव सै सैतालिस अहा ।
कथा अरभ बैन कवि कहा ॥
आदि-अन्त जस गाथा अहै ।
लिखि भाखा चौपाई कहै ॥

भँवर आइ बनखँड सन लेइ कँवल कै बास ।
दादुर बास न पावई, भलेहि जो आछै पास ॥७॥

सिंघलदीप-बरनन खंड

सिंघलदीप-कथा अब गावौं ।
औ सो पदमिनि बरनि सुनावौं ॥
सात दीप बरनै सब लोगू ।
एकौ दीप न ओहि सरि जोगू ॥
घन अमराउ लाग चहुँ पासा ।
उठा भूमि हुत लाग अकासा ॥
तरिवर सबै मलै-गिरि लायी ।
भइ जग छाँह, रैन होइ आयी ॥
मलै-समीर, सोहावन छाहाँ ।
जेठ जाड़ लागै तेहि माहाँ ॥
पथिक जो पहुँचै सहि कै घामू ।
दुख बिसरै, सुख होइ बिसरामू ॥
जेइ वह पायी छाहँ अनूपा ।
फिरि नहिं आइ सहै यह धूपा ॥
अस अमराउ सघन घन, बरनि न पारौं अंत ।
फलै-फरै छवौ ऋतु, जानहु सदा बसंत ॥८॥
बसहिं पंखि, बोलहिं बहु भाखा ।
करहिं हुलास देखि कै साखा ॥
भोर होत बोलहिं चुहचूही ।
बोलहिं पाँडुक 'एकै तूही' ।
सारौं-सुआ जो रहचह करहीं
कुरहिं परेवा, औ करबरहीं ।
'पीव पीव' कर लाग पपीहा
'तुही-तुही' कर गडुरी जीहा
'कुहू-कुहू' कोइल करि राखा
औ भिंगराज बोल बहु भाखा

भृंगराज (भौंरा)

'दही-दही' करि महरि पुकारा ।
हारिल विनवै आपनि हारा ॥
कुहकहिं मोर, सोहावन लागा ।
होइ कुराहर, बोलहिं कागा ॥
जावत पखी जगत के, बैठे भरि अमराउँ ।
आपनि-आपनि भाखा लेहिं दई कर नाउँ ॥
पैग-पैग पर कुवाँ-बावरी ।
साजी बैठक और पाँवरी ॥
मठ-मडप चहुँ पास सँवारे ।
जपा-तपा सब आसन मारे ॥
मानसरोदक बरनौ काहा ।
भरा समुद अस अति अवगाहा ॥
पानि मोति अस निरमर तासू ।
अमरित आनि कपूर सुवासू ॥
लक-दीप कै सिला अनाई ।
बाँधा सरवर घाट बनाई ॥
फूला कवँल, रहा होइ राता ।
सहस-सहस पँखुरिन कर छाता ॥
उलथहिं सीप, मोति उतिराहीं ।
चुगहिं हंस, औ केलि कराहीं ॥
पुनि फुलवारि लागि चहुँ पासा ।
विरिछ वेधि चदन भइ बासा ॥
तेहिं सिर फूल चढहिं वै, जेहि माथे मनि भाग ।
आछहिं सदा सुगध बहु, जनु बसंत औ फाग ॥१०॥
सिघलनगर देखु पुनि बसा ।
धनि राजा, अस जाकर दसा ॥

ऊँची पौरी, ऊँच अवासा ।
जनु कविलास इन्द्र कर वासा ॥
राव-रंक सब घर घर सुखी ।
जो दीखै सो हँसता-मुखी ॥
सबै गुनी औ पंडित ग्याता ।
ससकिरित सबके मुख बाता ॥
पुनि देखी सिंघल कै हाटा ।
नवौ निद्धि, लछिमी सब बाटा ॥
रतन-पदारथ मानिक-मोती ।
हीरा-लाल सो अनगन जोती ॥
जिन्ह एहि हाट न लीन्ह बेसाहा ।
ता कहँ आन हाट कित लाहा ? ॥

करै बेसाहनी, काहू केर बिकाइ ।
चलै लाभ सन, कोई मूर गँवाइ ॥११॥

पुनि आये सिंघलगढ़ पासा ।
का बरनौ, जनु लाग अकासा ॥
परा खोह चहुँ दिसि अस बाँका ।
काँपै जाँघ, जाइ नहिं झाँका ॥
अगम-असूझ देखि डर खाई ।
परै सो सपत-पतारहिं जाई ॥
नव पौरी बाँकी, नव खंडा ।
नवौं जो चढ़ै, जाइ बरम्हंडा ॥
नित गढ़ बाँचि चलै ससि-सूरू ।
नाहिं त होइ बाजि-रथ चूरू ॥
फिरहिं पाँच कोतवार सु-भौंरी ।
काँपै पांव चपत वह पौरी ॥

कनक-सिला गढ़ि सीढ़ी लाई।
जगमगाहि गढ़ ऊपर ताई॥
नवौ खंड, नव पौरी, औ तहँ वज्र-केवार।
चारि बसेरे सो चढ़ै, सत सौं उतरै पार।
नव पौरी पर दसवँ दुआरा।
तेहि पर बाज राज-घरियारा॥
घरी सो बैठि गनै घरियारी।
पहर-पहर सो आपनि बारी॥
जबही घरी पूजि, वह मारा।
घरी-घरी घरियार पुकारा॥
परा जो डाँड़, जगत सब डाँड़ा।
का निचिंत, माटी कर भाँड़ा!॥
तुम्ह तेहि चाक चढ़े हौ काँचे।
आयेहु रहै न थिर होइ बाँचे॥
घरी जो भरी, घटी तुम्ह आऊ।
का निचित होइ सोउ, बटाऊ!॥
पहर-हि-पहर गजर नित होई।
हिया बजर, मन जाग न सोई॥
मुहमद जीवन-जल भरन रहँट-घरी कै रीति।
घरी जो आयी ज्यो भरी, ढरी, जनम गा बीति॥१
पुनि चलि देखा राज-दुआरा।
मानुख फिरहिं पाइ नहिं बारा॥
हस्ति सिंघली बाँधे बारा।
जनु सजीव सब ठाढ़ पहारा॥
पुनि बाँधे रज-बार तुरंगा।
का बरनौ जस उन्ह कै रंगा॥

मन ते अगमन डोलहिं बागा
लेत उसाँस गगन सिर लागा।
राजसभा पुनि देख वईठी
इन्द्रसभा जनु परि गइ डीठी।
मुकुट बाँधि सब वैठे राजा।
दर निसान नित जिन्ह कै बाजा॥
माँझ ऊँच इद्रासन साजा।
गंधरबसेन वैठ तहँ राजा॥

छत्र गगन लगि ता कर, सूर तवै जस आप।
सभा कँवल अस विगसै, माथे वड परताप॥१४॥

पदुमावति-जनम-खड

बरनौ राज-मँदिर रनिवासू
जनु अछरीन्ह भरा कविलासू
सोरह सहस पदमिनी रानी
एक-एक तें रूप बखानी
अति सुरूप औ अति सुकुवाँरी
पान-फूल कै रहहिं अधारी।
तिन्ह ऊपर चपावति रानी
महा सुरूप पाट-परधानी।
चपावति जो रूप सँवारी
पदुमावति चाहै औतारी।
जस अवधान पूर होइ मासू
दिन-दिन हिये होइ परगासू
जस अचल महँ छिपै न दीया
तस उँजियार दिखावै हीया

सोने मँदिर सँवारहि, औ चदन सब लीप ।
दिया जो मनि सिवलोक महँ, उपना सिघलदीप ॥१५॥

भये दस मास, पूरि भइ घरी ।
पदुमावति कन्या औतरी ॥
जानौ सूर किरिन हुति काढी ।
सूरुज-कला घाटि, वह बाढी ॥
भा निसि महँ दिनकर-परगासू ।
सब उजियार भयेउ कबिलासू ॥
इते रूप मूरति परगटी ।
पूनौ-ससी खीन होइ घटी ॥
घटत-हि-घटत अमावस भयी ।
दिन दुइ लाज गाडि भुइँ गयी ॥
पुनि जो उठी दूइज होइ नयी ।
निहकलंक ससि बिधि निरमयी ॥
पदुम-गंध बेधा जग बासा ।
भौंर पतग भये चहुँ पासा ॥
इते रूप भइ कन्या, जेहि सरि पूज न कोइ ।
धनि सो देस रुपवंता, जहाँ जनम अस होइ ॥

भइ छठि राति, छठी सुख मानी ।
रहस-कोड सो रैनि बिहानी ॥
भा बिहान, पंडित सब आये ।
काढि पुरान जनम अरथाये ॥
कन्या-रासि उदै जग किया ।
पदुमावती नाम अस दिया ॥
कहेन्हि जनमपत्री जो लिखी ।
देइ असीस बहुरे जोतिखी ॥

पाँच बरस महँ भइ सो बारी ।
दीन्ह पुरान पढै बैसारी ॥
भइ पदुमावति पंडित गुनी ।
चहूँ खंड के राजन्ह सुनी ॥
सात दीप के बर जो ओनाही ।
उत्तर पावहि, फिरि-फिरि जाही ॥

राजा कहै गरब कै, हौं रे इंद्र सिवलोक
को सरिवरि है मोरे, का सौं करौं बरोक ? ॥१७॥

सात खंड धौराहर तासू ।
सो पदुमिनि कहँ दीन्ह निवासू ॥
औ दीन्ही सँग सखी-सहेली ।
जो सँग करैं रहसि रस-केली ॥
सुआ एक पदुमावति ठाऊँ ।
महा पँडित, हीरामन नाऊँ ॥
कंचन-बरन सुआ अति लोना ।
मानहुँ मिला सोहागहि सोना ॥
एक दिवस पदुमावति रानी ।
हीरामनि तईं कहा सयानी ॥
सुनु हीरामनि ! कहौं बुझाई ।
दिन-दिन मदन सतावै आई ॥
देस-देस के बर मोहिं आवहिं ।
पिता हमार न आँखि लगावहिं ॥
जोबन मोर भयेउ जस गंगा ।
देह-देह हम लाग अनंगा ॥
हीरामनि तब कहा बुझाई ।
विधि कर लिखा मेटि नहिं जाई ॥

अग्या देउ, देखौं फिर देसा ।
तोहि जोग वर मिलै नरेसा ॥
जौ लगि मैं फिरि आवौं, मन-चित धरहु निवारि ।
सुनत रहा कोइ दुरजन, राजहि कहा बिचारि ॥१८॥
राजै सुना, दीठि भई आना ।
बुधि जो देहि संग सुआ सयाना ॥
भयेउ रजायसु, मारहु सूआ ।
सूर सुनाव, चाँद जहँ ऊआ ॥
सत्रु सुआ के नाऊ वारी ।
सुनि धाये जस धाव मँजारी ॥
तब लगि रानी सुआ छपावा ।
जब लगि ब्याध न आवै पावा ॥
पिता क आयसु माथे मोरे ।
कहहु जाइ, विनवौ कर जोरे ॥
पंखि न कोई होइ सुजानू ।
जानै भुगुति, कि जान उड़ानू ॥
सुआ जो पढै पढाये बैना ।
तेहि कत बुधि, जेहि हिये न नैना ॥

मानिक-मोती देखि वह, हिये न ग्यान करेइ ।
दारिउ-दाख जानिकै, अबहिं ठोर भरि लेइ ॥१९॥
वै तो फिरे, उतर अस पावा ।
बिनवा, सुआ हिये डर खावा ॥
रानी ! तुम जुग-जुग सुख पाऊ ।
होइ अग्या बनवास तो जाऊँ ॥
मोतिहि मलिन जो हो गइ करा ।
पुनि सो पानि कहाँ निरमरा ? ॥

राजा

ठाकुर अंत चहै जेहि मारा ।
तेहि सेवक कर कहाँ उबारा ? ॥
रानी उतर दीन्ह कै मया ।
जौ जिउ जाइ, रहै किमि कया ? ॥
हीरामन ! तू प्रान-परेवा ।
धोख न लाग करत तोहि सेवा ॥
तोहि सेवा बिछुरन नहीं आखौं
पींजर हिये घालि कै राखौं ।

सुअटा रहै खुरुक जिउ, अबहि काल सो आव ।
सत्रु अहै जो करिया, कबहुँ सो बोरै नाव ॥२०॥

मानसरोदक-खंड

एक दिवस पून्यौ तिथि आयी ।
मानसरोदक चली नहायी ॥
पदुमावति सब सखी बुलायी ।
जनु फुलवारि सबै चलि आयी ॥
खेलत मानसरोवर गयी ।
जाइ पाल पर ठाढी भयी ॥
देखि सरोवर हँसै कुलेली ।
पदुमावति सो कहहि सहेली ॥
ए रानी ! मन देखि बिचारी ।
एहि नैहर रहना दिन चारी ॥
जौ लगि अहै पिता कर राजू ।
खेलि लेहु जो खेलहु आजू ॥
पुनि सासुर हम गवनब काली ।
कित हम, कित यह सरवर-पाली ॥

कित आवन पुनि अपने हाथा ।
कित मिलि कै खेलब एक साथा ॥

पिउ पियार सिर ऊपर, पुनि सो करै दहुँ काह
दहु सुख राखै, की दुख, दहुँ कस जनम निवाह
कित नैहर पुनि आउब, कित ससुरे यह खेल
आपु-आपु कहँ होइहि, परब पांख जस डेल

लागी केलि कर मझ-नीरा ।
हंस लजाइ बैठ होइ तीरा ॥
बाद मेलि कै खेल पसारा ।
हार देइ जो खेलत हारा ॥
सँवरिहि साँवरि, गोरिहि गोरी ।
आपनि-आपनि लीन्ह सो जोरी ॥
बूझि खेल खेलहु एक साथा ।
हार न होइ पराये हाथा ॥
सखी एक, तेइ खेल न जाना ।
भइ अचेत, मनि-हार गवाँना ॥
कवँल-डार गहि भइ बेकरारा ।
का सो पुकारौं आपन हारा ? ॥
कित खेलै आइउँ एहि साथा ? ।
हार गँवाइ चलिउँ लेइ हाथा ॥

लागी सब मिलि हेरैं, बूड़ि-बूड़ि एक स
कोइ उठी मोती लेइ, काहू घोघा हा

कहा मानसर, चाह सो पायी ।
पारस-रूप इहाँ लगि आयी ॥
भा निरमल तिन्ह पाँयन्ह परसे ।
पावा रूप रूप के दरसे ॥

मलय समीर वास तन आयी ।
भा सीतल, गइ तपन बुझायी ॥
न जनौ, कौन पौन लेइ आवा
पुन्य-दसा भइ पाप गँवावा
ततखन हार बेगि उतिराना
पावा सखिन्ह, चंद बिहँसाना ॥
बिगसे कुमुद देखि ससि-रेखा ।
भइ तहँ ओप, जहाँ जोइ देखा ॥
पावा रूप, रूप जस चहा ।
ससि-मुख सहु दरपन होइ रहा ॥
नयन जो देखा कवल भा, निरमल नीर सरीर ।
हँसत जो देखा हंस भा, दसन-जोति नग-हीर ॥२४॥

सुआ-खंड

पदुमावति तहँ खेल दुलारी ।
सुआ मँदिर महँ देख मँजारी ॥
कहेसि, चलौ जौ लहि तन पाँखा ।
जिउ लै उड़ा ताकि बन-ढाँखा ॥
जाइ परा बन-खँड जिउ लीन्हे ।
मिले पखि, बहु आदर कीन्हे ॥
आनि धरेन्हि आगे फरि साखा
भुगुति-भेंट, जौ लहि बिधि राखा ।
पाइ भुगुति सुख तेहि मन भयेऊ
दुख जो अहा, बिसरि सब गयेऊ ॥
ए गुसाइँ ! तूँ ऐस बिधाता ।
जावत जीव सबन्ह भुक-दाता ॥

पाहुन महँ नहिं पतंग विसारा।
जहँ तोहि सुमिर, दीन्ह तुइँ चारा॥
सो लहि सोग-विछोह कर, भोजन परा न पेट।
पुनि विसरन भा सुमिरन, जब संपति भइ भेंट॥२५॥

पदुमावति पहँ आइ भँडारी।
कहेसि, मँदिर महँ परी मजारी॥
सुआ जो उतर देत रह पूँछा।
उडि गा, पिंजर न बोलै छूँछा॥
रानी सुना, सबहिं सुख गयेऊ।
जनु निसि परी, अस्त दिन भयेऊ॥
गहनै गही चाँद कै करा।
आँसु गगन जस नखतन्ह भरा॥
टूट पाल, सरवर वहि लागे।
कवल बूड, मधुकर उडि भागे॥
एहि विधि आँसु नखत होइ चूये।
गगन छाँडि सरवर महँ ऊये॥
उडि यह सुअटा कहँ बसा, खोजु सखी! सो बासु।
दहँ है धरती की सरग, पौन न पावै तासु॥२६॥

चहूँ पास समुझावहिं सखी।
कहाँ सो अब पाउब, गा पँखी॥
जौं लहि पींजर अहा परेवा।
रहा बंदि महँ, कीन्हेसि सेवा॥
तेहि बंदि हुति छुटै जो पावा।
पुनि फिरि बंदि होइ कित आवा?॥
वै उडान-फर तहियें खाये।
जब भा पँखि, पाँख तन आये॥

पींजर जेहि क, सौंपि तेहि गयेऊ।
जो जा कर, सो ता कर भयेऊ॥
दस दुवार जेहि पींजर माहाँ।
कैसे बाँच मँजारी पाहाँ?॥
यह धरती, अस केतन लीला।
पेट गाढ अस, बहुरि न ढीला॥
जहाँ न राति, न दिवस है, जहाँ न पौन, न पानि।
न सुअटा चलि वसा, कौन मिलावै आनि?॥२७॥

सुऐ तहाँ दिन दस कल काटी।
आइ बियाध ढुका लेइ टाटी॥
पैग-पैग भुइँ चापत आवा।
पखिन्ह देखि हिये डर खावा॥
देखिय किछु अचरज अनभला।
तरिवर एक आवत है चला॥
एहि वन रहत गयी हम आऊ।
तरिवर चलत न देखा काऊ॥
आज जो तरिवर चल, भल नाहीं।
आवहु यह वन छाँडि पराहीं॥
वै तौ उडे, और वन ताका।
पडित सुआ भूलि मन थाका॥
साखा देखि राज जनु पावा।
बैठ निचिंत, चला वह आवा॥
पाँच बान कर खोंचा, लासा भरे सो पाँच।
पाँख भरे, तन अरुझा, कित मारे बिनु बाँच।
बँधि गा सुआ करत सुख-केली।
चूरि पाँख मेलेसि धरि डेली॥

तहवाँ बहुत पखि खरभरही ।
आपु-आपु महँ रोदन करही ॥
बिख-दाना कित होत अँकूरा ।
जेहि भा मरन, डहन धरि चूरा ॥
जौ न होत चारा कै आसा ।
कित चिरिहार ढुकत लेइ लासा ? ॥
यह बिख-चारै सब बुधि ठगी ।
औ भा काल हाथ लेइ लगी ॥
यह मन कठिन, मरै नहिं मारा ।
काल न देख, देख पै चारा ॥

तौ बुद्धि गँवावा, बिख-चारा अस खाइ ॥
तुअटा ! पडित होइ, कैसे बाझा आइ ? ॥

सुऐ कहा, हमहूँ अस भूले ।
टूट हिंडोल-गरब जेहि भूले ॥
केरा के बन लीन्ह बसेरा ।
परा साथ तहँ बैरी केरा ॥
सुख कुरवारि फरहुरी खाना ।
ओहु बिख भा, जग ब्याध तुलाना ॥
सुखी निचिंत, जोरि धन करना ।
यह न चिंत, आगे है मरना ॥
भूले हमहुँ गरब तेहि माहाँ ।
सो बिसरा, पावा जेहि पाहाँ ॥
होइ निचिंत बैठे तेहि आड़ा ।
तब जाना, खोचा हिये गाड़ा ॥

चरत न खुरुक कीन्ह जिउ, तब रे चरा सुख सोइ ।
अब जो फाँद परा गिउ, तब रोये का होइ ॥३०॥

बनिजारा-खंड

चितउरगढ़ कर एक बनिजारा ।
सिंघलदीप चला बैंपारा ॥
बाम्हन हुत एक निपट भिखारी ।
सो पुनि चला चलत बैपारी ॥
रिन काहू कर लीन्हेसि काढ़ी ।
मकु तहँ गये होइ किछु बाढ़ी ॥
मारग कठिन बहुत दुख भयेऊ ।
नाँघि समुद्र दीप ओहि गयेऊ ॥
देखि हाट, किछु सूझ न ओरा ।
सबै बहुत, किछु दीख न थोरा ।
पै सुठि ऊँच बनिज तहँ केरा ।
धनी पाव, निधनी मुख हेरा ॥
लाख-करोरिन्ह बस्तु बिकाई ।
सहसन केरि न कोउ ओनाई ॥
सबही लीन्ह बेसाहना, औ घर कीन्ह बहोर ।
बाम्हन तहवाँ लेइ का ?, गाँठि साँठि सुठि थोर ॥२१॥

झूरै ठाढ़, हौं काहे क आवा ?
बनिज न मिला, रहा पछितावा ॥
लाभ जानि आयेउँ एहि हाटा ।
मूर गँवाइ चलेउँ तेहि बाटा ॥
जेहि बेवहरिया कर बेवहारू ।
का लेइ देव, जो छेंकिहि बारू ॥

तव ही व्याध सुआ लेइ आवा ।
कचन-वरन अनूप सुहावा ॥
बैंचै लाग हाट लै ओही ।
मोल रतन-मानिक जहँ होही ॥
वाम्हन आइ सुआ सौं पूछा ।
कहु गुनवत, कि निरगुन छूछा ? ॥
पंडित हौ तौ सुनावहु वेदू ।
विनु पूछे पाइअ नहि भेदू ॥

हौं वाम्हन औ पंडित, कहु आपन गुन सोइ ।
पढे के आगे जो पढै, दून लाभ तेहि होइ ॥२२

तव गुन मोहि अहा, हो देवा ।
जब पिंजर हुत छूट परेवा ॥
अव गुन कौन, जो बँद जजमाना ।
घालि मंजूसा वेचै आना ॥
रोवत रकत भयेउ मुख राता ।
तन भा पियर, कहौं का वाता ? ॥
सुनि वाम्हन बिनवा चिरिहारू ।
करि पंखिन्ह कहँ मया, न मारू ॥
निठुर होइ जिउ वधसि परावा ।
हत्या केर न तोहि डर आवा ॥
कहेसि पंखि, का दोस जनावा ।
निठुर तेइ जे पर-मँस खावा ॥
जौ न होत अस पर-मँस-खाधू ।
कित पंखिन्ह कहँ धरत वियाधू ॥

वाम्हन सुआ वेसाहा, सुनि मति बेद-गरंथ ।
मिला आइ कै साथिन्ह, भा चितउर के पथ ॥

तब लगि चित्रसेन सब साजा ।
रतनसेन चितउर भा राजा ॥
आइ बात तेहि आगे चली ।
राजा ! बनिज आये सिंघली ॥
हैं गज-मोति भरी सब सीपी ।
और वस्तु बहु सिंघलदीपी ॥
बाम्हन एक सुआ लेइ आवा ।
कचन-बरन अनूप सोहावा ॥
राते-स्याम कंठ दुइ काँठा ।
राते डहन लिखा सब पाठा ॥
औ, दुइ नयन सुहावन राता ।
राते ठोर, अमी-रस बाता ॥
मस्तक टीका, काँध जनेऊ ।
कवि बियास, पंडित सहदेऊ ।
बोल अरथ सौं बोलै, सुनत सीस सब डोल ।
राज-मँदिर महँ चाहिअ, अस वह सुआ अमोल ॥३४॥

भइ रजाइ, जन दस दौराये ।
बाम्हन-सुआ बेगि लेइ आये ॥
बिप्र असीसि बिनति औधारा ।
सुआ जीउ, नहि करौं निरारा ॥
पै यह पेट महा बिसवासी ।
जेइ सब नवा तपा-सन्यासी ॥
मुवँ असीस दीन्ह बड साजू ।
बँड परताप, अखडित राजू ।
कोइ बिनु पूछे बोल जो बोला ।
होइ बोल माँटी के मोला ॥

गुनी न कोई आपु सराहा ।
जो बिकाइ, सो कहा पै चाहा ॥
जौ लहि गुन परगट नहिं होई ।
तौ लहि मरम न जानै कोई ॥

चतुर-बेद हौं पंडित, हीरामन मोहिं नावँ ।
पदुमावति सौं मेरवौं, सेवूँ करौं तेहि ठावँ ॥२

नागमती-सुआ-संवाद-खंड

रतनसेन हीरामन चीन्हा ।
एक लाख बाम्हन कहँ दीन्हा ॥
बिप्र असीसि जो कीन्ह पयाना ।
सुआ सो राजमंदिर महँ आना ॥
दिन दस पाँच तहाँ जो भये ।
राजा कतहुँ अहेरै गये ॥
नागमती रुपवंती रानी ।
सब रनिवास पाट-परधानी ॥
कै सिंगार कर दरपन लीन्हा ।
दरसन देखि गरब जिउ कीन्हा ॥
बोलहु सुआ पियारे-नाहाँ ।
मोरे रूप कोइ जग माहाँ ? ॥
सुआ, बानि कसि कहु कस सोना ?
सिंघलदीप तोर कस लोना ? ॥
कौन रूप तोरी रुपमनी ?
दहु हौं लोनि, कि वै पदमिनी ? ॥

जो न कहसि सत सुअटा !, तोहि राजा कै आन ।
है कोई एहि जगत महँ मोरे रूप समान ? ॥३६॥

सुमिरि रूप पदुमावति केरा।
हँसा सुआ, रानी मुख हेरा॥
जेहि सरवर महँ हंस न आवा।
बगुला तेहि सर हंस कहावा॥
दई कीन्ह अस जगत अनूपा।
एक एक तें आगरि रूपा।
कै मन गरब न छाजा काहू
चाँद घटा, औ लागेउ राहू॥
लोनि-बिलोनि तहाँ को कहै।
लोनी सोइ, कंत जेहि चहै॥
का पूँछहु सिंघल कै नारी।
दिनहिं न पूजै निसि अँधियारी॥
पुहुप-सुवास सो तिन्ह कै काया।
जहाँ माथ, का बरनौं पाया?॥

गढ़ी सो सोने सोंधै, भरी सो रूपै भाग।
सुनत रूखि भइ रानी, हिये लोन अस लाग॥३७॥

जो यह सुआ मँदिर महँ अहई।
कबहुँ बात राजा सौं कहई॥
सुनि राजा पुनि होइ वियोगी।
छाँड़ै राज, चलै होइ जोगी।
बिख राखिय नहिं, होइ अँकूरू
सबद न देइ भोर तमचूरू।
धाय दामिनी बेग हँकारी
ओहि सौंपा, हीये रिस भारी
देखु, सुआ यह है मँद-चाला
भयेउ न ता कर जा कर पाला

मुख कह आन, पेट बस आना ।
तेहि औगुन दस हाट बिकाना ॥
पखि न राखिय, होइ कुभाखी ।
लेइ तहँ मारु, जहाँ नहिं साखी ।
जेहि दिन कहँ हौं निति डरौ, रैनि छपावौं
लै चह दीन्ह कवँल कहँ, मो कहँ होइ
बाय सुआ लेइ मारै गयी ।
समुझि गियान हिये मति भयी ॥
सुआ सो राजा कर बिसरामी ।
मारि न जाइ, चहै जेहि स्वामी ॥
मकु यह खोज होइ निसि आये ।
तुरय-रोग हरि-माये जाये ॥
राखा सुआ धाय मति साजा ।
भयेउ खोज, निसि आयेउ राजा ॥
रानी उतर मान सौं दीन्हा ।
पंडित सुआ मजारी लीन्हा ॥
राजै सुनि वियोग तस माना ।
जैसे हिय विक्रम पछिताना ॥
की परान घट आनहु मती ।
की चलि होहु सुआ सँग सती ॥
जिनि जानहु कै औगुन, मँदिर होइ सुख-राज ।
आयसु मेटि कंत कर, का कर भा न अकाज ? ॥३
चाँद जैस धनि उजियरि अही ।
भा पिउ रोस, गहन अस गही ॥
परम सोहाग निवाहि न पारी ।
भा दोहाग, सेवा जब हारी ॥

एतनिक दोस बिरचि पिउ रूठा ।
जो पिउ आपन कहै सो भूठा ॥
ऐसे गरब न भूलै कोई ।
जेहि डर बहुत पियारी सोई ॥
रानी आइ धाय के पासा ।
सुआ मुआ सेवँर के आसा ॥
परा प्रीति-कचन महँ सीसा ।
बिहरि न मिलै, स्याम पै दीसा ॥
कहाँ सोनार, पास जेहि जाऊँ ।
देइ सोहाग करै एक ठाऊँ ॥

मै पिउ-प्रीति भरोसे, गरब कीन्ह जिउ माँह ।
तेहि रिसि हौ परहेली, रूसेउ नागर नाह ॥४०॥

उतर धाय तब दीन्ह रिसाई ।
रिस आपुहि, बुधि औरहि खाई ॥
मैं जो कहा, रिस जिनि करु बाला ।
को न गयेउ एहि रिस कर घाला ?
बिरस बिरोध रिसहि पै होई ।
रिस मारै, तेहि मार न कोई ॥
जुआ-हारि समुझी मन रानी ।
सुआ दीन्ह राजा कहँ आनी ॥
मानु पीय ! हौं गरब न कीन्हा ॥
कत तुम्हार मरम मैं लीन्हा ॥
मै जानेउँ, तुम्ह मोही माहाँ ।
देखौ ताकि तौ हौ सब पाहाँ ॥
का रानी, का चेरी कोई ।
जा कहँ मया करहु, भल सोई ।

तुम्ह सौं कोइ न जीता, हारे वररुचि भोज ।
पहिले आपु जो खोवै, करै तुम्हार मो खोज ।।४

राजा-सुआ-सवाद-खड

राजै कहा, सत्य कहु सुआ ।
विनु सत जस सेवर कर भुआ ।।
होइ मुख रात सत्य के बाता ।
जहाँ सत्य तहँ घरम-सँघाता ।।
बाँधी सिहिटि अहै सत केरी ।
लछिमी अहै सत्त कै चेरी ।।
सत्त कहत राजा जिउ जाऊ ।
पै मुख असत न भाखौं काऊ ।।
पदुमावति राजा कै वारी ।
पदुम-गघ ससि विधि औतारी ।।
ससि मुख, अग मलयगिरि रानी ।
कनक सुगव दुआदस वानी ।।
अहै जो पदुमिनि सिघल माहाँ ।
सुगँध-रूप सब ओहि कै छाहाँ ।।
हीरामन हौ तेहिक परेवा ।
कठा फूट करत तेहि सेवा ।।
औ पाएउँ मानुख कै भाखा ।
नाहि त कहा, मूठि भर पाँखा ।।

जौ लहि जिऔ राति-दिन, सँवरौ ओहि कर नावँ ।
मुख राता, तन हरियर, दुहँ जगत लेइ जावँ

हीरामन जो कवँल वखाना ।
सुनि राजा होइ भँवर भुलाना ।।

को राजा, कस दीप उतंगू।
जेहि रे सुनत मन भयेउ पतंगू ॥
सुनि समुद भा चख किलकिला।
कवँलहि चहौं भँवर होइ मिला ॥
कहु सुगंध धनि कस निरमली।
भा अलि-संग, कि अवहीं कली ? ॥
का राजा ! हौं बरनौं तासू।
सिंघलदीप आहि कविलासू ॥
जो गा तहाँ, भुलाना सोई।
गा जुग बीति, न बहुरा कोई ॥
गंध्रबसेन तहाँ बड राजा।
अछरिन्ह महँ इंद्रासन साजा ॥
सो पदुमावति तेहि कर बारी।
जो सब दीप माँह उजियारी ॥
चहूँ खंड के बर जो ओनाहीं।
गरबहि राजा बोलै नाहीं ॥

उअत सूर जस देखिय, चाँद छपै तेहि धूप।
ऐसे सबै जाहिं छपि पदुमावति के रूप ॥४३॥

सुनि रवि-नावँ रतन भा राता।
पंडित ! फेरि उहै कहु बाता ॥
तैं सुरंग मूरति वह कही।
चित महँ लागि चित्र होइ रही ॥
जनु होइ सुरुज आइ मन बसी।
सब घट पूरि हिये परगसी ॥
अब हौं सुरज, चाँद वह छाया।
जल बिनु मीन, रकत बिनु काया ॥

पेम सुनत मन भूल न राजा।
कठिन पेम, सिर देइ तो छाजा॥
पेम-फाँद जो परा, न छूटा।
जीउ दीन्ह, पै फाँद न टूटा॥
जान पुछार, जो भा बनवासी।
रोंव-रोंव परे फँद नगवासी॥
पाँखन्ह फिरि-फिरि परा सो फाँदू।
उडि न सकै, अरुझा भा बाँदू॥
'मुयो मुयो' अह-निसि चिल्लाई।
ओही रोस नागन्ह धै खाई॥

र गीउ जो फाँद है, निति पुकारै
कत हँकारि फाँद गिउ मेलै, कित मारे होइ

रोजै लीन्ह ऊबि कै साँसा।
ऐस बोल जिनि बोलु निरासा॥
भलेहि पेम है कठिन दुहेला।
दुइ जग तरा, पेम जेइ खेला॥
दुख भीतर जो पेम-मधु राखा।
जग नहिं मरन सहै, जो चाखा॥
जो नहिं सीस पेम-पथ लावा।
सो प्रिथिमी महँ काहे क आवा?॥
अब मै पेम-पथ सिर मेला।
पाँव न ठेलु, राखि कै चेला॥
पेम-बार सो कहै, जो देखा।
जो न देख, का जान बिसेखा?॥
तौ लगि दुख, पीतम नहिं भेंटा।
मिलै, त जाइ जनम-दुख मेटा॥

जस अनूप, तै बरनेसि, नखसिख बरनु सिंगार।
है मोहिं आस मिलै कै, जौ मेरवै करतार ॥४५॥

६. नख-सिख-खंड

का सिंगार ओहि बरनौ राजा।
ओहि क सिंगार ओही पै छाजा।
प्रथम सीस कस्तूरी केसा
बलि बासुकि, का और नरेसा ?।
भौर केस, वह मालति रानी,
विसहर लुरे लेहिं अरधानी।
बेनी छोरि झार जौ बारा।
सरग-पतार होइ अँधियारा।
बरनौ माँग सीस उपराही
सेंदुर अबहिं चढा जेहिं नाही।
बिनु सेंदुर अस जानहु दीआ।
उजियर पंथ रैनि महँ कीआ॥
कंचन-रेख कसौटी कसी।
जनु घन महँ दामिनि परगसी॥
सुरुज-किरिन जनु गगन बिसेखी।
जमुना माहँ सुरसती देखी॥
खाँडे धार रुहिर जनु भरा।
करवत लेइ बेनी पर धरा॥

कनक दुवादस बानि होइ, चह सोहाग वह माग।
सेवा करहिं नखत सब, उवै गगन जस गाँग ॥४६॥

कहौ लिलार दुइज कै जोती
दुइजहि जोति कहाँ जग ओती ?

सहस किरिन जो सुरुज दिपाई।
देखि लिलार सोउ छपि जाई॥
का सरवरि तेहि देउँ मयकू?
चाँद कलंकी, वह निकलंकू॥
औ चाँदहि पुनि राहु गहासा।
वह विनु राहु, सदा परगासा॥
तेहि लिलार पर तिलक वईठा।
दुइज-पाट जानहु ध्रुव दीठा॥
भौंहैं स्याम धनुक जनु ताना।
जा सहुँ हेर मार विख-बाना॥
उन्ह भौंहनि सरि केउ न जीता।
अछरी छपी, छपी गोपीता॥

भौंह धनुक, धनि धानुक, दूसर सरि न कराइ
गगन धनुक जो ऊगै, लाजहि सो छपि जाइ

नैन बाँक, सरि पूज न कोऊ।
मानसरोदक उलथहिं दोऊ॥
उठहिं तुरंग लेहिं नहि बागा।
चाहहिं उलथि गगन कहँ लागा॥
वरुनी का वरनौं, इमि बनी।
साधे बान जानु दुइ अनी॥
जुरी राम रावन कै सैना।
बीच समुद्र भये दुइ नैना॥
उन्ह बानन्ह अस को जो न मारा?।
बेधि रहा सगरौ संसारा॥
गगन नखत जो जाहिं न गने।
वै सब बान ओहि के हने॥

धरती बान बेधि सब राखी
साखी ठाढ देहि सब साखी।

बरुनि-बान अस ओ पहँ, बेधे रन बन-ढाँख।
सौजहि तन सब रोवाँ, पखिहि तन सब पाँख ॥४८॥

नासिक देखि लजानेउ सूआ।
सूक आइ बेसरि होइ ऊआ॥
पुहुप सुगंध करहि एहि आसा।
मकु हिरकाइ लेइ हम पासा॥
अधर दसन पर नासिक-सोभा।
दारिउँ-बिंब देखि सुक लोभा॥
अधर सुरंग अमी-रस-भरे।
बिंब सुरंग लाजि बन फरे॥
हीरा लेइ सो बिद्रुम-धारा।
बिहँसत जगत होइ उजियारा॥
जस भादों-निसि दामिनि दीसी।
चमकि उठै तस बनी बतीसी।
वह सु-जोति हीरा उपराहीं
हीरा-जोति सो तेहि परछाहीं।
जेहि दिन दसन-जोति निरमयी
बहुतै जोति जोति ओहि भयी।
रवि ससि नखत दिपहि ओहि जोती।
रतन-पदारथ मानिक मोती॥
जहँ-जहँ बिहँसि सुभावहि हँसी।
तहँ-तहँ छिटकि जोति परगसी॥
दामिनि दमकि न सरवरि पूजी।
पुनि ओहि जोति और को दूजी॥

दसन तस चमके, पाहन उठे छर्राक्क
सरि जो न कै सका, फाटेउ हिया दरक्कि ॥४९॥

रसना कहौ, जो कह रस-बाता।
अम्रित-बैन सुनत मन राता॥
भरे प्रेम-रस बोलै बोला।
सुनै सो माति घूमि कै डोला॥
पुनि वरनौं का सुरग कपोला।
एक नारंग दुइ किये अमोला॥
तेहि कपोल बाँये तिल परा।
जेइ तिल देख, सो तिल-तिल जरा॥
स्रवन सीप दुइ दीप सँवारे।
कुंडल कनक रचे उजियारे॥
मनि-कुंडल झलकैं अति लोने।
जनु कौंधा लोकहि दुइ कोने॥
वरनौ गीउ कंबु कै रीसी।
कंचन-तार-लागि जनु सीसी॥
गिउ मयूर तमचूर जो हारे।
उहै पुकारहिं साँझ-सकारे॥

सिरी मुकुतावली सोहै अभरन गीउ।
कंठ-हार होइ, को तप साधा जीउ? ॥५०॥

कनक-दंड दुइ भुजा कलाई।
जानौ फेरि कुंदेरै भाई॥
कदलि-गाभ कै जानौ जोरी।
औ राती ओहि कँवल-हथोरी॥
मलयागिरि कै पीठि सँवारी।
वेनी नागिन चढी जो कारी॥

लङ्क पुहुमि अस आहि न काहू।
केहरि कहौ, न ओहि सरि ताहू॥
बसा-लङ्क बरनै जग झीनी।
तेहि से अधिक लङ्क वह खीनी॥
परिहँस पियर भये तेहि बसा।
लिये डङ्क लोगन्ह कहँ डसा॥
जुरे जंघ सोभा अति पाये।
केरा-खंभ फेरि जनु लाये।
कवँल-चरन अति रात बिसेखी
रहैं पाट पर, पुहुमि न देखी।
माथे भाग कोउ अस पावा
चरन-कवँल लेइ सीस चढ़ावा॥
चूरा चाँद-सुरुज उजियारा।
पायल बीच करहिं झनकारा॥
अनवट-बिछिया नखत तराई।
पहुँचि सकै को पाँयन्हि ताईं॥
बरनि सिंगार न जानेउँ, नख-सिख जैस अभोग।
तस जग किछुइ न पायेउँ, उपमा देउँ ओहि जोग॥५१॥

[४]

१०. प्रेम-खंड

सुनतहि राजा गा मुरछायी।
जानौं लहरि सुरुज कै आयी॥
पेम-घाव-दुख जान न कोई।
जेहि लागै, जानै पै सोई॥
परा सो पेम-समुद अपारा।
लहरहि-लहर होइ बिसँभारा॥

विरहभौंर होइ भाँवरि देई।
खिन-खिन जीउ हिलोरा लेई॥
खिनहिं उसास बूडि जिउ जाई।
खिनहिं उठै निसरै बौराई॥
खिनहिं पीत, खिन होइ मुख सेता।
खिनहिं चेत, खिन होइ अचेता॥
कठिन मरन तें प्रेम-बेवस्था।
ना जिउ जियै, न दसवँ अवस्था॥
निहार न लेंहि जिउ, हरहिं तरासहि ताहि।
बोल आव मुख, करैं तराहि तराहि॥५२॥

जब भा चेत उठा बैरागा।
बाउर जनौं सोइ उठि जागा॥
आवत जग बालक जस रोआ।
उठा रोइ, हा ग्यान सो खोआ॥
हौं तो अहा अमरपुर जहाँ।
इहाँ मरनपुर आयेउँ कहाँ ?॥
अब जिउ उहाँ, इहाँ तन सूना।
कब लगि रहै परान-बिहूना ?॥
सुऐ कहा, मन बूझहु राजा।
करब पिरीति कठिन है काजा॥
तुम राजा, जेइँ घर पोथी।
कवँल न भेंटेउ, भेंटेउ कोई॥
कठिन आहि सिंघल कर राजू।
पाइय नाहिं जूझ कर साजू॥
ओहि पथ जाइ, जो होइ उदासी।
जोगी, जती, तपा, सन्यासी॥

तुम राजा, चाहहु सुख पावा
भोगिहि जोग करत नहिं भावा

साधन्ह सिद्धि न पाइय, जौ लगि सधै न तप्प ।
सो पै जानै बापुरा, करै जो सीस कलप्प ॥५३॥

का भा जोग-कथनि के कथे ।
निकसै घिउ न बिना दधि मथे ॥
जौ लहि आप हेराइ न कोई ।
तौ लहि हेरत पाव न सोई ॥
पेम पहार कठिन बिधि गढ़ा ।
सो पै चढ़ै, जो सिर सौं चढ़ा ॥
सुनि सो बात राजा मन जागा ।
पलक न मार, पेम चित लागा ॥
हिय कै जोति दीप वह सूझा ।
यह जो दीप अँधियारा बूझा ॥
गुरू बिरह-चिनगी जो मेला ।
जो सुलगाइ लेइ सो चेला ॥
अब करि फनिग-भृंग कै करा ।
भौंर होहुँ, जेहि कारन जरा ॥

फूल-फूल फिरि पूछौं, जौ पहुँचौं ओहि केत ।
तन नेवछावरि कै मिलौं, ज्यों मधुकर जिउ देत ।

जोगी-खंड

बंधु मीत बहुतै समुझावा ।
मान न राजा कोउ भुलावा ॥
उपजी पेम-पीर जेहि आई ।
परबोधत होइ अधिक सो आई ॥

तजा राज, राजा भा जोगी।
औ किंगरी कर गहेउ वियोगी॥
तन बिसँभर, मन बाउर लटा।
अरुझा पेम, परी सिर जटा॥
चंद-वदन औ चंदन-देहा।
भसम चढाइ कीन्ह तन खेहा॥
कथा पहिरि दंड कर गहा।
सिद्ध होइ कहँ गोरख कहा॥
मुद्रा स्रवन, कंठ जपमाला।
कर उदपान, काँध बघछाला॥

चला भुगुति माँगै कहँ, साधि कया तप-जोग
सिद्ध होउँ पदुमावति पाये, जेहि कर हिये वियोग॥५५

गनक कहहिं गनि, गौन न आजू।
दिन लेइ चलहु, होइ सिध काजू॥
पेम-पंथ दिन-घरी न देखा।
तब देखै, जब होइ सरेखा॥
निकसा राजा, सिंगी पूरी।
छाँडा नगर मेलि कै धूरी॥
राय-रान सब भये बियोगी।
सोरह सहस कुँवर भये जोगी॥
कहेन्हि, आज किछु थोर पयाना।
काल्हि पयान दूरि है जाना॥
ओहि मिलान जो पहुँचै कोई।
तब हम कहब, पुरुख भल सोई॥
है आगे परबत कै बाटा।
विखम पहार, अगम सुठि घाटा॥

बिच-बिच नदी खोह औ नारा।
ठावँहि-ठावँ बैठ बटपारा॥
अस मन जानि सँभारहु आगू।
अगुआ केर होहु पछलागू॥

पयान भोर उठि, पथ कोस दस जाहिं।
पथी पथा जे चलहिं, ते का रहहिं ओ ठाहिं?॥५६॥

होत पयान जाइ दिन केरा।
मिरिगारन महँ भयेउ बसेरा॥
कुस-साँथरि भइ सौंर सुपेती।
करवट आइ बनी भुइँ सेंती॥
चलि दस कोस ओस तन भीजा।
काया मिलि तेहि भसम मलीजा॥
ठाँव-ठाँव सब सोवहिं चेला।
राजा जागै आपु अकेला॥
जेहि के हिये पेम-रंग जामा।
का तेहि भूख नींद बिसरामा॥
बन अँधियार, रैनि अँधियारी।
भादों बिरह भयेउ अति भारी॥
किंगुरी हाथ गहे बैरागी।
पाँच ततु धुनि ओही लागी॥

नैन लाग तेहि मारग, पदुमावति जेहि दीप।
जैस सेवातिहि सेवै, बन चातक, जल सीप॥५७॥

मासेक लाग चलत तेहि बाटा।
उतरे जाइ समुद के घाटा॥

रतनसेन भा जोगी-जती ।
सुनि भेंटै आवा गजपती ॥
आये भलेहि, मया अब कीजै ।
पहुनाई कहँ आयसु दीजै ॥
सुनहु गजपती ! उत्तर हमारा ।
हम तुम्ह एकै, भाव निरारा ॥
इहै बहुत, जौ बोहित पावौं ।
तुम्ह तें, सिंघलदीप सिधावौं ॥
गजपति कहा सीस पर माँगा ।
बोहित-नाव न होइहि खाँगा ॥
पै गोसाइँ सन एक बिनाती ।
मारग कठिन, जाव केहि भाँती ? ॥

छार खीर दधि उदधि सुरा जल, पुनि किलकिला अकूत ।
को चढ़ि नाँघै समुद ए, है का कर अस दूत ? ॥५॥

गजपति ! यह मन सकती-सीऊ ।
पैं जेहि पेम, कहाँ तेहि जीऊ ? ॥
जो पहिले सिर दै पगु धरई ।
मूये केर मीचु का करई ? ॥
सुख त्यागा, दुख साँभरि लीन्हा ।
तब पयान सिंघल-मुहँ कीन्हा ॥
सो न डोल, देखा गजपती ।
राजा सत्त-दत्त दुहुँ सती ॥
निहचै चला भरम जिउ खोई ।
साहस जहाँ, सिद्धि तहँ होई ॥
निहचै चला छाँडि कै राजू ।
बोहित दीन्ह, दीन्ह सब साजू ॥

चढा बेगि, तव बोहित पेले ।
धनि सो पुरुख पेम जेइ खेले ॥
पेम-पथ जो पहुँचै पारा ।
बहुरि न मिलै आइ एहि छारा ॥
धावहि बोहित मन उपराही ।
सहस कोस एक पल महँ जाही ॥
समुद अपार, सरग जनु लागा ।
सरग न घाल गनै वैरागा ॥

खार समुद सो नाँघा, आये समुद जहँ खीर ।
मिले समुद वै सातौ, वेहर-वेहर नीर ॥५९॥

पुनि किलकिला समुद महँ आये ।
गा धीरज, देखत डर खाये ॥
भा किलकिल, अस उठै हिलोरा ।
जनु अकास टूटै चहुँ ओरा ॥
उठै लहरि परवत कै नाई ।
फिरि आवै जोजन सौ ताई ॥
धरती लेइ सरग लहि वाढा ।
सकल समुद जानहु भा ठाढा ॥
हीरामन राजा सौ बोला ।
एही समुद आये सत डोला ॥
सिंघलदीप जो नाहिं निबाहू ।
एही ठावँ साँकर सब काहू ॥
एहि किलकिला समुद गँभीरू ।
जेहि गुन होइ, सो पावै तीरू ॥

मरन-जियन एही पथहि, एही आस-निरास ।
परा सो गयेउ पतारहि, तरा सो गा कविलास ॥६०॥

।ान समुद घँसि लीन्हेसि, भा पाछे सब कोइ।
ोई काहू न सँभारै, आपनि-आपनि होइ ॥६१॥

ोई दिन मिला सवेरे, कोइ आवा पछ-राति।
ा कर जस-जस साजु हुत, सो उतरा तेहि भाँति ॥६२॥

सतएँ समुद मानसर आये।
मन जो कीन्ह साहस, सिधि पाये॥
देखि मानसर-रूप सोहावा।
हिय हुलास पुरइन होइ छावा॥
गा अँधियार, रैनि-मसि छूटी।
भा भिनुसार, किरन-रवि फूटी॥
'अस्ति-अस्ति' सब साथी बोले।
अंध जो अहे, नैन विधि खोले॥
कवँल विगस, तस विहँसी देही।
भौंर दसन होइ कै रस लेही॥
हँसहि हंस, औ करहिं किरीरा।
चुनहिं रतन मुकताहल हीरा॥
जो अस आव साधि तप-जोगू।
पूजै आस, मान रस भोगू॥

।ार जो मनसा मानसर, लीन्ह कँवल-रस आइ।
घुन जो हियाव न कै सका, झूर काठ तस खाइ ॥६३॥

सिंघलदीप खण्ड

पूछा राजै, कहु गुरु सूआ।
न जनौं आजु कहाँ दहुँ ऊआ॥
पौन वास सीतल लेइ आवा।
कया दहत चँदनु जनु लावा॥

कबहुँ न ऐस जुड़ान सरीरू ।
परा अगिनि महँ मलय समीरू ॥
निकसत आव किरिन-रवि-रेखा ।
तिमिर गये निरमल जग देखा ॥
तूँ राजा जस विकरम आदी ।
तू हरिचद वैन सतवादी ॥
गोपिचद तुइँ जीता जोगू ।
औ भरथरी न पूज वियोगू ॥
जीत पेम तुइँ भूमि अकासू ।
दीठि परा सिंघल-कविलासू ॥

गगन सरोवर, ससि-कँवल, कुमुद-तराइन्ह पास ।
तू रवि ऊआ, भौंर होइ, पौन मिला लेइ बास ॥६४॥

सो गढ देखु गगन तें ऊँचा ।
नैनन्ह देखा, कर न पहूँचा ॥
विजुरी-चक्र फिरै चहुँ फेरी ।
औ जमकात फिरै जम केरी ॥
धाइ जो बाजा कै मन साधा ।
मारा चक्र, भयेउ दुइ आधा ॥
चाँद-सुरुज औ नखत-तराईं ।
तेहि डर अँतरिख फिरहिं सवाईं ॥
पौन जाइ तहँ पहुँचै चहा ।
मारा तैस, लोटि भुइँ रहा ॥
अगिनि उठी, जरि बुझी नियाना ।
धुआँ उठा, उठि बीच विलाना ॥
पानि उठा, उठि जाइ न छूआ ।
बहुरा रोइ, आइ भुइँ चूआ ॥

रावन चहा सौंहि होइ, उतरि गये दस माथ
संकर धरा लिलाट भुइँ, और को जोगी-नाथ ?।

तहाँ देखु पदुमावति रामा ।
भौंर न जाइ, न पंखी-नामा ॥
कंचन-मेरु देखाव सो जहाँ ।
महादेव कर मंडप तहाँ ॥
माघ मास, पाछिल पछ लागे ।
सिरी-पंचमी होइहि आगे ॥
उघरिहि महादेव कर बारु ।
पूजिहि जाइ सकल संसारु ॥
पदुमावति पुनि पूजै आवा ।
होइहि एहि मिस दीठि-मेरावा ॥

तुम्ह गवनहु ओहि मंडप, हौं पदुमावति पास ।
पूजै आइ बसंत जब, तब पूजै मन-आस ॥

[५]

१४ पदुमावति-वियोग-खंड

पदुमावति तेहि जोग सँजोगा ।
परी पेम-बस; गहे बियोगा ॥
नींद न परै, रैनि जौं आवा ।
सेज केंवाच जानु कोइ लावा ॥
कलप समान रैनि तेहि बाढ़ी ।
तिल-तिल भर जुग-जुग जिमि गाढ़ी ॥
गहै बीन मकु रैनि बिहाई ।
ससि-बाहन तहँ रहै ओनाई ॥

पुनि धनि सिंघ उरेहै लागै ।
ऐसेहि बिथा रैनि सब जागै ॥
परी बिरह बन जानहुँ घेरी ।
अगम असूझ जहाँ लगि हेरी ॥
बिरह-समुद्र भरा अ-सँभारा ।
भौंर मेलि जिउ लहरिन्ह मारा ॥
बिरह नाग होइ सिर चढ़ि डसा ।
होइ अगिनि चँदन महँ बसा ॥
जोबन-चाँद उआ जस, बिरह भयेह सँग राहु ।
घटत-हि-घटत खीन भा, कहै न पारै काहु ॥९७॥

पदुमावति-सुआ भेंट खंड

तेहि बियोग हीरामन आवा ।
पदुमावति जानहुँ जिउ पावा ॥
कंठ लाइ सूआ सौं रोई ।
अधिक मोह, जौ मिलै बिछोई ॥
आगि उठै दुख हियें गँभीरू ।
नैनहिं आइ चुवा होइ नीरू ॥
रही रोइ जब पदमिनि रानी ।
हँसि पूछहिं सब सखी सयानी ॥
मिले रहस भा चाहिय दूना ।
कित रोइय जौं मिलै बिछूना ? ॥
तेहि के उतर पदुमावति कहा ।
बिछुरन-दुख जो हिये भरि रहा ॥
मिलत हिये आयेउ सुख भरा ।
वह दुख नैन-नीर होइ ढरा ॥

बिछुरंता जब भेंटै, सो जानै जेहि नेह
सुक्ख-सुहेला उग्गवै, दुक्ख झरै जिमि मेह

पुनि रानी हँसि कूसल पूछा।
कित गवनेहु पीजर कै छूँछा? ॥
रानी! तुम्ह जुग-जुग सुख-पाटू।
छाज न पखिहि पींजर-ठाटू ॥
जब भा पंख, कहाँ थिर रहना?।
चाहै उड़ा पंखि, जौं डहना ॥
पींजर महँ जो परेवा घेरा।
आइ मजारि कीन्ह तहँ फेरा ॥
दिन एक आइ हाथ पै मेला।
तेहि डर बनोबास कहँ खेला ॥
तहाँ बियाध आइ नर साधा।
छूटि न पाव मीचु कर बाँधा ॥
वै धरि बेचा बाम्हन-हाथा।
जंबूदीप गयेउँ तेहि साथा ॥

तहाँ चित्र चितउरगढ, चित्रसेन कर रा
टीका दीन्ह पुत्र कहँ, आपु लीन्ह सब-स

बैठ जो राज पिता के ठाऊँ।
राजा रतनसेन ओहि नाऊँ ॥
लछन- बतीसो, कुल निरमला।
बरनि न जाइ रूप औ कला ॥
वै हौं लीन्ह, अहा अस भागू।
चाहै सोने मिला सोहागू ॥
सो नग देखि हीछा भइ मोरी।
है यह रतन पदारथ जोरी ॥

है ससि जोग इहै पै भानू।
तहँ तुम्हार मै कीन्ह बखानू ॥
सुनत बिरह-चिनगी ओहि परी।
रतन पाव जौ कचन-करी ॥
कठिन पेम बिरहा दुख भारी।
राज छाँडि भा जोगि-भिखारी ॥
सुनि कै जोगी केर बखानू।
पदुमावति-मन भा अभिमानू ॥
कचन करी न काँचहि लोभा।
जौ नग होइ, पाव तब सोभा ॥

सुरग इद्र डरि काँपै, बासुकि डरै पतार।
कहाँ सो अस बर प्रिथिमी मोहि जोग ससार ॥७

तू रानी ! ससि कचन-करा।
वह नग, रतन सूर निरमरा ॥
बिरह-बजागि बीच का कोई ?
आगि जो छुवै, जाइ जरि सोई ॥
आगि बुझाइ परे जल गाढ़ै।
वह न बुझाइ, आपु ही बाढ़ै ॥
बिरह के आगि सूर जरि काँपा।
राति-हि-दिवस जरै ओहि तापा ॥
सुनि क धनि 'जारी अस कया'।
तब भा मयन, हिये भइ मया ॥
देखौ जाइ जरै कस भानू।
कचन जरे अधिक होइ बानू ॥
जौ वह जोग सँभारै छाला।
पाइहि भुगुति, देहुँ जयमाला ॥

कवँल-भँवर तुम्ह वरना, मैं माना पुनि सोइ
चाँद सूर कहँ चाहिय, जौ रे सूर वह होइ

हीरामन जो सुना रस-बाता।
पावा पान, भयेउ मुख राता॥
चला सुआ, रानी तब कहा।
भा जो परावा, कैसे रहा?॥
जो निति चलै सँवारै पाँखा।
आजु जो रहा, कालिह को राखा?॥
न जनौं, आजु कहाँ दहुँ उआ।
आयेहु मिलै, चलेहु मिलि सुआ!॥
मिलि कै विछुरन मरन कै आना।
कित आयेहु जौ चलेहु निदाना?
सुनु रानी! हौ रहतेउँ राधा।
कैसे रहौं वचन कर बाँधा?॥
ता कर दिस्टि ऐसि तुम्ह सेवा।
जैस कुंज-मन रहै परेवा॥

वसै मीन जल धरती, अंबा वसै अक
जौं पिरीत पै दुवौ महँ, अंत होहिं एक

आवा सुआ, बैठ जहँ जोगी।
मारग नैन, वियोग-वियोगी॥
आइ पेम-रस कहा सँदेसा।
गोरख मिला, मिला उपदेसा॥
तुम्ह कहँ गुरू मया बहु कीन्हा।
कीन्ह अदेस, आदि कहि दीन्हा॥
सवद एक उन्ह कहा अकेला।
गुरु जस भिंग, फनिग जस चेला॥

भिंगी ओहि पाँखि पै लेई।
एकहि बार छीनि जिउ देई॥
ता कहँ गुरू करै असि माया।
नव औतार देइ, नव काया॥
होइ अमर जो मरि कै जीया।
भौंर कवँल मिलि कै मधु पीया॥
आवै रितु बसंत जब, तब मधुकर, तब बासु।
जोगी जोग जो इमि करै, सिद्धि समापत तासु॥७३॥

१६ बसत-खड

दैउ-दैउ कै सो रितु गँवाई।
सिरी-पंचमी पहुँची आई॥
भयेउ हुलास नवल रितु माहाँ।
खिनु न सोहाइ धूप औ छाहाँ।
पदुमावति सब सखी हँकारी।
जावत सिंघलदीप कै बारी॥
आजु बसंत नवल रितु राजा।
पंचमि होइ जगत सब साजा॥
नवल सिंगार बनसपति कीन्हा।
सीस परासहि सेंदुर दीन्हा॥
बिगसि फूल फूले बहु बासा।
भौंर आइ लुबुधे चहुँ पासा॥
पियर-पात-दुख झरे निपाते।
सुख-पल्लव उपने होइ राते॥
अवधि आइ सो पूजी, जो हींछा मन कीन्ह।
चलहु देव-मढ गोहने, चहहुँ सो पूजा दीन्ह॥७४

कवल-सहाय चली फुलवारी।
फर-फूलन सब करहिं धमारी॥
आपु-आपु महँ करहिं जोहारू।
यह बसंत सब कर तिवहारू॥
चहै मनोरा झूमक होई।
फर औ फूल लियेउ सब कोई॥
फागु खेलि पुनि दाहब होरी।
सैंतब खेह, उड़ाउब झोरी॥
आजु साज पुनि दिवस न दूजा।
खेलि बसंत लेहु कै पूजा॥
भा आयसु पदुमावति केरा।
बहुरि न आइ करब हम फेरा॥
तस हम कहँ होइहि रखवारी।
पुनि हम कहाँ, कहाँ यह बारी?॥

पुनि रे चलब घर आपने, पूजि बिसेसर-देव।
जेहि काहुहि होइ खेलना, आजु खेलि-हँसि लेव॥७५

काहू गही आँब कै डारा।
काहू जाँबु, बिरह अति झारा॥
पुनि बीनहि सब फूल सहेली।
खोजहिं आस-पास सब बेली॥
फर-फूलन्ह सब डार ओढ़ायी।
झुंड बाँधि कै पंचम गायी॥
बाजहिं ढोल दुंदुभी भेरी।
मादर, तूर, झाँझ चहुँ फेरी॥
नवल बसंत, नवल सब बारी।
सेंदुर-बुक्का, होइ धमारी॥

खिनहि चलहि, खिन चाँचरि होई।
नाच-कोड भूला सब कोई॥

सेंदुर-खेह उड़ा अस, गगन भयेउ सब रात।
राती सगरिउ धरती, राते बिरिछन्ह पात॥७६॥

एहि बिधि खेलति सिंघल-रानी।
महादेव-मढ जाइ तुलानी॥
पदुमावति गइ देव-दुवारा।
भीतर मंडप कीन्ह पैसारा॥
एक जोहार कीन्ह, औ दूजा।
तिसरे आइ चढायेसि पूजा॥
फर-फूलन्ह सब मंडप भरावा।
चंदन-अगर देव नहवावा॥
लेइ सेंदुर आगे भइ खरी।
परसि देव पुनि पाँयन्ह परी॥
और सहेली सबै बियाही।
मो कहँ देव! कतहुँ बर नाही॥
हौं निरगुन, जेइ कीन्ह न सेवा।
गुनि-निरगुनि दाता तुम्ह देवा!॥

बर सँजोग मोहि मेरवहु, कलस जाति हौं मानि।
जेहि दिन हींछा पूजै, बेगि चढावहुँ आनि॥७७॥

ततखन एक सखी बिहँसानी।
कौतुक आइ न देखहु रानी!॥
पुरुब-द्वार मठ जोगी छाये।
न जनौ कौन देस ते आये॥
जनु उन्ह जोग-तंत तन खेला।
सिद्ध होइ निसरे सब चेला॥

उन्ह महँ एक गुरू जो कहावा ।
जनु गुर देइ काहु बौरावा ॥
कुँवर बतीसौ लच्छन राता ।
दसएँ लछनु कहै एक बाता ॥
जानौं, आहि गोपिचँद जोगी ।
की सो आहि भरथरी वियोगी ॥
वै पिंगला गये कजरी-आरन ।
ए सिंघल आये केहि कारन ? ॥
ह मूरति, यह मुद्रा, हम न देख अवधूत
ानौं, होइ न जोगी, कोइ राजा कर पूत ॥७८॥

सुनि सो बात रानी रथ चढ़ी ।
कहँ अस जोगी, देखौं मढ़ी ॥
लेइ सँग सखी कीन्ह तहँ फेरा ।
जोगिहि आइ अपछरन्ह घेरा ॥
नयन-कचोर पेम-मद-भरे ।
भइ सुदिस्टि, जोगी सहुँ ढरे ॥
जोगी दिस्टि दिस्टि सौं लीन्हा ।
नैंन रोपि नैनहिं जिउ दीन्हा ॥
जो मद चहा, परा तेहि पाले ।
सुधि न रही ओहि एक पियाले ॥
परा माति गोरख कर चेला ।
जिउ तन छाँड़ि सरग कहँ खेला ॥
किंगरी गहे जो हुत बैरागी ।
मूरतिहु बार उहै धुनि लागी ॥
ोहि धंधा जाकर मन लागै, सपनेहु सूझ सो धंध ।
ोहि कारन तपसी तप साधहिं, करहिं पेम मन बंध ॥७९॥

पदुमावनि जस सुना वखानू ।
सहस-करा देखेसि तस भानू ॥
मेलेसि चदन, मकु खिन जागा ।
अधिकौ सूत, सीर तन लागा ॥
तब चदन-आखर हिय लिखे ।
भीख लेइ तुइँ जोग । न सिखे ।
घरी आइ, तब गा तूँ सोई ?
कैसे भुगुति-परापति होई ? ॥
अब जो सूर ! अहौ ससि-राता ।
आयेहु चढि सो गगन पुनि साता ॥
कीन्ह पयान, सबन रथ हाँका ।
परबत छाँडि सिंघलगढ ताका ॥
भये बलि सबै देवता बली ।
हत्यारिनि हत्या लेइ चली ॥
कया भुइँ लोटै, कहाँ रे जिउ बलि भी
को उठाइ बैठारै बाज पियारे

राजा-रतनसेन-सती-खड

कँ बसत पदुमावति गयी ।
राजहि तब बसत-सुधि भयी ॥
जो जागा, न बसत, न बारी ।
ना वह खेल, न खेलनहारी ॥
ना वह ओहि कर रूप सुहायी ।
गइ हेराइ, पुनि दिस्टि न आयी ॥
फूल झरे, सूखी फुलवारी ।
दीठि परी उकठी सब बारी ॥

केइ यह बसत बसंत उजारा ? ।
गा सो चाँद, अथवा लेइ तारा ।।
विरह-दवा को जरत सिरावा ? ।
को पीतम सौ करै मेरावा ? ।।
जस बिछोह जल मीन दुहेला ।
जल हुँत काढि अगिन महँ मेला ।।
चंदन-आँक दाग हिय परे ।
बुझहिं न ते आखर परजरे ।।

आइ बसत जो छपि रहा होइ फूलन्ह के भेस ।
केहि विधि पावौं भौंर होइ कौन सो गुरु उपदेस ।।८१

रोवै रतन-माल जनु चूरा ।
जहँ होइ ठाढ, होइ तहँ कूरा ।।
कहाँ सो मूरति परी जो डीठी ।
काढि लिहेसि जिउ हिये पईठी ।।
अरे मलिछ बिसवासी देवा ।
कित मैं आइ कीन्ह तोरि सेवा ।।
सुफल लागि पग टेकेउँ तोरा ।
सुआ क सेंवर तू भा मोरा ।।
पाहन चढ़ि जो चहै भा पारा ।
सो ऐसे बूड़े मँझधारा ।।
पाहन सेवा कहाँ पसीजा ? ।
जनम न ओद होइ, जौ भीजा ।।
बाउर सोइ, जो पाहन पूजा ।
सकत को भार लेइ सिर दूजा ? ।।

सिंघ तरेंदा जिन्ह गहा, पार भये तेहि साथ ।
ते पै बूड़े बाउरे, भेड-पूँछ जिन्ह हाथ ।।८२

आइ जो पीतम फिरि गा, मिला न आइ बसंत।
अब तन होरी घालि कै जारि करौं भसमंत ॥८३॥

हनुवँत बीर लंक जेहि जारी।
परबत उहै अहा रखवारी॥
बैठि तहाँ होइ लंका ताका।
छठएँ मास देइ उठि हाँका॥
तेहि कै आगि उहौ पुनि जरा।
लंका छाँड़ि पलंका परा॥
जाइ तहाँ वै कहा सँदेसू।
पारबती औ जहाँ महेसू॥
जोगी आहि बियोगी कोई।
तुम्हरे मंडप आगि तेइ बोई॥

जरा लँगूर सु राता उहाँ।
निकसि जो भाग, भयेउँ करमुहाँ ॥
तेहि बजरागि जरै हौ लागा।
बजर-अग जरतहि उठि भागा ॥

रावन-लका हौ दही, वह हौ दाहै आव।
गये पहार सब औटि कै, को राखै गहि पाँव ? ॥८४॥

पार्वती-महेस-खंड

ततखन पहुँचे आइ महेसू।
बाहन बल, कुस्टि कर भेसू ॥
चँवर, घट औ डँवरू हाथा।
गौरा पारबती धनि साथा ॥
अबतहि कहेन्हि न, लावहु आगी।
तेहि कै सपथ जरहु जेहि लागी ॥
जरै देहु, दुख जरौ अपारा।
निस्तर पाइ जाउँ एक बारा ॥
तै यह जिउ दाधे पर दाधा।
आधा निकसि रहा, घट आधा ॥
जो अजधर, सो बिलँब न लावा।
करत बिलब बहुत दुख पावा ॥

एतना बोल कहत मुख उठी बिरह कै आगि।
जौं महेस न बुझावत, जाति सकल जग लागि ॥८५॥

पारबती मन उपना चाऊ।
देखौं कुँवर केर सत भाऊ ॥
ओहि एहि बीच, कि पेमहि पूजा।
तन मन एक, कि मारग दूजा ॥

[illegible] रूप [illegible] [illegible] जागा।
मोहि [illegible] को [illegible] न [illegible]॥
[illegible] मोहि मंतहि मुँह [illegible] [illegible]।
नैन जो [illegible], [illegible] [illegible]?॥
मरहि जाहि जिउ देह न पावा।
[illegible] पनि [illegible] [illegible] [illegible]॥
जौं जिउ देखौं मोहि के [illegible]।
न जनौं, काह होइ दुखियारा॥
गौरइ हँसि महेस सौं कहा।
निहचै एहि बिरहानल दहा॥
निहचै यह ओहि कारन तपा।
परिमल पेम न आछै छपा॥
एहु कहँ तन मया करेहू।
पुरवहु आस, कि हत्या लेहू॥

तस रोवैं जस जिउ जरै, गिरै रकत औ माँसु।
रोवँ-रोवँ सब रोवहिं सूत-सून भरि आँसु ॥८७॥

रोवत बूडि उठा मसारू।
महादेव तब भयेउ मयारू॥
अब तैं सिद्ध भयेसि, सिधि पाई।
दरपन-कया छूटि गइ काई॥
गढ तस बाँक, जैसि तोरि काया।
पुरुख! देखि ओही कै छाया॥
पाइय नाहिं जूझ हठि कीन्हे।
जेइ पावा तेइ आपुहिं चीन्हे॥
नौ पौरी तेहि गढ मँझियारा।
औ तहँ फिरहिं पाँच कोटवारा॥
दसवँ दुवार गुपुत एक ताका।
अगम चढाव, बाट सुठि बाँका॥
भेदी जाइ कोइ ओहि घाटी।
जो लह भेद चढै होइ चाँटी॥

जस मरजिया समुद धँस, हाथ आव तब सीप।
ढूँढि लेइ जो सरग-दुआरी, चढै सो सिंघलदीप ॥८८॥

खप्पर लेइ बार भा माँगौ।
भुगुति देइ, लेइ मारग लागौं॥
जोगी बार आव सो, जेहि भिच्छा कै आस।
जो निरास, दिढ आसन, कित गवने केहु पास?' ॥६०॥

सुनि बसीठ-मन उपनी रीसा।
'जौ पीसत घुन जाइहि पीसा॥
जोगी अस कहुँ कहै न कोई।
सो कहु बात, जोग जो होई॥
आगे देखि पाँव धरु नाथा।
तहाँ न हेरु, टूट जहँ माथा॥'
बसिठन्ह जाइ कही अस बाता।
राजा सुनत कोह भा राता॥
ठाँव-हि-ठाँव कुँवर सब माखे।
केइ अब लीन्ह जोग, केइ राखे?॥
मन्त्रिन्ह कहा, रहौ मन बूझे।
पति न होइ जोगिन्ह सौं जूझे॥
ओहि मारे तौ काह, भिखारी।
लाज होइ, जौ माना हारी॥
आछे देहु जो गढ तर, जनि चालहु यह बात।
तहँ जो पाहन भख करहिं अस केहि के मुख दाँत?॥६१॥

गये बसीठ पुनि बहुरि न आये।
राजै कहा, बहुत दिन लाये॥
न जनौं सरग बात दहुँ काहा।
काहु न आइ कही फिर चाहा॥
पख न काया, पौन न पाँया।
केहि विधि मिलौं होइ कै छाया?॥

मँवरि रकत नैनहि भरि चूत्रा ।
रोइ हँकारेसि माँझी सूत्रा ॥
परी जो आँसु रकत कै टूटी ।
रेंगि चली जस बीर-बहूटी ॥
ओही रकत लिखि दीन्ही पाती ।
सुआ जो लीन्ह, चोच भइ राती ॥
मसि नैना, लिखनी बरुनि, रोइ-रोइ लिखा अकत्थ ।
आखर दहै, न कोइ छुवै, दीन्ह परेवा हत्थ ॥६२॥

कंचन-तार बाँधि गिउ पाती ।
लेइ गा सुआ, जहाँ धनि राती ॥
जैसे कवँल सूर के आसा ।
नीर कंठ लहि मरत पियासा ॥
बिसरा भोग, सेज, सुख बासा ।
जहाँ भौर, सब तहाँ हुलासा ॥
तौ लगि धीर, सुना नहिं पीऊ ।
सुना त घरी रहै नहिं जीऊ ॥
तौ लगि सुख, हिय पेम न जामा ।
जहाँ पेम, कत सुख-बिसरामा ॥
अगर-चँदन सुठि दहै सरीरू ।
औ भा अगिनि कया कर चीरू ॥
बिरह न आपु सँभारै, मैल चीर, सिर रूख ।
पिउ-पिउ करत राति-दिन जस पपिहा मुख सूख ॥६३॥

ततखन गा हीरामन आयी ।
मरत पियास छाँह जनु पायी ॥
भल तुम्ह, सुआ ! कीन्ह है फेरा ।
कहहु कुसल अब पीतम केरा ॥

बाट न जानौ, अगम पहारा।
हिरदय मिला, न होय निनारा॥
मरम पानि कर जान पियासा।
जो जल महँ, ता कहँ का आसा?॥
का रानी! यह पूछहु बाता।
जिनि कोइ होइ पेम कर राता॥
तुम्हरे दरसन लागि बियोगी।
अहा सो महादेव-मठ जोगी॥
तुम्ह बसत लेइ तहाँ सिधायी।
देव पूजि पुनि ओहि पहँ आयी॥

दिस्टि-बान तस मारेहु, घायल भा तेहि ठाँव।
दूसरि बात न बोलै, लेइ पदुमावति नाँव॥९४॥

तुम्ह तौ खेलि मँदिर महँ आयी।
ओहि क मरम पै जान गोसाईं॥
कहेसि, जरै को बारहि-बारा।
एकहि बार होहुँ जरि छारा॥
उलटा पथ पेम के बारा।
चढ़ै सरग, जौ परै पतारा॥
अब धँसि लीन्ह चहै तेहि आसा।
पावै साँस, कि मरै निरासा॥
कहि कै सुआ जो छोड़ेसि पाती।
जानहु दीप छुवत तस ताती॥
गीउ जो बाँधा कचन-तागा।
राता साँव कठ जरि लागा॥
वह तोहि लागि कया सब जारी।
तपत मीन, जल देहि पँवारी॥

तोहि कारन वह जोगी भसम कीन्ह तन दाहि।
तू असि निठुर निछोही, बात न पूछै ताहि ।।६५।।

कहेसि, 'सुआ ! मो सौ सुनु बाता।
चहौ तौ आज मिलौ जस राता।।
पै सो मरम न जाना मोरा।
जानै प्रीत जो मारि कै जोरा।।
हौ जानति हौ, अबही काँचा।
ना जेइ प्रीति-रंग थिर राँचा।।
पुनि धनि कनक-पानि मसि माँगी।
उत्तर लिखत भीजी तन आँगी।।
तस कचन कहँ चहिय सोहागा।
जौ निरमल नग होइ तौ लागा।।
हौं जो गयी सिव-मडप भोरी।
तहँवाँ कस न गाँठि तै जोरी ?।।
भा विसँभार देखि कै नैना।
सखिन्ह लाज का बोलौ बैना ?।।
खेलहि मिस मै चदन घाला।
मकु जागसि तौ देउँ जयमाला।।
तबहुँ न जागा, गा तै सोई।
जागे भेंट, न सोये होई।।
अब जौ सूर होइ चढ़ै अकासा।
जौ जिउ देइ, त आवै पासा।।

तौ लगि भुगुति न लेइ सका, रावन सिय जब साथ।
कौन भरोसे अब कहौ, जीउ पराये हाथ।।६६।।

हौ पुनि इहाँ ऐसि तोहि राती।
आधी भेंट पिरीतम-पाती।।

तहँ जौ प्रीत निबाहै आँटा।
भौंर न देख केत कर काँटा॥
होइ पतग अधरन्ह गहु दीया।
लेहु समुद धँसि होइ मरजीया॥
चातक होइ पुकारु पियासा।
पीउ न पानि सेवाति कै आसा॥

महुँ तैसे होउँ तोहि कहँ, सकहि तौ ओर निबाहु।
राहु बेधि होइ अरजुन, जीति दुरपदी ब्याहु॥९७॥

राजा इहाँ ऐस तप झूरा।
भा जरि बिरह छार कर कूरा॥
नैन लाइ सो गयेउ बिमोही।
भा बिनु जिउ, जिउ दीन्हेसि ओही॥
देखेसि जागि, सुआ सिर नावा।
पाती देइ मुख बचन सुनावा॥
गुरु के बचन स्रवन दुइ मेला।
कीन्हि सुदिस्टि, बेगि चलु चेला।॥
पौन साँस तो सौं मन लाई।
जोवै मारग दिस्टि बिछाई॥
सुनि पदुमावति कै असि मया।
भा बसंत, उपनी नइ कया॥
सुआ क बोल पौन होइ लागा।
उठा सोइ, हनुवँत अस जागा॥
चाँद मिलै कै दीन्हेसि आसा।
सहसौ कला सूर परगासा॥
पाति लीन्हि, लेइ सीस चढावा।
दीठि चकोर चंद जस पावा॥

उठा फूलि हिरदय न समाना।
कथा टूक-टूक वेहराना॥
लीन्हे सिधि माँसा मन मारा।
गुरू मछुंदरनाथ सँभारा॥
खोजि लीन्ह सो मरग-दुवारी।
बज्र जो मूँदे जाइ उघारी॥

बाँक चढाव सरग-गट, चढत गयेउ होइ भोर।
भइ पुकार गढ ऊपर, चढे सेंघि देइ चोर॥१८॥

२० जोगी-बचन-खंड

राजै सुनि जोगी गढ चढे।
पूछे पास जो पंडित पढे॥
जोगी गढ जो सेंघि देइ आवहिं।
बोलहु सबद, सिद्धि जस पावहिं॥
कहहिं वेद पटि पंडित वेदी।
जोगि भौर जस मालति-भेदी॥
राँव जो मंत्री, बोले सोई।
ऐस जो चोर, सिद्ध पै कोई॥
सिद्ध निसक रैन दिन भँवही।
ताकहिं जहाँ तहाँ अपसवही॥
राजै छेकि धरे सब जोगी।
दुख ऊपर दुख सहे बियोगी॥
नाग-फाँस उन्ह मेला गीवा।
हरख न बिसमौ एकौ जीवा॥
भलेहि आनि गिउ मेली फाँसी।
है न सोच हिय, रिस अस नासी॥

मै गिउ फाँद ओहि दिन मेला ।
जेहि दिन पेम-पंथ होइ खेला ॥
जब लगि गुरु हौं अहा न चीन्हा ।
कोटि अंतरपट बीचहिं दीन्हा ॥
जब चीन्हा तब और न कोई ।
तन मन जिउ जीवन सब सोई ॥
'हौं हौं' करत धोख इतराहीं ।
जब भा सिद्ध, कहाँ परछाहीं ? ॥

दरसन ओहि कर दिया जस, हौं सो भिखारि पतंग ।
जौं करवत सिर सारै, मरत न मोरौं अंग ॥६१॥

पदुमावति कँवला ससि-जोती ।
हँसै फूल, रोवै सब मोती ॥
जबहिं सुरुज कहँ लागा राहू ।
तबहिं कँवल मन भयेउ अगाहू ॥
बिरह-अगस्त जो बिसमौ उयेऊ ।
सरवर हरख सूखि सब गयेऊ ॥
जस दिन माँझ रैन होइ आयी ।
बिगसत कँवल गयेउ मुरझाई ॥
जानहिं मरम कँवल कर कोई ।
देखि बिथा बिरहिन कै रोई ॥
बिरहा कठिन काल कै कला ॥
बिरह न सहै, काल बरु भला ॥
काल काढि जिउ लेइ सिधारा ।
बिरह-काल मारे पर मारा ॥
घरी चारि इमि गहन गरासी ।
पुनि बिधि हिये जोति परगासी ॥

निर्मँस ऊभि, भरि लीन्हेसि साँसा।
भा अधार, जीवन कै आसा॥
सखी! आनि बिख देहु तौ मरऊँ।
जिउ न पियार, मरै का डरऊँ?॥

खिनहि उठै खिन बूडै, अस हिय कँवल सँकेत।
हीरामनहि बुलावहि, सखी! गहन जिउ लेत॥१००॥

चेरी धाय सुनत खिन धायी।
हीरामनहि बेगि लेइ आयी॥
जनहु बैद ओखद लेइ आवा।
रोगिया रोग मरत जिउ पावा॥
सुनत असीम नैन धनि खोले।
बिरह-बैन कोकिल जिमि बोले॥
कँवलहि बिरह-बिथा जस बाढी।
केसर-बरन पीर हिय गाढी॥
और दगध का कहौ अपारा।
सती सो, जरै कठिन अस भारा॥
होइ हनुवत पैठ है कोई।
लंका-दाहु लाग करै सोई॥
लंका बुझी आगि जो लागी।
यह न बुझाइ आँच बजरागी॥

जहँ लगि चंदन मलयगिरि, औ सायर सब नीर।
सब मिलि आइ बुझावहिं, बुझै न आगि सरीर॥१०१॥

हीरामन जौ देखेसि नारी।
प्रीति-बेल उपनी हिय-बारी॥
कहेसि, कस न तुम्ह होहु दुहेली।
अरुझी पेम-प्रीत की बेली॥

प्रीति-बेलि जिनि अरुझै कोई ।
अरुझे मुये न छूटै सोई ॥
पदुमावति उठि टेकै पाया ।
तुम्ह हुँत देखौं पीतम–छाया ॥
कहत लाज, औ रहै न जीऊ ।
एक दिसि आगि, दुसर दिसि पीऊ ॥
तुम्ह सो मोर खेवक गुरु-देवा ।
उतरौं पार, तेहि बिधि खेवा ॥
दमनहिं नलहिं जो हंस मेरावा ।
तुम्ह हीरामन नावँ कहावा ॥

मूरि सजीवन दूरि है, सालै सकती–बानु ।
प्रान मुकुत अब होत हैं, बेगि देखावहु भानु ॥१०२॥

हीरामन भुइँ धरा लिलाटू ।
तुम्ह रानी ! जुग-जुग सुख पाटू ॥
जेहि के हाथ सजीवन-मूरी ।
सो जानिय अब नाही दूरी ॥
पिता तुम्हार राज कर भोगी ।
पूजै बिप्र, मरावै जोगी ॥
पौरि-पौरि कोतवार जो बैठा ।
पेम क लुबुध सुरँग होइ पैठा ॥
चढ़त रैनि गढ़ होइगा भोरू ।
आवत बार धरा कै चोरू ॥
अब लेइ गये देइ ओहि सूरी ।
तेहि सौं अगाह बिथा तुम्ह पूरी ॥
अब तुम्ह जिउ, काया वह जोगी ।
कया क रोग जान पै रोगी ॥

हीरामन जो बात यह कही ।
सूर कै गहन चाँद तब गही ॥
अब जौ जोगि मरै मोहिं नेहा ।
मोहि ओहि साथ धरति-गगनेहा ॥
रहै त करौ जनम भरि सेवा ।
चलै त, यह जिउ साथ परेवा ॥

जो रे जियहि मिलि गर रहहिं, मरहि त एकै दोउ ।
तुम्ह जिय कहँ जनि होउ कछु, मोहि जिय होइ सो होउ ॥१०३॥

२१. रतनसेन-सूली-खंड

बाँधि तपा आने जहँ सूरी ।
जुरे आइ सब सिंघलपूरी ॥
पहिले गुरुहि देइ कहँ आना ।
देखि रूप सब कोइ पछिताना ॥
लोग कहहिं, यह होइ न जोगी ।
राजकुँवर कोइ अहै बियोगी ॥
काहुहि लागि भयेउ है तपा ।
हिये सो माल, करै मुख जपा ॥
जस मारै कहँ बाजा तूरू ।
सूरी देखि हँसा मसूरू ॥
चमके दसन भयेउ उजियारा ।
जो जहँ तहाँ बीजु अस मारा ॥
जोगी केर करहु पै खोजू ।
मकु यह होइ न राजा भोजू ॥

सब पूछहि, कहु जोगी ! जाति जनम औ नाँव ।
जहाँ ठाँव रोवै कर, हँसा सो कहु केहि भाव ? ॥१०४॥

का पूछहु अब जाति हमारी ? ।
हम जोगी औ तपा भिखारी ।।
जोगिहि कौन जाति, हो राजा !
गारि न कोह, मारि नहि लाजा ।।
निलज भिखारि लाज जेइ खोयी ।
तेहि के खोज परै जिनि कोई ।।
जाकर जीउ मरै पर बसा ।
सूरी देखि सो कस नहि हँसा ? ।।
जोगिहि जबहिं गाढ अस परा ।
महादेव कर आसन टरा ।।
वै हँसि पारबती सौ कहा ।
जानहुँ सूर गहन अस गहा ।।
आजु चढे गढ ऊपर तपा ।
राजै गहा, सूर तब छपा ।।
पारबती सुनि पाँयन्ह परी ।
चलि महेस ! देखै एहि घरी ।।
भेस भाँट-भाँटिनि कर कीन्हा ।
औ हनुवत बीर संग लीन्हा ।।
आये गुपुत होइ देखन लागी ।
वह मूरति कस सती सभागी ।।

कटक असूझ देखि कै राजा गरब करेइ ।
दैउ क दसा न देखै, दहुँ का कहँ जय देइ ।।१०५।।

लेइ सँदेस सुअटा गा तहाँ ।
सूरी देहि रतन कहँ जहाँ ।।
देखि रतन हीरामन रोवा ।
राजा जिउ लोगन्ह हठि खोवा ।।

देखि रुदन हीरामन केरा।
रोवहि सब, राजा मुख हेरा॥
माँगहि सब विधना सौ रोई।
कै उपकार छोडावै कोई॥
कहि सँदेस-सब विपत्ति सुनायी।
विकल बहुत, किछु कहा न जाई॥
काढि प्रान बैठो लेइ हाथा।
मरै तो मरौ, जियौ एक साथा॥
सुनि सँदेस राजा तब हँसा।
प्रान प्रान घट घट महँ बसा॥

सुग्रटा भाँट दसौंधी, भये जिउ पर एक ठाँव।
चलि सो जाइ अब देख तहँ, जहँ वैठा रह राव॥१०६॥

राजा रहा दिस्टि कै औंधी।
रहि न सका तब भाँट दसौंधी॥
कहेसि, मेलि कै हाथ कटारी।
पुरुख न आछे बैठ पेटारी॥
कान्ह कोपि कै मारा कंसू।
गोकुल माँझ बजावा बंसू॥
गन्ध्रबसेन जहाँ रिस बाढा।
जाइ भाँट आगे भा ठाढा॥
ठाढ देख सब राजा-राऊ।
बायें हाथ दीन्ह बरम्हाऊ॥
बोला गन्ध्रबसेन रिसाई।
कस जोगी, कस भाँट असाई?॥
जोगी पानि, आगि तू राजा।
आगिहि पानि जूझ नहि छाजा॥

आगि बुझाइ पानि सों, जूझु न, राजा ! बूझु ।
लीन्हे खप्पर वार तोहिं, भिच्छा देहि, न जूझु ॥१०७॥

बोला भाँट, नरेस सुनु ! गरब न छाजा जीउ ।
कुंभकरन कै खोपरी बूड़त बाँचा भीउँ ॥१०८॥

ओहट होहु रे भाँट भिखारी !
का तू मोहि देहि असि गारी ? ॥
को मोहि जोग जगत होइ पारा ?
जा सहुँ हेरौं, जाइ पतारा ॥
जोगी-जती आव जो कोई ।
सुनतहि त्रासमान भा सोई ॥
भीख लेहि, फिरि माँगहि आगे ।
ए सब रैनि रहे गढ लागे ॥
जस हीछा, चाहौ तिन्ह दीन्हा ।
नाहि बेधि सूरी जिउ लीन्हा ॥
जेहि अस साध होइ जिउ-खोवा ।
सो पतंग दीपक तस रोवा ॥
सुर, नर, मुनि सब गंध्रब देवा ।
तेहि को गनै ? करहिं नित सेवा ॥

मो सौं को सरवरि करै, सुनु रे झूठे भाँट ! ।
छार होइ जौ चालौ निज हस्तिन कर ठाट ॥११०॥

महादेव रन घंट बजावा ।
सुनि कै सबद ब्रह्मा चलि आवा ॥
तेंतिस कोटि देवता साजा ।
औ छयानबे मेघ दर साजा ॥
उरए माल आये रन काछे ।
जोगी घिरि मेले सब पाछे ॥

मन्त्रिन्ह कहा, सुनहु हो राजा ।
देखहु अब जोगिन्ह कर काजा ॥
हम जो कहा, तुम्ह करहु न जूझू ।
होत आव दर जगत असूझू ॥
कहहि बात, जोगी अब आये ।
खिनक माहँ चाहत है धाये ॥
जो लहि धावहिं, अस कै खेलहु ।
हस्तिन केर जूह सब पेलहु ॥
जस गज पेलि होहिं रन आगे ।
तस बगमेल करहु सँग लागे ॥
हस्ति क जूह आइ अगसारी ।
हनुवँत तबै लँगूर पसारी ॥
जैसे सेन बीच रन आयी ।
सबै लपेटि लँगूर चलायी ॥

वहुतक परे समुद महँ, परत न पावा खोज ।
जहाँ गरब तहँ पीरा, जहाँ हँसी तहँ रोज ॥११०॥

पुनि आगे का देखे राजा ।
ईसर केर घट रन बाजा ॥
जावत दानव राच्छस पुरे ।
आठौं बज्र आइ रन जुरे ॥
जेहि कर गरब करत हुत राजा ।
सो सब फिरि बैरी होइ साजा ॥
जहँवाँ महादेव रन खड़ा ।
सीस नाइ नृप पायँन्ह परा ॥

केहि कारन रिस कीजिय, हो सेवक औ चेर ।
जेहि चाहिय तेहि दीजिय, बारि गोसाईं केर ॥१११॥

गये जो बाजन बाजत, जिउ मारन रन माहँ ।
फिरि बाजन तेइ बाजे, मंगलाचार ओनाहँ ॥११२॥

रतनसेन-पदुमावति-विवाह-खंड

लगन धरा औ रचा बियाहू ।
सिंघल नेवत फिरा सब काहू ॥
बाजन बाजे कोटि पचासा ।
भा अनंद सगरो कबिलासा ॥
रतनसेन कहँ कापर आये ।
हीरा-मोति पदारथ लाये ॥
बाजत-गाजत भा असवारा ।
सब सिंघल नइ कीन्ह जोहारा ॥
चहुँ दिसि ससियर नखत-तराईं ।
सूरुज चढा चाँद के ताईं ॥
पदुमावति धौराहर चढी ।
दहुँ कस रवि, जेहि कहँ ससि गढी ॥
सखी देखावहिं, चमकै बाहू ।
तू जस चाँद, सुरुज तोर नाहू ॥
रूपवंत जस दरपन, धनि तू जा कर कंत ।
चाहिय जैस मनोहर, मिला सो मन-भावंत ॥११३॥
आइ बजावनि बैठि बराता ।
पान, फूल, सेंदुर सब राता ॥
जहँ सोने कर चित्तर-सारी ।
लेइ बरात सब तहाँ उतारी ॥
माँझ सिंघासन पाट सँवारा ।
दूलह आनि तहाँ बैसारा ॥
भइ जेवनार, फिरा खँडवानी ।
फिरा अरगजा कुंहकुंह-पानी ॥

फिरा पान, बहुरा सब कोई।
लाग बियाह-चार सब होई॥
गाँठि दुलह-दुलहिनि कै जोरी।
दुऔ जगत जो जाइ न छोरी॥
वेद पढ़ैं पंडित तेहि ठाऊँ।
कन्या तुला-रासि लेइ नाऊँ॥

चाँद-सुरुज दुऔ निरमल, दुऔ सँजोग अनूप।
सुरुज चाँद सौं भूला, चाँद सुरुज के रूप॥११४॥

भइ भाँवरि, नेवछावरि, राज चार सब कीन्ह।
दायज कहौं कहाँ लगि ?, लिखि न जाइ जत दीन्ह॥११५॥

रतनसेन जब दायज पावा।
गन्ध्रबसेन आइ सिर नावा॥
मानुस चित्त आन किछु कोई।
करै गोसाईं सोइ पै होई॥
अब तुम्ह सिंघलदीप गोसाईं।
हम सेवक अहही सेवकाई॥
जस तुम्हार चितउरगढ़ देसू।
तस तुम्ह इहाँ हमार नरेसू॥
जंबूदीप दूरि का काजू ?।
सिंघलदीप करहु अब राजू॥
रतनसेन बिनवा कर जोरी।
अस्तुति जोग जीभ कहँ मोरी॥
तुम्ह गोसाईं, जेइ छार छँडाई।
कै मानुस अब दीन्हि बड़ाई॥

जौ तुम्ह दीन्ह तौ पावा, जिवन जनम सुखभोग।
नातरु खेह पायँ कै, हौं जोगी केहि जोग ?॥११६॥

२३ नागमती-वियोग-खंड

नागमती चितउर-पथ हेरा ।
पिउ जो गये, पुनि कीन्ह न फेरा ॥
नागर काहु नारि-वस परा ।
तेइ मोरि पिउ मो सौं हरा ॥
सुआ काल होइ लेइगा पीऊ ।
पिउ नहिं जात, जात बरु जीऊ ॥
भयेउ नरायन बाँवन-करा ।
राज करत राजा बलि छरा ॥
करन पास लीन्हेउ कै छदू ।
बिप्र रूप धरि झिलमिल इंदू ॥
मानत भोग गोपिचँद भोगी ।
लेइ अपसवा जलंधर जोगी ॥
लेइगा कृस्नहि गरुड़ अलोपी ।
कठिन बिछोह, जियहि किमि गोपी ? ॥

सारस जोरी कौन हरि, मारि बियाधा लीन्ह ? ।
झुरि-झुरि पींजर हौं भयी, बिरह-काल मोहि दीन्ह ॥११७॥
आहि जो मारै बिरह कै, आगि उठै तेहि लागि ।
हंस जो रहा सरीर महँ, पाँख जरा, गा भागि ॥११८॥

पाट-महादेइ ! हिये न हारू ।
समुझि जीउ चित चेतु सँभारू ॥
भौंर कँवल सँग होइ मेरावा ।
सँवरि नेह मालति पहँ आवा ॥

गिरहि जो निठुर [illegible], [illegible] आँठ [illegible] ।
तपनि मृगसिरा जे सहैं, ते अद्रा पलुहंत ॥११९॥

चढ़ा असाढ़, गगन घन गाजा ।
साजा बिरह दुंद, दल बाजा ॥
धूम, साम, धौरे घन धाये ।
सेत धजा बग-पाँति दिखाये ॥
खड्ग-बीजु चमके चहुँ ओरा ।
बुंद-बान बरसहिं घनघोरा ॥
ओनयी घटा आइ चहुँ फेरी ।
कन्त ! उबारु, मदन हौं घेरी ॥
दादुर मोर कोकिला पीऊ ।
गिरै बीजु, घट रहै न जीऊ ॥
पुष्य नखत सिर ऊपर आवा ।
हौं बिनु नाह, मँदिर को छावा ? ॥

जिन्ह घर कन्ता ते सुखी, तिन्ह गारौ औ गर्ब ।
कन्त पियारा बाहिरै हम सुख भूला सर्ब ॥१२०॥

सावन बरस मेह अति पानी ।
भरनि परी, हौ विरन झुरानी ॥
लाग पुनरवसु, पीउ न देखा ।
भइ बाउरि, कहँ कत सरेखा ? ॥
सखिन्ह रचा पिउ संग हिंडोला ।
हरियरि भूमि, कुसुभी चोला ॥
हिय हिंडोल अस डोलै मोरा ।
विरह झुलाइ देइ झकझोरा ॥
वाट असूझ अथाह गँभीरी ।
जिउ वाउर, भा फिरै भँभीरी ॥
परबत-समुद अगम विच, बीहड़ वन घन ढाँख ।
किमि कै भेंटौ कत ! तुम, ना मोहि पाँव न पाँख ॥१२१॥
भा भादो दूभर अति भारी ।
कैसे भरौ रैनि अँधियारी ॥
चमक बीजु, धन गरजि तरासा ।
विरह काल होइ जीउ गरासा ॥
वरसै मघा झकोरि झकोरी ।
मोर दुइ नैन चुवै जस ओरी ॥
धनि सूखै भरे भादो माहाँ ।
अबहुँ न आयेन्हि सीचेन्हि नाहाँ ॥

थल जल भरे अपूर सब, धरति-गगन मिलि एक ।
धनि जोबन अवगाह महँ, दे बूडत पिउ ! टेक ॥१२२॥

लाग कुवार, नीर जग घटा ।
अबहूँ आउ कत ! तन लटा ॥
तोहि देखे पिउ ! पलुहै कया ।
उतरा चित्त, बहुरि करु मया ॥

सावन बरस मेह अति पानी ।
भरनि परी, हौं बिरन झुरानी ॥
लाग पुनरबसु, पीउ न देखा ।
भइ बाउरि, कहँ कंत सरेखा ? ॥
सखिन्ह रचा पिउ संग हिंडोला ।
हरियरि भूमि, कुसुंभी चोला ॥
हिय हिंडोल अस डोलै मोरा ।
बिरह झुलाइ देइ झकझोरा ॥
बाट असूझ अथाह गँभीरी ।
जिउ बाउर, भा फिरै भँभीरी ॥

परवत-समुद अगम बिच, बीहड़ बन घन ढाँख ।
किमि कै भेंटौ कंत ! तुम, ना मोहि पाँव न पाँख ॥१२१॥

भा भादों दूभर अति भारी ।
कैसे भरौं रैनि अंधियारी ॥
चमक बीजु, घन गरजि तरासा ।
बिरह काल होइ जीउ गरासा ॥
बरसै मघा झकोरि झकोरी ।
मोर दुइ नैन चुवै जस ओरी ॥
धनि सूखै भरे भादौं माहाँ ।
अबहुँ न आयेन्हि सीचेन्हि नाहाँ ॥

थल जल भरे अपूर सब, धरति-गगन मिलि एक ।
धनि जोबन अवगाह महँ, दे बूड़त पिउ ! टेक ॥१२२॥

लाग कुवार, नीर जग घटा ।
अबहूँ आउ कंत ! तन लटा ॥
तोहि देखे पिउ ! पलुहै कया ।
उतरा चित्त, बहुरि करु मया ॥

चित्रा मित्र मीन, कर आवा।
पपिहा पीउ पुकारत पावा॥
उआ अगस्त हस्ति-घन गाजा।
तुरय पलानि चढ़े रन राजा॥
स्वाति बूँद चातक-मुख परे।
समुद सीप मोती सब भरे॥
सरवर सँवरि हंस चलि आए।
सारस कुरलहिं, खंजन देखाए॥
भा परगास काँस बन फूले।
कंत न फिरे, बिदेसहि भूले॥

बिरह-हस्ति तन सालै, घाय करै चित चूर।
बेगि आइ, पिउ! बाजहु, गाजहु होइ सदूर॥१२३॥

कातिक सरद-चंद उजियारी।
जग सीतल, हौं बिरहै जारी॥
चौदह करा चाँद परगासा।
जनहुँ जरै सब धरति अकासा॥
तन-मन सेज करै अगिदाहू।
सब कहँ चंद, भयेउ मोहिं राहू॥
चहूँ खंड लागै अँधियारा।
जौ घर नाहीं कंत पियारा॥
अबहूँ निठुर! आउ एहि बारा।
परब देवारी होइ संसारा॥
सखि झूमक गावैं अँग मोरी।
हौं झुरावँ, बिछुरी मोरि जोरी॥

सखि मानै तिउहार सब, गाइ देवारी खेलि।
हौं का गावौं कंत बिनु, रही छार सिर मेलि॥१२४॥

अगहन दिवस घटा, निसि बाढ़ी ।
दूभर रैनि, जाइ किमि गाढ़ी ? ॥
काँपै हिया, जनावै सीऊ ।
तौ पै जाइ होइ सँग पीऊ ॥
घर-घर चीर रचे सब काहू ।
मोर रूप-रँग लेइगा नाहू ॥
पलटि न बहुरा, गा जो बिछोई ।
अबहूँ फिरै, फिरै रँग सोई ॥
बजर-अगिनि बिरहिनि-हिय-जारा ।
सुलुगि-सुलुगि दगधै होइ छारा ॥
यह दुख-दगध न जानै कंतू ।
जोबन जनम करै भसमंतू ॥

पिउ सौं कहेउ सँदेसड़ा, हे भौंरा ! हे काग !
सा धनि बिरहै जरि मुयी, तेहि क धुँवा हम लाग ॥१२५

पूस जाड़ थरथर तन काँपा ।
सुरुज जाइ लंका-दिसि चाँपा ॥
बिरह बाढ़, दारुन भा सीऊ ।
कँपि-कँपि मरौं, लेइ हरि जीऊ ॥
चकई निसि बिछुरै, दिन मिला ।
हौं दिन राति बिरह-कोकिला ॥
लागेउ माघ, परै अब पाला ।
बिरहा काल भयेउ जड़-काला ॥
पहल-पहल तन रूई झाँपै ।
हहरि-हहरि अधिकौ हिय काँपै ॥
आइ सूर होइ तपु रे नाहाँ ।
तोहि बिनु जाड न छूटै माहाँ ॥

नैन चुवहिं जस माँहुट नीरू।
तोहि बिनु अंग लाग सर-चीरू॥

टपटप बूँद परहिं जस ओला।
बिरह पवन होइ मारै झोला॥

केहि क सिंगार, को पहिर पटोरा।
गीउ न हार, रही होइ डोरा॥

तुम बिनु काँपै धनि हिया, तन तिनउर भा डोल।
तेहि पर बिरह जराइ कै, चहै उड़ावा झोल॥१२६॥

फागुन पवन झँकोरा बहा।
चौगुन सीउ, जाइ नहिं सहा॥

तन जस पियर पात भा मोरा।
तेहि पर बिरह देइ झकझोरा॥

तरिवर झरहिं, झरहिं बन ढाखा।
भइ ओनंत फूलि-फरि साखा॥

करहिं बनसपति हिये हुलासू।
मो कहँ भा जग दून उदासू॥

फागु करहिं सब चाँचरि जोरी।
मोहि तन लाइ दीन्ह जस होरी॥

जौ पै पीउ जरत अस पावा।
जरत-मरत मोहि रोस न आवा॥

राति-दिवस बस यह जिउ मोरे।
लगौं निहोर कंत अब तोरे॥

यह तन जारौं छार कै, कहौं कि 'पवन ! उड़ाव'।
मकु तेहि मारग उड़ि परै, कंत धरै जहँ पाँव॥१२७॥

चैत बसंता होइ धमारी।
मोहि लेखे संसार उजारी॥
बौरे आम, फरै अब लागे।
अबहुँ आउ घर कंत सभागे!॥
सहस भाव फूलीं बनसपती।
मधुकर घूमहिं सँवरि मालती॥
मो कहँ फूल भये सब काँटे।
दिस्टि परत जस लागहिं चाँटे॥
भा बैसाख तपनि अति लागी।
चोआ चीर चँदन भा आगी॥
सूरुज जरत हिवंचल ताका।
बिरह-बजागि सौंह रथ हाँका॥
जरत बजागिनि करु, पिउ! छाहाँ।
आइ बुझाउ, अँगारन्ह माहाँ॥
तोहि दरसन होइ सीतल नारी।
आइ आगि तें करु फुलवारी॥
लागिउँ जरै, जरै जस भारू।
फिरि फिरि भूँजेसि, तजिउँ न बारू॥
सरवर-हिया घटत निति जाई।
टूक टूक होइ कै बिहराई॥
बिहरत हिया, करहु पिउ! टेका।
दीठि-दवँगरा मेरवहु एका॥

कँवल जो बिगसा मानसर, बिनु जल गयेउ सुखाइ।
अबहुँ बेलि फिरि पलुहै, जो पिउ सींचै आइ॥१२८॥

जेठ जरै जग, चलै लुवारा।
उठहिं बवंडर, परहिं अँगारा॥

बिरह गाजि हनुवँत होइ जागा।
लंका-दाह करै तनु लागा॥
चारिहु पवन झकोरै आगी।
लंका दाहि पलंका लागी॥
दहि भइ साम नदी कालिंदी।
बिरह क आगि कठिन अति मंदी॥
उठै आगि, औ आवै आँधी।
नैन न सूझ, मरौं दुख-बाँधी॥

गिरि, समुद्र, ससि, मेघ, रबि सहि न सकहिं वह आगि।
मुहमद सती सराहिये, जरै जो अस पिउ लागि॥१२९॥

रोइ गँवाए बारह मासा।
सहस-सहस दुख एक-एक साँसा॥
तिल-तिल बरख-बरख परि जाई।
पहर-पहर जुग-जुग न सेराई॥
साँझ भये झुरि-झुरि पथ हेरा।
कौनि सो घरी, करै पिउ फेरा?॥
दहि कोइला भइ कंत-सनेहा।
तोला माँसु रही नहिं देहा॥
रकत न रहा, बिरह तन गरा।
रती-रती होइ नैनन्ह ढरा॥
पाँय लागि जोरै धनि हाथा।
जारा नेह, जुड़ावहु नाथा॥

बरस-दिवस धनि रोइ कै, हारि परी चित झंखि।
मानुस घर-घर बूझि कै, बूझै निसरी पंखि॥१३०॥

जेहि पंखी के नियर होइ कहै बिरह कै बात।
सोई पंखी जाइ जरि, तरिवर होइ निपात॥१३१॥

कुहुकि-कुहुकि, जस कोइल रोई।
रकत-आँसु घुँघुची बन बोई॥
भइ करमुखी, नैन तन राती।
को सेराव? बिरहा-दुख-ताती॥
जहँ-जहँ ठाढ़ि होइ बन-बासी।
तहँ-तहँ होइ घुँघुचि कै रासी॥
बूँद-बूँद महँ जानहुँ जीऊ।
गुँजा गूँजि करै 'पिउ-पीऊ'॥
तेहि दुख भये परास निपाते।
लोहू बूड़ि उठे होइ राते॥
राते बिंब भीजि तेहि लोहू॥
परवर पाक, फाट हिय गोहूँ॥
देखौं जहाँ, होइ सोइ राता।
जहाँ सो रतन, कहै को बाता?॥

ना पावस ओहि देसरा, ना हेवत-बसंत।
ना कोकिल न पपीहरा, जेहि सुनि आवै कंत॥१३२॥

२४ नागमती-संदेश-खंड

फिरि फिरि रोव, कोइ नहिं डोला।
आधी राति बिहंगम बोला॥
तू फिरि-फिरि दाहै सब पाँखी।
केहि दुख रैनि न लावहि आँखी?॥
नागमती कारन कै रोयी।
का सोवै जो कंत-बिछोयी?॥
मन-चित हुँते न उतरै मोरे।
नैन क जल चुकि रहा न मोरे॥

कोइ न जाइ ओहि सिंघलदीपा।
जेहि सेवाति कहँ नैना सीपा॥
जोगी होइ निकसा सो नाहू।
तब हुँत कहा सँदेस न काहू॥
निति पूछौं सब जोगी-जंगम।
कोइ न कहै निज बात, बिहंगम॥

चारिउ चक्र उजार भये, कोइ न सँदेसा टेक।
कहौं बिरह दुख आपन, बैठि सुनहु दँड एक॥१३३॥

तासौं दुख कहिऐ, हो बीरा।
जेहि सुनि कै लागै पर-पीरा॥
को होइ भिउँ अँगवै पर-दाहा?।
को सिंघल पहुँचावै चाहा?॥
जहँवाँ कंत गये होइ जोगी।
हौं किंगरी भइ झूरि बियोगी॥
वै सिंगी पूरी, गुरु भेंटा।
हौं भइ भसम, न आइ समेटा॥
कथा जो कहै आइ ओहि केरी।
पाँवरि होउँ, जनम भरि चेरी॥

हाड भये सब किंगरी, नसैं भयीं सब ताँति।
रोवँ-रोवँ तें धुनि उठै, कहौं बिथा केहि भाँति?॥१३४॥

पदुमावति सौं कहेहु, बिहंगम।
कंत लोभाइ रही करि संगम॥
तू घर घरनि भई पिउ-हरता।
मोहि तन दीन्हेसि जप औ बरता॥
हमहूँ बियाही सँग ओहि पीऊ।
आपुहि पाइ जानु पर जीऊ॥

अबहु मया करु, करु जिउ फेरा।
मोहिं जियाउ कंत देइ मेरा॥
मोहिं भोग सौं काज न बारी।
सौंह दीठि कै चाहनहारी॥
सवति न होसि तू बैरिनि, मोर कंत जेहि हाथ।
आनि मिलाव एक बेर, तोर पाँय मोर माथ॥१३५॥

लेइ सो सँदेस बिहंगम चला।
उठी आगि सगरौं सिंघला॥
बिरह-बजागि बीच को ठेघा?
धूम सो उठा, साम भये मेघा॥
भरि गा गगन, लूक अस छूटे।
होइ सब नखत आइ भुइँ टूटे॥
जहँ-जहँ भूमि जरी, भा रेहू।
बिरह के दाघ भयी जनु खेहू॥
राहु-केतु जरि लंका जरी।
चिनगी उडी, चांद महँ परी॥
जाइ बिहंगम समुद डफारा।
जरे मच्छ, पानी भा खारा॥
दाघे बन बीहड, जल सीपा।
जाइ नियर, भा सिंघलदीपा॥
समुद तीर एक तरिवर, जाइ बैठ तेहि रूख।
जौ लगि कहा सँदेस नहिं, नहिं पियास, नहिं भूख॥१३६॥

रतनसेन बन करत अहेरा।
कीन्ह ओही तरिवर-तर फेरा॥
सीतल बिरिछ समुद के तीरा।
अति उतंग, औ छांह गँभीरा॥

पंखि ! आँखि तेहि मारग, लागी सदा रहाहिं।
कोइ न सँदेसी आवहिं, तेहि क सँदेस कहाहिं ॥१२८॥

पूछसि कहा सँदेस-बियोगू।
जोगी भये न जानसि जोगू ॥
नागमती-दुख विरह अपारा।
धरती-सरग जरै तेहि झारा ॥
राजै कहा, रे सरग-सँदेसी !
उतरि आउ, मोहिं मिलु रे विदेसी।
पाय टेकि तोहि लावौं हियरे।
प्रेम-सँदेस कहहु होइ नियरे ॥
घरी एक राजा गोहरावा।
भा अलोप, पुनि दिस्टि न आवा ॥
पखी नावँ न देखा पाँखा।
राजा रोइ फिरा कै साँखा ॥
तन सिंघल, मन चितउर बसा।
जिउ बिसँभर, नागिन जिमि डसा ॥

जेति नारि हँसि पूछहिं अमिय-वचन जिउ तंत।
रस उतरा, विख चढि रहा, ना ओहि तन न मंत ॥१२९॥

२५ रतनसेन-विदाई-खंड

गन्ध्रबसेन आयेउ सुनि बारा।
कस जिउ भयेउ उदास तुम्हारा ? ॥
रतनसेन विनवा कर जोरी।
अस्तुति-जोग जीभ नहिं मोरी ॥
सहस जीभ जौ होहिं गोसाईं।
कहि न जाइ अस्तुति जहँ ताईं ॥

गवन-चार पदमावति सुना।
उठा धसकि जिउ, औ सिर धुना॥
गह्वर नैन आये भरि आँसू।
छाँडव यह सिंघल कविलासू॥
छाँडिउँ नैहर, चलिउँ बिछोई।
एहि रे दिवस कहँ हौं तब रोयी॥
छाँडिउँ आपनि सखी-सहेली।
दूरि गवन, तजि चलिउँ अकेली॥
नैहर आइ काह सुख देखा?
जनु होइगा सपने कर लेखा॥
मिलहु, सखी! हम तहँवाँ जाहीं।
जहाँ जाइ पुनि आउब नाहीं॥
सात समुद्र पार वह देसा।
कित रे मिलन, कित आव सँदेसा?॥
हम-तुम मिलि एकै सँग खेला।
अंत बिछोह आनि गिउ मेला॥

कंत चलायी,-का करौ, आयसु जाइ न मेटि।
पुनि हम मिलहिं कि ना मिलहिं, लेहु सहेली! भेंटि॥१४२॥

'चलहु-चलहु' भा पिउ कर चालू।
घरी न देख लेत जिउ कालू॥
समदि लोग पुनि चढ़ी बिवाना।
जेहि दिन डरी, सो आइ तुलाना॥
रोवहिं मातु-पिता औ भाई।
कोउ न टेक, जौ कंत चलायी॥
भरीं सखी सब भेंटत फेरा।
अंत कंत सौं भयेउ गुरेरा॥

जानहु चित्र-मूर्ति गहि लायी।
पाटा परी बही तस आयी॥
लछिमी नाँव समुद के बेटी।
तेहि कहँ लच्छि होइ, जेहि भेंटी॥
खेलत अही सहेली सेंती।
पाटा जाइ लाग तेहि रेती॥
कहेंगि सहेली—'देखहु पाटा।
मूरति एक लागि बहि घाटा॥'
लछमी लखन बतीसौ लखी।
कहेसि, 'न मरै, सँभारहु, सखी!॥'
आपु सीस लेइ बैठी कोरै।
पवन डोलावै सखि चहुँ ओरै॥
बहुरि जो समुझि परा तन जीऊ।
माँगेसि पानि बोलि कै पीऊ॥
पानि पियाइ सखी मुख धोई।
पदमिनि जनहुँ कँवल सँग कोई॥
तब लछिमी दुख पूछा ओही।
तिरिया! समुझि बात कहु मोही॥

देखि रूप तोर आगर, लागि रहा चित मोर।
केहि नगरी कै नागरी, काह नाँव धनि! तोर?॥१४५॥

नैन पसारि देख धन चेती।
देखै काह, समुद कै रेती॥
आपन कोइ न देखेसि तहाँ।
पूछेसि, तुम हो को?, हौं कहाँ?॥
कहाँ सो सखी, कँवल सँग कोई।
सो नाही, मोहि कहाँ बिछोयी?॥

हौं जेहि मिलौ नाहि बड़ भागू।
राजपाट औ देवँ सोहागू॥
कहि बुझाइ लेइ मँदिर सिधारी।
भइ जेवनार, न जेवै बारी॥
जेहि रे कंत कर होइ बिछोवा।
कहँ तेहि भूख, कहाँ सुख-सोवा?॥

लछिमी जाइ समुद पहँ, रोइ बात यह चालि।
कहा समुद, वह घट मोरे, आनि मिलावौ कालि॥१४८॥

राजा जाइ तहाँ वहि लागा।
जहाँ न कोइ सँदेसी कागा।
काहि पुकारौं, का पहँ जाऊँ।
गाढे मीत होइ एहि ठाऊँ॥
को यह समुद मथै बल गाढ़ै।
को मथि रतन पदारथ काढ़ै?॥
ए गोसाईं! तू सिरजनहारा।
तुइँ सिरजा यह समुद अपारा॥
जानसि सबै अवस्था मोरी।
जस बिछुरी सारस कै जोरी॥
एक मुये ररि मुवै जो दूजी।
रहै न जाइ, आउ अब पूजी॥
मरौं सो लेइ पदुमावति-नाऊँ।
तुइँ करतार करेसि एक ठाऊँ॥

दुख सौं पीतम भेटि कै, सुख सौं सोव न कोइ।
एही ठावँ मन डरपै, मिलि न बिछोहा होइ॥१४९॥

कहि कै उठा समुद महँ आवा।
काढि कटार गीउ महँ लावा॥

कहा समुद्र, पाप अब घटा।
बाम्हन रूप आइ परगटा॥
कहसि कुँवर! मो सौं सत बाता।
काहे लागि करसि अपघाता?॥
परिहँस मरसि, कि कौनिउ लाजा।
आपन जीउ देसि केहि काजा?॥
को तुम्ह उतर देइ, हो पाँडे।
सो बोलै, जा कर जिउ भाँडे॥
जबूदीप केर हौं राजा।
सो मैं कीन्ह जो करत न छाजा॥
सिंघलदीप राजघर-बारी।
सो मैं जाइ बियाही नारी॥

पदुमावति जग रूपमनि, कहँ लगि कहौं दुहेल।
तेहि समुद्र महँ खोयेउँ हौं का जियौं अकेल?॥१५०॥

हँसा समुद, होइ उठा अँजोरा।
जग बूडा सब कहि-कहि 'मोरा'॥
तोर होइ तोहि परै न बेरा।
बूझि बिचारि, तहूँ केहि केरा॥
तुही एक मै बाउर भेंटा।
जैस राम, दसरथ कर बेटा॥
ओहू नारि कर परा बिछोवा।
एही समुद महँ फिरि-फिरि रोवा॥
तोहि बल नाहि, मूँदु अब आँखी।
लावौं तीर, टेकु बैसाखी॥

बाउर अंध प्रेम कर, सुनत लुबुधि भा बाट।
निमिख एक महँ लेइगा, पदमावति जेहि घाट॥१५१॥

लछिमी चचल नारि परेवा।
जेहि सत होइ, छरै कै सेवा॥
रतनसेन आवै जेहि घाटा।
अगमन होइ बैठि तेहि बाटा॥
औ भइ पदमावति के रूपा।
कीन्हेसि छाहँ, जरै जहँ धूपा॥
देखि सो कँवल भँवर होइ धावा।
साँस लीन्ह, वह बास न पावा॥
का तुइँ नारि, बैठि अस रोई।
फूल सोइ, पै बास न सोई॥
हौं ओहि बास जीउ बलि देऊँ।
और फूल कै बास न लेऊँ॥
लेइ सो आइ पदमावति पासा।
पानि पियावा मरत पियासा॥

पायँ परी धनि पीउ के, नैनन्ह सौं रज मेट।
अचरज भयेउ सबन्ह कहँ, भइ ससि-कवलहि भेट॥१५२॥

आइ मिले सब साथी, हिलि-मिल करहिं अनद।
भई प्रात सुख सपति, गये छूटि दुख-दुद॥१५३॥

दिन दस रहे तहाँ पहुनाई।
पुनि भये बिदा समुद सौं जाई॥
लछिमी पदुमावति सौं भेंटी।
औ तेहि कहा, मोरि तू बेटी॥
दीन्ह समुद्र पान कर बीरा।
भरि कै रतन पदारथ हीरा॥
और पाँच नग दीन्ह बिसेखे।
सरवन सुना, नैन नहिं देखे॥

एक तो अम्रित, दूसर हंसू।
औ तीसर पखी कर वसू॥
चौथ दीन्ह सावक-सादूरू।
पाँचवं परस, जो कंचन-मूरू॥
तरुन तुरंगम आनि चढ़ाये।
जल-मानुख अगुवा सँग लाये॥

भेंट-घाँट कै समदि तब फिरे नाइ कै माथ।
जल-मानुख तबही फिरे, जब आये जगनाथ॥१५४॥

२८. चित्तौर-आगमन-खंड

चितउर आइ नियर भा राजा।
बहुरा जीति, इंद्र अस गाजा॥
नागमती कहँ अगम जनावा।
गयी तपनि, बरखा जनु आवा॥
जसि भुइँ दहि असाढ़ पलुहाई।
परहि बूँद औ सोंधि बसाई॥
ओहि भाँति पलुही सुख बारी।
उठी करिल नइ कोंप सँवारी॥
हुलसि गंग जिमि बाढ़हि लेई।
जोबन लाग हिलोरें देई॥

पूछहिं सखी-सहेलरी, हिरदय देखि अनंद।
आजु बदन तोर निरमल, अहै उवा जस चंद॥१५५॥

बाजत-गाजत राजा आवा।
नगर चहूँ दिसि बाज बधावा॥
बिहँसि आइ माता सौं मिला।
राम जाइ भेंटी कौसिला॥

भयी उहाँ चहुँ खंड बखानी।
रतनसेन पदुमावति आनी॥
बैठ सिंघासन, लोग जोहारा।
निघनी निरगुन दरब वोहारा॥
अगनित दान निछावरि कीन्हा।
मंगतन्ह दान बहुत कै दीन्हा॥
सब दिन राजा दान दियावा।
भइ निसि, नागमती पहँ आवा॥
नागमती मुख फेर बईठी।
सौंह न करै पुरुख सौं दीठी॥
ग्रीखम जरत छाँडि जो जाई।
सो मुख कौन देखावै आई?॥
तू जोगी! होइगा बैरागी।
हौं जरि छार भइउँ तोहि लागी॥

काह हँसौ तुम मो सौं, कियेउ ओर सौं नेह।
तुम्ह मुख चमकै बीजुरी, मोहि मुख बरसै मेह॥१५६॥

कंठ लाइ कै नारि मनायी।
जरी जो बेलि, सींचि पलुहायी॥
जो भा मेर, भयेउ रँग राता।
नागमती हँसि पूछी बाता॥
कहहु, कंत! ओहि देस लोभाने।
कस धन मिली, भोग कस माने?॥
जो पदुमावति सुठि होइ लोनी।
मोरे रूप कि सरवरि होनी?॥
जहाँ राधिका गोपिन्ह माँहा।
चंद्रावलि सरि पूज न छाँहा॥

भँवर-पुरुख अस रहै न राखा।
तजै दाख, महुआ-रस चाखा॥
तजि नागेसर-फूल सोहावा।
कवँल बिसैंधहिं सौं मन लावा॥

काह कहौं हौं तो सौं, कछु न हिये तोहि भाव।
इहाँ बात मुख मो सौं, उहाँ जीउ ओहि ठाँव॥१५७॥

सग सहेली नागमति, आपनि बारी माँह।
फूल चुनहिं, फल तूरहिं, रहस-कोड सुख-छाँह॥१५८॥

[८]

२१ राघवचेतन देस-निकाला खड

राघव-चेतन चेतन महा।
आऊसरि राजा पहँ रहा॥
होइ अचेत घरी जो आई।
चेतन कै सब चेत भुलाई॥
भा दिन एक अमावस सोई।
राजै कहा, 'दुइज कब होई ?'॥
राघव के मुख निकसा 'आजू'।
पँडितन्ह कहा, 'कालिह, महाराजू'॥
राजै दुवौ दिसा फिरि देखा।
इन महँ को बाउर, को सरेखा॥
भुजा टेकि पडित तब बोला।
'छाँडहिं देस, बचन जौ डोला'॥
तेहि ऊपर राघव बर खाँचा।
'दुइज आजु, तौ पडित साँचा'॥

राघव पूजि जाखिनी, दुइज देखायेसि साँझ।
बेद-पथ जे नहिं चलहिं, ते भूलहिं बन-माँझ ॥१५९॥

पँडितन्ह कहा, परा नहिं धोखा।
कौन अगस्त, समुद जेइ सोखा ? ॥
सो दिन गयेउ, साँझ भइ दूजी
देखी दुइज, घरी वह पूजी ॥
पँडितन्ह राजहि दीन्ह असीसा।
अब यह कस कचन औ सीसा ॥
जौ यह दुइज कालिह कै होती।
आजु तेज देखत ससि-जोती ॥
राघव दिस्टिबघ कल खेला।
सभा माँझ चेटक अस मेला ॥
दुइज अमावस कहँ जो देखावै।
एक दिन राहु चाँद पै लावै ॥

राज-बार अस गुनी न चाहिय, जेहि टोना कै खोज।
एहि चेटक औ विद्या, छला सो राजा भोज ॥१६०॥

राघव-बैन जो कचन-रेखा।
कसे बानि पीतर अस देखा ॥
अग्या भयी, रिसान नरेसू।
मारहु नाहिं, निसारहु देसू ॥
एहि रे बात पदुमावति सुनी।
देस निकारा राघव गुनी ॥
ग्यान-दिस्टि धनि अगम बिचारा।
भल न कीन्ह, अस गुनी निसारा ॥
रानी राघव बेगि हँकारा।
सूर-गहन भा, लेहु उतारा ॥

बाम्हन जहाँ दच्छिना पावा।
सरग जाइ, जो होइ बोलावा॥
पदुमावति जो झरोखे आयी।
निहकलक ससि दीन्ह देखायी॥
ततखन राघव दीन्ह असीसा।
भयेउ चकोर, चंद मुख दीसा॥
कँगन एक कर काढि पँवारा।
काढत हार टुटा, औ मारा॥

परा आइ भुँइ कगन, जगत भयेउ उजियार।
राघव बिजुरी मारा, बिसँभर, किछु न सँभार॥१६१॥

पदुमावति हँसि दीन्ह झरोखा।
जौं यह गुनी मरै, मोहि दोखा॥
भयेउ चेत, चेतन चित चेता।
नैन झरोखे, जीउ सँकेता॥
हो रे! ठगा एहि चिउतर माहाँ।
का सौ कहौ, जाउँ केहि पाहाँ?॥
कित धौराहर आइ झरोखे?।
लेइ गइ जीउ दच्छिना धोखे॥
सरग ऊइ ससि करइ अँजोरी।
तेहि ते अधिक, देउँ कह जोरी?॥
तहाँ ससिहि जौ हुति वह जोती।
दिन होइ राति, रैनि कस होती?॥
तेइ हँकारि मोहि कगन दीन्हा।
दिस्टि जो परी, जीउ हरि लीन्हा॥

कित करमुँहे नैन भये, जीउ हरा जेहि वाट।
सरवर नीर-बिछोह जिमि, दरकि-दरकि हिय फाट॥१६२॥

सखिन्ह कहा, चेतसि बिसँभारा ।
हिये चेतु, जेहि जासि न मारा ॥
वह पदुमावति आहि अनूपा ।
बरनि न जाइ काहु के रूपा ॥
तुम अस बहुत बिमोहित भये ।
धुनि-धुनि सीस जीउ देइ गये ॥
भयेउ चेत, चित चेतन चेता ।
बहुरि न आइ सहौं दुख एता ॥
रोवत आइ परे हम जहाँ ।
रोवत चले, कौन सुख तहाँ ? ॥
जहाँ रहै संसौ जिउ केरा ।
कौन रहनि ? चलि, चलौ सबेरा ॥

कवँल बखानौ जाइ तहँ, जहँ अलि अलाउदीन ।
सुनि कै चढ़ै भानु होइ, रतन जो होइ मलीन ॥१६३॥

२० राघवचेतन-दिल्ली-गमन खंड

राघव चेतन कीन्ह पयाना ।
ढिल्ली नगर जाइ नियराना ॥
आइ साह के बार पहूँचा ।
देखा राज जगत पर ऊँचा ॥
जहँ लगि तपै जगत पर भानू ।
तहँ लगि राज करै सुलतानू ॥
चहूँ खंड के राजा आवहिं ।
ठाढ़ झुराहिं, जोहार न पावहिं ॥
मन तेवान कै राघव झूरा ।
नाहिं उबार, जीउ-डर पूरा ॥

पातसाहि सब जाना बूझा ।
सरग-पतार हिये महँ सूझा ॥
पथी परदेसी जत आवहिं ।
सब कै चाह दूत पहुँचावहिं ॥
एहू बात तहँ पहुँची, सदा-छत्र-सुख-छाँह ।
बाम्हन एक बार है, कँगन जराऊ बाँह ॥१६८॥

मया साहि मन सुनत भिखारी ।
परदेसी को ? पूछु हँकारी ॥
राघव-चेतन हुत जो निरासा ।
ततखन बेगि बुलावा पासा ॥
सीस नाइ कै दीन्ह असीसा ।
चमकत नग कगन कर दीसा ॥
अग्या भइ पुनि राघव पाहाँ ।
तू मगन, कगन का बाहाँ ॥
राघव फेरि सीस भुइँ धरा ।
जुग-जुग राज भानु कै करा ॥
पदुमिनि सिंहलदीप कै रानी ।
रतनसेन चितउरगढ आनी ॥
कवँल न सरि पूजै तेहि बासा ।
रूप न पूजै चद अकासा ॥
सोइ रानी ससार-मनि दछिना कगन दीन्ह ।
अछरी-रूप देखाइ कै जीउ झरोखे लीन्ह ॥१६९॥

सुनि कै उतर साहि मन हँसा ।
जानहु बीजु चमकि परगसा ॥
काँच जोग जेहि कचन पावा ।
मंगन ताहि सुमेरु चढावा ॥

नाँव भिखारि जीभ मुख बाँची ।
अबहुँ सँभारि बात कहु साँची ॥
कहँ अस नारि जगत उपराहीं ।
जेहि के सरि सूरुज ससि नाहीं ॥
जो पदुमिनि, सो मंदिर मोरे ।
सातों दीप जहाँ कर जोरे ॥
सात दीप महँ चुनि-चुनि आनी ।
सो मोरे सोरह सै रानी ॥
जौ उन्ह कै देखसि एक दासी ।
देखि लोन होइ लोन-बिलासी ॥

चहूँ खंड हौ चक्कवै, जस रवि तपै अकास ।
जौ पदमिनि तौ मोरे, अछरी तौ कबिलास ॥१६६॥

तुम बड राज छत्रपति भारी ।
अनु, बाम्हन मै अहौं भिखारी ॥
चारिउ खंड भीख कहँ बाजा ।
उदय-अस्त तुम्ह ऐस न राजा ॥
सातौं दीप देखि हौं आवा ।
तब राघव-चेतन कहवावा ॥
वह पदुमिनि चितउर जो आनी ।
काया कुंदन द्वादस बानी ॥
कुंदन-कनक ताहि नहिं बासा ।
वह सुगंध जस कँवल बिगासा ॥
ओहि छुइ पवन बिरिछ जेहि लागा ।
सोइ मलयगिरि भयेउ सभागा ॥
सबै चितेर चित्र कै हारे ।
ओहिक रूप कोइ लिखै न पारे ॥

सुरुज-किरिन जसि निरमल, तेहि ते अधिक सरीर।
सौंह दिस्टि नहिं जाइ करि, नैनन्ह आवै नीर ॥१६७॥

जो राघव धनि बरनि सुनायी।
सुना साह, मुरछा-गति आयी॥
जनु मूरति वह परगट भयी।
दरस दिखाइ माहिं छपि गयी॥
मन होइ भँवर, भयेउ वैरागा।
कँवल छाँडि चित ओर न लागा॥
तब कह अलाउदी जग-सूरू।
लेउँ नारि चितउर कै चूरू॥
पान दीन्ह राघव पहिरावा।
दस गज हस्ति घोड सो पावा॥
सरजा वीर पुरुख बरियारू।
ताजन नाग, सिंघ असवारू॥
दीन्ह पत्र लिखि, वेगि चलावा।
चितउर-गढ राजा पहँ आवा॥

राजै पत्रि बँचावा, लिखी जो करा अनेग।
सिंघल कै जो पदुमिनि, पठै देहु तेहि वेग ॥१६८॥

२१. पातिसाहि-चढाई खंड

सुनि अस लिखा उठा जरि राजा।
जानौ दैउ तडपि घन गाजा॥
का मोहि सिंघ देखावसि आई?
कहौं तौ सारदूल धरि खाई॥
भलेहि साहि पुहुमी-पति भारी।
माँग न कोइ पुरुख कै नारी॥

को मोहि तें अस सूर अगारा ।
चढ़ै सरग, खसि परै पतारा ॥
हौ रनथँभउर-नाह हमीरू ।
कलपि माथ जेइ दीन्ह सरीरू ॥
हौं सो रतनसेन सक-बंधी ।
राहु बेधि जीता सैरंधी ॥
बिक्रम सरिस कीन्ह जेइ साका ।
सिंघलदीप लीन्ह, जो ताका ॥
जौ अस लिखा, भयेउँ नहिं ओछा ।
जियत सिंघ कै गह को मोछा ? ॥

दरब लेइ तौ मानौ, सेव करौ गहि पाउ ।
चाहै जौ सो पदुमिनी, सिंघलदीपहि जाउ ॥१६६॥

बोलु न, राजा ! आपु जनाई ।
लीन्ह देवगिरि और छिताई ॥
जेहि कै सेव करै संसारा ।
सिंघलदीप लेत कित बारा ? ॥
जिनि जानसि, यह गढ़ तोहि पाही ।
ता कर सबै, तोर किछु नाही ॥
जेहि दिन आइ गढ़ी कहँ छेंकिहि ।
सरवस लेइ, हाथ को टेकिहि ? ॥
तुरुक ! जाइ कहु, मरै न धाई ।
होइहि इसकंदर कै नाईं ॥
सुनि अमरित कदली-बन धावा ।
हाथ न चढ़ा, रहा पछितावा ॥
औ तेहि दीप पतँग होइ परा ।
अगिनि-पहार पाँव देइ जरा ॥

महूँ समुझि अस अगमन, सजि राखा गढ साजु।
कालिह होइ जेहि आवन, सो चलि आवै आजु ॥१७०॥

सरजा पलटि साह पहँ आवा।
देव । न मानै, बहुत मनावा॥
सुनि कै रिसि राता सुलतानू।
जैसे तपै जेठ कर भानू॥
सहसौ करा रोख अस भरा।
जेहि दिसि देखै, तेइ दिसि जरा॥
दुद घाव भा, इद्र सकाना।
डोला मेरु, सेस अकुलाना॥
धरती डोल, कमठ खरभरा।
मथन-अरभ समुद महँ परा॥
साहि बजाइ चढा, जग जाना।
तीस कोस भा पहिल पयाना॥
बरन-बरन औ पाँति-हि-पाँती।
चली सो सेना भाँति-हि-भाँती॥

सात-सात जोजन कर एक दिन होइ पयान।
अगिलहि जहाँ पयान होइ, पछिलहि तहाँ मिलान ॥१७१॥

डोले गढ, गढपति सब काँपे।
जीउ न पेट, हाथ हिय चाँपे॥
काँपा रनथँभउर, गढ डोला।
नरवर गयेउ झुराइ, न बोला॥
दूतन्ह आइ कहा, जहँ राजा।
चढा तुरुक आवै दर साजा॥
सुनि राजा दौरायी पाती।
हिंदू-नावँ जहाँ लगि जाती॥

चितउर हिंदुन कर अस्थाना।
सत्रु तुरुक हठि कीन्ह पयाना॥
आव समुद्र, रहै नहिं बाँधा।
मै होइ मेड भार सिर काँधा॥
पुरवहु साथ, तुम्हारि बडाई।
नाहिं त सत को पार छँडाई?॥
जौ लहि मेड़,- रहै सुख साखा।
टूटे, वारि जाइ नहिं राखा॥

सती जौ जिउ महँ सत धरै, जरै न छाँडै साथ।
जहँ वीरा तहँ चून है, पान सोपारी काथ॥१७२॥

करत जो राइ साह कै सेवा।
तिन्ह कहँ आइ सुनाव परेवा॥
सब होइ एक-मते जो सिधारे।
पातिसाहि कहँ आइ जोहारे॥
है चितउर हिंदुन्ह कै माता।
गाढ परे तजि जाइ न नाता॥
कृपा करहु, चित बाँधहु धीरा।
नाहित हमहिं देहु हँसि बीरा॥
पुनि हम जाइ मरहिं ओहि ठाऊँ।
मेटि न जाइ लाज सौं नाऊँ॥
रतनसेन चितउर महँ साजा।
आइ बजाइ बैठ सब राजा॥
सजि संग्राम बाँव सत साका।
छाँडा जियन, मरन सब ताका॥

गगन-धरति जेहि टेका, तेहि का गरू पहार?।
जौ लहि जिउ काया महँ, परै सो अँगवै भार॥१७३॥

एहि विधि होत पयान सो आवा।
आइ साह चितउर नियरावा॥
राजै कहा, करहु जो करना।
भयेउ असूझ, सूझ अब मरना॥
जहँ लगि राज, साज सब होऊ।
ततखन भयेउ 'सँजोउ-सँजोऊ'॥
बाजे तबल अकून जुझाऊ।
चढ़े कोप सब राजा-राऊ॥
करहिं तुखार पवन सौं रीसा।
कंध ऊँच, असवार न दीसा॥
का बरनौं अस ऊँच तुखारा।
दुइ पौरी पहुँचै असवारा॥
चढ़हिं कुँवर, मन करहिं उछाहू।
आगे घाल गनहिं नहिं काहू॥

सेंदुर सीस चढ़ाये, चंदन-खेवरे देह।
सो तन कहा लुकाइय, अंत होइ जो खेह॥१७४॥

गज मैमंत पिखरे रज-बारा।
दीसहिं जनहुँ मेघ अति कारा॥
परवत उलटि भूमि महँ मारहि।
परै जो भीर, पत्र अस झारहिं॥
माथे मुकुट, छत्र सिर साजा।
चढ़ा बजाइ इंद्र अस राजा॥
आगे रथ-सेना सब ठाढ़ी।
पाछे धुजा मरन कै काढ़ी॥
जानहु चाँद नखत लेइ चढ़ा।
सूर कै कटक रैनि-मसि मढ़ा॥

जौ लगि सूर जाइ देखरावा।
निकसि चाँद घर बाहर आवा॥
गगन नखत जस गने न जाही।
निकसि आये तस धरती माहीं॥

देखि अनी राजा कै जग होइ गयेउ असूझ।
दहुँ कस होवै चाहै चाँद-सूर के जूझ॥१७५॥

१२. राजा-पातिसाहि जुद्ध खंड

इहाँ राज अस सेन बनायी।
उहाँ साह कै भयी अवाई॥
अगिले दौरे आगे आये।
पछिले पाछ कोस दस छाये॥
साहि आइ चितउर-गढ बाजा।
हस्ती सहस बीस सँग साजा॥
ओनइ आये दूनौ दल गाजे।
हिंदू-तुरक दुवौ रन बाजे॥
दुवौ समुद दधि-उदधि अपारा।
दूनौ मेरु-खिखिंद पहारा॥
कोपि जुझार दुवौ दिसि मेले।
औ हस्ती हस्ती सहुँ पेले॥
हस्ती सहुँ हस्ती हठि गाजहिं।
जनु परबत परबत सौं बाजहिं॥
गरू गयंद न टारे टरहीं।
टूटहिं दाँत, माथ गिरि परहीं॥
परबत आइ जो परहिं तराहीं।
दर महँ चाँपि खेह मिलि जाहीं॥

गगन रुहिर जस बरसै, धरती बहै मिलाइ।
सिर-धर टूटि बिलाहि तस, पानी पक बिलाइ ॥१७६॥

बाजहिं खडग, उठै दर आगी।
भुइँ जरि चहै गरग कहँ लागी ॥
चमकहिं बीजु, होइ उजियारा।
जेहि सिर परै, होइ दुइ फारा ॥
मेघ जो हस्ति हस्ति रहुँ गाजहिं।
बीजु जो खडग खडग सौं बाजहिं ॥
झपटहि कोपि, परहिं तरवारी।
औ गोला ओला जस भारी ॥
जूझे बीर, कहौं कह ताई?।
लेइ अछरी कबिलास सिधाई ॥
भा सग्राम, न भा अस काऊ।
लोहे दुहुँ दिसि भये अघाऊ ॥
सीस कध कटि-कटि भुइं परे।
रुहिर सलिल होइ सायर भरे ॥

काहू साथ न तन गा, सकति मुये सब पोखि।
ओछ-पूर तेहि जानब, जो थिर आवत जोखि ॥१७७॥

चाँद न टरै, सूर सौं कोपा।
दूसर छत्र सौंह कै रोपा ॥
सुना साह, अस भयेउ समूहा।
पेले सब हस्तिन्ह कै जूहा ॥
आजु चाँद। तोर करौं निपातू।
रहै न जग महँ दूसर छातू ॥
सहस करा होइ किरिन पसारा।
छेंका चाँद, जहाँ लगि तारा ॥

कटक असूझ अलाउदि-साही।
आवन कोइ न- सँभारै ताही॥
उदधि-समुद जस लहरैं देखी।
नयन देख, मुख जाइ न लेखी॥
लाख जाहिं, आवहिं दुइ लाखा।
फरै, झरै, उपनै नव साखा॥

लाग कटक चारिहु दिसि, गढ़हि परा अगिदाहु।
सुरुज गहन भा चाहै, चाँदहि भा जस राहु॥१७८॥

चारि पहर दिन जूझ भा, गढ़ न टूट तस बाँक।
गरुअ होत पै आवै दिन-दिन नाक-हि-नाक॥१७९॥

आठ बरिस गढ छेंका रहा।
धनि-सुलतान, कि राजा महा॥
आइ साइ अँवराव जो लाये।
फरे, झरे, पै गढ नहिं पाये॥
जौ तोरौ तौ जौहर होई।
पदुमिनि हाथ चढै नहिं सोई॥
एहि बिधि ढील दीन्ह, तब ताईं।
दिल्ली तैं अरदासैं आईं॥
पछिउँ हरेव दीन्ह जो पीठी।
सो अब चढा सौंह कै दीठी॥
जिन्ह भुइँ माथ, गगन तेइ लागा।
थाने उठे, आव सब भागा॥
उहाँ साह चितउरगढ छावा।
इहाँ देस अब होइ परावा॥

जिन्ह-जिन्ह पंथ न तृन परत, बाढे बेर बबूर।
निसि अँधियारी जाइ तब, बेगि उठै जौ सूर॥१८०॥

३३ राजा-पातिसाहि-मेल खंड

सुना साहि अरदासैं पढी।
चिंता आन आनि चित चढी॥
तौ अगमन मन चीतै कोई।
जो आपन-चीता किछु होई॥
मन झूठा, जिउ हाथ पराये।
चिंता एक हिये दुइ ठायें॥
गढ सौं अरुझि, जाइ तब छूटै।
होइ मेराव, कि सो गढ टूटै॥
पाहन कर रिपु, पाहन हीरा।
वेधौं रतन पान देइ बीरा॥
सरजा सेंति कहा यह भेऊ।
पलटि जाहु, अब मानहि सेऊ॥
कहु, तोहि सौं पदुमिनि नहिं लेऊँ।
चूरा कीन्ह छाँडि गढ देऊँ॥

आपन देस खाहु सब, औ चंदेरी लेहु।
समुद जो समदन कीन्ह तोहि, ते पांचौ नग देहु॥१८१॥

सरजै सपथ कीन्ह छल, बैनहि मीठै-मीठ।
राजा कर मन माना, माना तुरत बसीठ॥१८२॥

३४ चितौरगढ-बरनन खंड

जेवाँ साह जो भयेउ बिहाना।
गढ देखै गवना सुलताना॥

कँवल, सहाय सूर सँग लीन्हा।
राघवचेतन आगे कीन्हा॥
ततखन आइ बिवाँन पहूँचा।
मन ते अधिक, गगन तें ऊँचा॥
उघरी पँवरि, चला सुलतानू।
जानहु चला गगन कहँ भानू॥
पँवरी सात, सात खंड बाँके।
सातौ खंड, गाढ दुइ नाके॥
आजु पँवरि-मुख भा निरमरा।
जौ सुलतान आइ पग धरा॥
पातिसाहि चढ़ि चितउर देखा।
सब ससार पाँव तर लेखा॥

देखा साह गगन-गढ, इन्द्रलोक कर साज।
कहिय राज फुर ताकर; सरग करै अस राज॥१८३॥

देखत साह कीन्ह तहँ फेरा।
जहँ मंदिर पदुमावति केरा॥
आस-पास सरवर चहुँ पासा।
माँझ मँदिर, जनु लाग अकासा॥
परगट कह, राजा सौं बाता।
गुपुत प्रेम पदुमावति-राता॥
गोरा-बादल राजा पाहीं।
रावत दुवौ, दुवौ जनु बाहीं॥
आइ स्रवन राजा के लागे।
मूसि न जाहिं पुरुख जो जागे॥
बाचा परखि तुरुक हम बूझा।
परगट मेर, गुपुत छल सूझा॥

तुम नहिं करो तुरुक सौ मेरू।
छल पै करहिं अंत के फेरू॥
यह सो कृस्न बलिराज जस, कीन्ह चहै छर-बाँध।
हम्ह बिचार अस आवै, मेर न दीजिय काँध॥१८४॥

सुनि राजहि यह बात न भायी।
जहाँ मेर तहँ नहिं अधमाई॥
मदहि भल जो करै, भल सोई।
अंतहि भला भले कर होई॥
मत्रु जो बिख देइ चाहै मारा।
दीजिय लोन जानि बिख-हारा॥
कौरव बिख जो पडवन्ह दीन्हा।
अंतहि दाँव पडवन्ह लीन्हा॥
राजा के सोरह 'सै दासी।
तिन्ह महँ चुनि काढी चौरासी॥
बरन-बरन सारी पहिरायी।
निकसि मँदिर तें सेवा आयी॥
जानहुँ इंद्रलोक तें काढी।
पाँति-हि-पाँति भयी सब ठाढी॥
साह पूछ राघव पहँ, ए सब अछरी आहिं।
तुम जो पदुमिनि बरनी, कहु सो कौन इन माहिं॥१८५॥

दीरघ आउ, भूमिपति भारी।
इन महँ नाहिं पदुमिनी नारी॥
यह फुलवारि सो ओहि कै दासी।
कहँ केतकी, भँवर जहँ बासी॥
ए सब तरई, सेव कराही।
कहँ वह ससि, देखत छपि जाही॥

भइ जेवनार, फिरा खँडवानी।
फिरा अरगजा कुहँकुहँ-पानी॥
नग अमोल जो थारहि भरे।
राजै सेव आनि कै धरे॥
सुनि विनती विहँसा सुलतानू।
सहसौ करा दिपा जस भानू॥
हँसि-हँसि बोलै, टेकै काँधा।
प्रीति भुलाइ चहै छल बाँधा॥
माया-बोल बहुत कै साह पान हँसि दीन्ह।
पहिले रतन हाथ कै चहै पदारथ लीन्ह॥१८६॥

माया-मोह-बिवस भा राजा।
साहि खेल सतरँज कर साजा॥
राजा! है जौ लगि सिर घामू।
हम तुम घरिक करहिं बिसरामू॥
दरपन साह भीति तहँ लावा।
देखौं जबहि झरोखे आवा॥
खेलहिं दुओ साहि औ राजा।
साहि के रुख दरपन रह साजा॥
सूर देख जो तरई-दासी।
जहँ ससि तहाँ जाइ परगासी॥
सुना जो हम ढिल्ली-सुलतानू।
देखा आजु, तपै जस भानू॥
ऊँच छत्र जा कर जग माहाँ।
जग जो छाहँ, सब ओहि कै छाहाँ॥
पातिसाहि दिल्ली कर कित चितउर महँ आव।
देखि लेहु पदुमावति जेहि न रहै पछिताव॥१८७॥

बिगसि जो कुमुद कहे ससि-ठाऊँ ।
बिगसा कँवल सुने रबि-नाऊँ ॥
भइ निसि, ससि धौराहर चढी ।
सोरह कला जैस बिधि गढी ॥
बिहँसि झरोखे आइ, सरेखी ।
निरखि साह दरपन महँ देखी ॥
होतहि दरस परस भा लोना ।
धरती-सरग भयेउ सब सोना ॥
रुख माँगत रुख ता सहुँ भयेऊ ।
भा सह मात, खेल मिटि गयेऊ ॥
राजा भेद न जानै झाँपा ।
भा बिसँभार, पवन विनु काँपा ॥
राघव कहा कि, लागि सोपारी ।
लेइ पौढावहि सेज सँवारी ॥

रैनि बीति गइ, भोर भा, उठा सूर तब जागि ।
जौ देखै ससि नाही, रही करा चित लागि ॥१८८॥

'दिनहि नयन लायेहु तुम, रैनि भयेहु नहिं जाग ।
कस निचिंत अस सोयेहु, काह बिलँब अस लाग ?' ॥१८९॥

देखि एक कौतुक हौ रहा ।
रहा अँतरपट, पै नहिं अहा ॥
सरवर देख एक मै सोई ।
रहा पानि, पै पान न होई ॥
सरग आइ धरती महँ छावा ।
रहा धरति, पै धरत न आवा ॥
तिन्ह महँ पुनि एक मंदिर ऊँचा ।
करन्ह अहा, पै कर न पहूँचा ॥

तेहि मडप मूरति मैं देखी।
बिनु तन, बिनु जिउ जाइ बिसेखी॥
पूरन चंद होइ जनु तपी।
पारस रूप दरस देइ छपी॥

राघव! हेरत जिउ गयेउ, कित आछन जो असाध?
यह तन राख पाँख कै सकै न केहि अपराध? ॥१६०॥

राघव सुनत सीस भुइँ धरा।
जुग-जुग राज भानु कै करा॥
उहै कला, वह रूप बिसेखी।
निहचै तुम्ह पदुमावति देखी॥
मीत भै माँगा वेगि बिवानू।
चला सूर, सँवरा अस्थानू॥
चाँद-घरहि जो सूरुज आवा।
होइ सो अलोप, अमावस पावा॥
पूछहि नखत मलीन सो मोती।
सोलह कला न एको जोती॥
चाँद क गहन अगाह जनावा।
राज भूल गहि साह चलावा॥
एहि जग बहुत नदी-जल जूड़ा।
कोउ पार भा, कोऊ बूड़ा॥
कोउ अंध भा, आगु न देखा।
कोउ भयेउ डिठियार सरेखा॥
राजा कहँ वियाध भइ माया।
तजि कबिलास धरा भुइँ पाया॥

चारा मेलि धरा जस माछू।
जल हुँत निकसि मुवै कित काछू ?॥

राजहि धरा आनि कै, तन पहिरावा लोह।
ऐस लोह सो पहिरै, चीत सामि कै दोह॥१६१॥

पाँयन्ह गाढी बेडी परी।
साँकर गीउ, हाथ हथकरी॥

औ धरि बाँधि मँजूसा मेला।
ऐस सत्रु जिनि होइ दुहेला॥

सुनि चितउर महँ परा बखाना।
देस-देस चारिउ दिसि जाना॥

साहि लीन्ह गहि, कीन्ह पयाना।
जो जहँ सत्रु, सो तहाँ बिलाना॥

उवा सूर, भइ सामुहँ करा।
पाला फूट, पानि होइ ढरा॥

दुदुहि डाँड दीन्ह, जहँ ताईं।
आइ दडवत कीन्ह सबाईं॥

दुंद-डाँड सब सरगहि गयी।
भूमि जो डोली, अहथिर भयी॥

बादसाह ढिल्ली महँ, आइ बैठ सुख-पाट।
जेइ-जेहि सीस उठावा, धरती धरा लिलाट॥१६२॥

१५ पदुमावती-नागमती-विलाप खंड

पदुमावति विनु कन्त दुहेली।
विनु जल कँवल सूखि जस वेली॥
गाढ़ि प्रीति पिय मो सौं लाये।
दिल्ली कंत निचिंत होइ छाये॥
सो दिल्ली अस निवहुर देसू।
कोइ न वहुरा, कहै सँदेसू॥
जो गवनै, सो तहाँ कर होई।
जो आवै, किछु जान न सोई॥
अगम पंथ, पिउ तहाँ सिधावा।
जो रे गयेउ, सो वहुरि न आवा॥
कुवाँ धार जल जैस विछोवा।
डोल भरे नैनन्ह धनि रोवा॥
नीर-गँभीर कहाँ हो पिया!
तुम्ह विनु फाटै सरवर-हिया॥
गयेहु हेराइ, परेहु केहि हाथा?।
चलत सरोवर लीन्ह न साथा॥
चरत जो पंखि केलि कै नीरा।
नीर घटे कोइ आव न तीरा॥
कँवल सूख, पँखुरी वेहरानी।
गलि-गलि कै मिलि छार हेरानी॥
विरह-रैनि कंचन-तन लावा।
चून-चून कै खेह मेरावा॥

३६. पदुमावती-गोरा-बादल-संवाद खंड

सखिन्ह बुझायी दगधं अपारा।
गइ गोरा-बादल के बारा॥
उलटि बहा गंगा कर पानी।
सेवक-बार आइ जो रानी॥
तुम गोरा-बादल! खँभ दोऊ।
जस रन पारथ और न कोऊ॥
दुख-बिरिखा अब रहै न राखा।
मूल पतार, सरग भइ साखा॥
छाया रही सकल महि पूरी।
बिरह-बेलि भइ बाढि खजूरी॥
पुहुमि पूरि, सायर दुख पाटा।
कौडी केर बिहरि हिय फाटा।
पिय जेहि बँदि जोगिनि होइ धावौं।
हौं बँदि लेउँ, पियहि मुकरावौं॥

सूरुज गहन गरासा, कँवल न बैठै पाट।
महूँ पथ तेहि गवनब, कत गये जेहि बाट॥१९५॥

गोरा बादल दोउ पसीजे।
रोवत रुहिर बूडि तन भीजे॥
हम राजा सौं इहै कोहाँने।
तुम न मिलो, धरिहैं तुरकाने॥
जो मति सुनि हम गये कोहाँई।
सो नियान हम्हँ माथे आयी॥
जौ लगि जिउ, नहि भागहि दोऊ।
स्वामि जियत कत जोगिनि होऊ?॥

लीन्ह पान बादल औ गोरा ।
'केहि लेइ देउँ उपमा तुम्ह जोरा ? ॥
तुम सावँत, नहिं सरवरि कोऊ ।
तुम अंगद हनुवंत सम दोऊ ॥
जस हनुवंत राघव-बँदि छोरी ।
तस तुम छोरि मेरावहु जोरी ॥
जैसे जरत लखा-घर, साहस कीन्हा भीउँ ।
जरत खंभ तस काढहु, कै पुरुषारथ जीउ ॥१६६॥

३७ गोरा-बादल-युद्ध-यात्रा खंड

बादल केरि जसोवै माया ।
आइ गहेसि बादल कर पाया ॥
बादल राय ! मोर तुइ बारा ।
का जानसि, कस होइ जुझारा ॥
बरिसहिं सेल बान घन-घोरा ।
धीरज धीर न बाँधहि थोरा ॥
मातु ! न जानसि बालक आदी ।
हौं बादला सिंघ रन-बादी ॥
सुनि गज-जूह अधिक जिउ तपा ।
सिंघ कै जाति रहै किमि छपा ? ॥
तौ लगि गाज, न गाज सिंघेला ।
सौंह साह सौं जुरौं अकेला ॥
१ बादल गवन जूझ कर साजा ।
तैसेहि गवन आइ घर बाजा ॥
गवन जो आवा पँवरि महँ, पिउ गवने परदेस ।
सखी बुझावहिं, किमि अनल बुझै सो केहि उपदेस ? ॥१६७

रहौं लजाइ त पिउ चलै, गहौं त कह मोहि ढीठ।
ठाढि तेवानि कि, का करौं, दूभर दुऔ वईठ ॥१९८॥

लाज किये जौ पिउ नहिं पावौं।
तजौं लाज, कर जोरि मनावौं॥
करि हठ कत जाइ जेहि लाजा।
घूँघट लाज आव केहि काजा?॥
तब धनि बिहँसि कहा गहि फेंटा।
नारि जो बिनवै, कंत न भेंटा॥
आजु गवन हौं आयी, नाहाँ।
तुम न कंत! गवनहु रन माहाँ॥
गवन आव धनि मिलै के ताईं।
कौन गवन, जौ बिछुरै साईं॥
धनि न नैन भरि देखा पीऊ।
पिउ न मिला धनि मौ भरि जीऊ॥

पायँन्ह धरा लिलाट धनि, विनय सुनहु, हो राय!
अलक परी फँदवार होइ, कैसेहु तजै न पाँय ॥१९९॥

छाँडि फेंटि धनि! बादल कहा।
पुरुख-गवन धनि फेंट न गहा॥
जौ तुँइ गवन आइ, गजगामी।
गवन मोर जहँवाँ मोर स्वामी॥
जौ लगि राजा छूटि न आवा।
भावै वीर, सिंगार न भावा॥
कैसेहु कंत फिरे नहिं फेरे।
आगि परी चित-उर धनि केरे॥
उठा जो धूम, नैन करुवाने।
लागे परै आँसु झहराने॥

चुइ-चुइ काजर आँचर भीजा।
तबहुँ न पिउ कर रोवँ पसीजा।
छाँडि चला, हिरदय देइ दाहू।
निठुर नाह, आपन नहिं काहू॥
रोये कंत न बहुरे, तेहि रोये का काज?
कंत धरा मन जूझ रन, धनि माजा सर-साज॥२००॥

३८ गोरा-बादल जुद्ध खंड

मतै बैठि बादल औ गोरा।
सो मत कीज परै, नहिं भोरा॥
सुबुधि सौं ससा सिंघ कहँ मारा।
कुबुधि सिंघ कूँआ परि हारा॥
जस तुरकन्ह राजा छर साजा।
तस हम साजि छोडावहिं राजा॥
सोरह से चंडोल सँवारे।
कुँवर सँजोइल कै बैठारे॥
पदुमावति कर सजा बिवानू।
बैठ लोहार, न जानै भानू॥
साजि सबै चंडोल चलाये।
सुरँग ओहार, मोति बहु लाये॥
भये सँग गोरा-बादल बली।
कहत चले, 'पदुमावति चली'॥
राजहि चली छोडावै तहँ रानी होइ ओल।
तीस सहस तुरि खिंची सँग, सौरह सै चंडोल॥२०१॥

राजा बंदि जेहि के सौंपना।
गा गोरा तेहि पहं अगमना॥

टका लाख दस दीन्ह अँकोरा।
बिनती कीन्हि पायँ गहि गोरा॥
'बिनवहु पातिसाहि सौं जाई।
अब रानी पदुमावति आयी॥
बिनती करै, आइ हौं ढिल्ली।
चितउर कै मोहि स्यो है किल्ली॥
बिनती करै, जहाँ है पूँजी।
सब भँडार कै मोहि स्यो कूँजी॥
एक घरी जो अग्या पावौ।
राजहि सौंपि मँदिर महँ आवौं॥'
तब रखवार गये सुलतानी।
देखि अँकोर भये जस पानी॥

लीन्ह अँकोर हाथ जेहि, जीउ दीन्ह तेहि हाथ।
जहाँ चलावै तहँ चलै, फेरे फिरै न माथ॥२०२॥

जाइ साह आगे सिर नावा।
ए जग-सूर! चाँद चलि आवा॥
जावत हैं सब नखत-तराई।
सोरह सै चडोल सो आयी॥
चितउर जेति राज कै पूँजी।
लेइ सो आइ पदुमावति कूँजी॥
बिनती करै, जोरि कर खरी।
लेइ सौंपौं राजा एक घरी॥
अग्या भयी, 'जाइ एक घरी।'
छूँछि जो घरी फेरि बिधि भरी॥
चलि बिवान राजा पहँ आवा।
सँग चंडोल जगत सब छावा॥

पदुमावति के भेस लोहारू।
निकसि, काटि बँदि, कीन्ह जोहारू॥
उठा कोपि जस छूटा राजा।
चढ़ा तुरंग, सिंघ अस गाजा॥
गोरा-बादल खाँड़ा काढे।
निकसि कुँवर चढ़ि-चढ़ि भये ठाढ़े॥
तीख तुरंग गगन सिर लागा।
केहूँ जुगुति करि टेकी बागा॥
जो जिउ ऊपर खड्‌ग सँभारा।
मरनहार सो सहसन्ह मारा।

भयी पुकार साह सौं, ससि औ नखत सो नाहिं।
छर कै गहन गरासा, गहन गरासे जाहिं॥२०३॥

लेइ राजा चितउर कहँ चले।
छूटेउ सिंघ, मिरिग खलभले॥
चढ़ा साहि, चढ़ि लाग गोहारी।
कटक असूझ परी जग कारी॥
फिरि गोरा बादल सौं कहा।
गहन छूटि पुनि चाहै गहा॥
चहुँ दिसि आवै लोपत भानू।
अब इहै गोइ, इहै मैदानू॥
तुँइ अब राजहि लेइ चलु गोरा।
हौं अब उलटि जुरौं भा जोरा॥
वह चौगान तुरुक कस खेला।
होइ खेलार रन जुरौं अकेला॥
तौ पावौं बादल अस नाऊँ।
जो मैदान गोइ लेइ जाऊँ॥

आजु खड़ग चौगान गहि करौं सीस-रिपु गोइ।
खेलौं सौंह साह सौं, हाल जगत महँ होइ ॥२०४॥

तब अगमन होइ गोरा मिला।
तुइँ राजहि लेइ चलु बादला। ॥
मै अब आउ भरी औ भूँजी।
का पछिताव आउ जौ पूजी ? ॥
बहुतन्ह मारि मरौं जो जूझी।
तुम जिनि रोयेहु तौ मन बूझी ॥
कुँवर सहस सँग गोरा लीन्हे।
और बीर बादल-सँग कीन्हे ॥
गोरहि समदि मेघ अस गाजा।
चला लिये आगे करि राजा ॥
गोरा उलटि खेत भा ठाढा।
पुरुख देखि चाव मन बाढ़ा ॥

आव कटक सुलतानी, गगन छपा मसि माँझ।
राति आव जग कारी, होति आव दिन साँझ ॥२०५॥

ओनयी घटा चहूँ दिसि आयी।
छूटहि बान मेघ-झरि लायी ॥
गोरै साथ लीन्ह सब साथी।
जस मैमंत सूँड़ बिनु हाथी ॥
सहस कुँवर, सहसौ सत बाँधा।
भार-पहार जूझ कर काँधा ॥
लगे मरै गोरा के आगे।
बाग न मोर घाव मुख लागे ॥
जैस पतंग आगि धँसि लेई।
एक मुवै, दूसर जिउ देई ॥

टूटहिं सीस, अधर धर मारे ।
लोटहि कध-हिं-कध निरारे ॥
कोई परहिं रुहिर होई राते ।
कोई घायल घूमहिं माते ॥

घरी एक भारत भा, भा असवारन्ह मेल ।
जूझि कुँवरि सब निबरे, गोरा रहा अकेल ॥२०६॥

गोरै देख,, साथि सब जूझा ।
आपन काल नियर भा बूझा ॥
कोपि सिंघ सामुहँ रन मेला ।
लाखन्ह सौं नहिं मरै अकेला ॥
लेइ, हाँकि हस्तिन्ह कै ठटा ।
जैसे पवन विदारै घटा ॥
जेहि सिर देइ कोपि करवारू ।
स्यो घोडे टूटै असवारू ॥
लोटहिं सीस कवध निनारे ।
माठ मजीठ जनहुँ रन ढारे ॥
खेलि फाग सेंदुर छिरकावा ।
चाँचरि खेलि आगि जनु लावा ॥
हस्ती घोड धाइ जो धूका ।
ताहि कीन्ह सो रुहिर-भभूका ॥

भइ अग्या सुलतानी, 'बेगि करहु एहि हाथ ।
रतन जात है आगे लिये पदारथ साथ' ॥२०७॥

सबै, कटक मिलि गोरहि छेका ।
गूँजत सिंघ जाइ नहिं टेका ॥
जेहि दिसि उठै, सोइ जनु खावा ।
पलटि सिंघ तेहि ठावँ न आवा ॥

तुरुक बोलावहि, बोलै बाहाँ।
गोरै मीचु घरी जिउ माहाँ॥
मुये पुनि जूझि जाज-जगदेऊ।
जियत न रहा जगत महँ केऊ॥
जिनि जानहु गोरा सो अकेला।
सिंघ के मोछ हाथ को मेला?॥
सिंघ जियत नहिं आपु धरावा।
मुये पाछ कोई घिसियावा॥
करै सिंघ मुख-सौंहहिं दीठी।
जौ लगि जियै, देइ नहिं पीठी॥

रतनसेन जो बाँधा, मसि गोरा के गात।
जौ लगि रुहिर न धोवौं, तौ लगि होइ न रात॥२०८॥

सरजा बीर सिंघ चढ़ि गाजा।
आइ सौंह गोरा सौं बाजा॥
पहुँचा आइ सिंघ-असवारू।
जहाँ सिंघ गोरा बरियारू॥
मारेसि साँग पेट महँ धँसी।
काढ़ेसि हुमुकि, आँति भुइँ खसी॥
कहेसि, अंत अब भा भुइँ परना।
अंत त खसे खेह सिर भरना॥
कहि के गरजि सिंघ अस धावा।
सरजा सारदूल पहँ आवा॥
सरजै लीन्ह साँग पर घाऊ।
परा खड्ग, जनु परा निहाऊ॥
वज्र कै साँग, वज्र कै डाँडा।
उठी आग तस बाजा खाँडा॥

जानहु बज्र बज्र सौं बाजा।
सब ही कहा, परी अब गाजा॥
तस मारा हठि गोरै, उठी बज्र कै आगि।
कोइ नियरे नहिं आवै, सिंघ-सदूरहिं लागि॥२०९॥

तब सरजा कोपा बरिबंडा।
जनहु सदूर केर भुजदंडा॥
कोपि गरजि मारेसि तस बाजा।
जानहु परी टूटि सिर गाजा॥
ठाँठर टूट, फूट सिर तासू।
स्यो सुमेरु जनु टूट अकासू॥
धमकि उठा सब सरग-पतारू।
फिरि गइ दीठि, फिरा संसारू॥
भइ परलय, अस सब ही जाना।
काढा खरग सरग नियराना॥
तस मारेसि स्यो घोड़ै काटा।
धरती फाटि, सेस-फन फाटा॥
जौ अति सिंह बरी होइ आई।
सारदूल सौं कौनि बडाई?॥

गोरा परा खेत महँ, सुर पहुँचावा पान।
बादल लेइगा राजा, लेइ चितउर नियरान॥२१०॥

३६. पदुमावती-मिलन गढ

पदुमावति मन अही जो झूरी।
सुनत सरोवर-हिय गा पूरी॥
अद्रा महि-हुलास जस होई।
सुख-सोहाग आदर भा सोई॥
बिहँसि चाँद देइ माँग सेंदूरू।
आरति करैँ चली जहँ सूरू॥
औ गोहन ससि नखत-तराई।
चितउर कै रानी जहँ ताई॥
परसि पाँय राजा के रानी।
पुनि आरति बादल कहँ आनी॥
पूजे बादल के भुज-दंडा।
तुरय के पाँव दाबि कर-खड़ा॥
यह गज-गवन गरब जो मोरा।
तुम्ह राखा, बादल औ गोरा!॥
सेंदुर-तिलक जो आँकुस अहा।
तुम्ह राखा माथे, तौ रहा॥
काछ-काछि तुम्ह जिउ पर खेला।
तुम्ह जिउ आनि मँजूसा मेला॥
राखा छात, चँवर औधारा।
राखा छुद्रघट-झनकारा॥
तुम हनुवंत होइ धुजा पईठे।
तब चितउर पिय आइ बईठे॥

पुनि गज हस्ति चढ़ावा, नेत बिछायी बाट ।
बाजत गाजत राजा आइ बैठ सुख-पाट ॥२११॥

निसि राजै रानी कंठ लायी ।
पिउ मरि जिया, नारि जनु पायी ॥
छाँड़ि गयेउ सरवर महँ मोही ।
सरवर सूखि गयेउ बिनु तोही ॥
तेहि ऊपर का कहौं जो मारी ।
बिषम पहार परा दुख भारी ॥
दूती एक देवपाल पठायी ।
बाम्हनि-भेस छरै मोहि आयी ॥
कहै, तोरि हौं आहुँ सहेली ।
चलि लेइ जाउँ भँवर जहँ, बेली ॥
तब मै ग्यान कीन्ह, सत बाँधा ।
ओहि कर बोल लाग बिष-बाँधा ॥
कहै कँवल नहिं करत अहेरा ।
चाहै भँवर करै से फेरा ॥
मोहि बुझाएउँ आपन हियरा ।
कंत न हुत, अहै सुठि नियरा ॥

फूल-बास घिउ-छीर जिमि, नियर मिलै एक ठाँद ।
तस राजा घट-घट कै जिइउँ अगिनि महँ गाद ॥२१२॥

५० रतनसेन-देवपाल-युद्ध खंड

सुनि देवपाल राय कर चालू ।
राजहिं कठिन परा हिय सालू ॥
दादुर कतहुँ कँवल कहँ पेखा ?
गादुर मुख न सूर कर देखा ॥

अपने रंग जस नाच मयूरू।
तेहि सरि साव करै तमचूरू॥
जौं लगि आइ तुरुक गढ बाजा।
तौ लगि धरि आनौ, तौ राजा॥
नींद न लीन्ह, रैनि सब जागा।
होत बिहान जाइ गढ लागा॥
कुंभलनेर अगम गढ बाँका।
बिखम पंथ, चढि जाइ न झाँका॥
राजहि तहाँ भयेउ लेइ कालू।
होइ सामुहँ रोपा देवपालू॥
दुवौ अनी सनमुख भईं, लोहा भयेउ असूझ।
सत्रु जूझि तब निबरे, एक दुवौ महँ जूझ॥२१३॥

जौ देवपाल राव रन गाजा।
मोहि-तोहि जूझ एकोझा, राजा॥
मेलेसि साँग आइ बिख-भरी।
मेटि न जाइ काल कै घरी॥
आइ नाभि पर साँग बईठी।
नाभि बेधि निकसी सो पीठी॥
चला मारि, तब राजै मारा।
टूट कंध, धड भयेउ निनारा॥
सीस काटि कै बैरी बाँधा।
पावा दाँव, बैर जस साधा॥
जियत फिरा, आयेउ बल-हरा।
माँझ बाट होइ लोहै धरा॥
कारी घाव, जाइ नहिं डोला।
रही जीभ जम गही, को बोला ?॥

सुनि ; तुरि तो सब बिनरी, भार परा मँझ बाट।
हस्ति घोर को ता कर ?, घर आनी गइ खाट ॥२१४॥

१ पदुमावती-नागमती सती खंड

नागमती पदुमावति रानी।
दुवौ महा सत, सती बखानी॥
दुवौ सौति दान-पुन्नि बहु कीन्हा।
सात बार फिरि भाँवरि लीन्हा॥
एक जो भाँवरि भयी बियाही।
अब दुसरे होइ गोहन जाही॥
जियत कंत ! तुम्ह हम गर लायी।
मुएँ कंठ नहि छाँडहि, साँई ! ॥
औ जो गाँठि कंत ! तुम्ह जोरी।
आदि-अंत लहि जाइ न छोरी॥
यह जग काह, जो अछहि-न आथी।
हम तुम, नाह ! दुहँ जग साथी॥
लागीं कंठ आगि देइ होरी।
छार भयीं जरि, अंग न मोरी॥

राती पिउ के नेह गईं, सरग भयेउ रतनार।
जो रे उवा सो अथवा, रहा न कोइ संसार ॥२१५॥

[illegible] भयी जब जाई।
बादशाहि गढ छेंका आई॥
तौ लगि सो अवसर होइ बीता।
भए अलोप राम औ सीता॥
[illegible] [illegible] मुठी सगाग।
[illegible] दिखत [illegible]॥

छार उठाइ लीन्हि एक मूठी।
दीन्हि उड़ाइ, पिरथिमी झूठी॥
सगरिउ कटक उठायी माटी।
पुल बाँधा जहँ-जहँ गढ़-घाटी॥
जौ लहि ऊपर छार न परै।
तौ लहि यह तिस्ना नहिं मरै॥
भा धावा, भइ जूझ असूझा।
बादल आइ पँवरि पर जूझा॥

जौहर भईं सब इस्तिरी, पुरुख भये संग्राम।
पातिसाहि गढ़ चूरा, चितउर भा इसलाम॥२१६॥

उपसंहार

मैं एहि अरथ पंडितन्ह बूझा।
कहा कि हम्ह किछु और न सूझा॥
चौंदह भुवन जो तर उपराहीं।
ते सब मानुख के घट माहीं॥
तन चितउर, मन राजा कीन्हा।
हिय सिंघल, बुधि पदमिनि चीन्हा॥
गुरू सुआ, जेइ पंथ देखावा।
बिनु गुरु जगत को निरगुन पावा?॥
नागमती यह दुनिया-धंधा।
बाँचा सोइ, न एहि चित बंधा॥
राघव-दूत सोइ सैतानू।
माया अलाउदी सुलतानू॥
प्रेम-कथा एहि भाँति बिचारहु।
बूझि लेहु, जौ बूझै पारहु॥

तुरकी, अरबी, हिंदुई, भाषा जेती आहि।
जेहि महँ मारग प्रेम कर, सबै सराहैं ताहि ॥२१७॥

मुहम्मद कवि यह जोरि सुनावा।
सुना सो पीर प्रेम कर पावा ॥
जोरी लाइ रकत कै लेई।
गाढ़ी प्रीति नयन-जल भेई ॥
औ मैं जानि गीत अस कीन्हा।
मकु यह रहै जगत महँ चीन्हा ॥
कहाँ सो रतनसेन अब राजा ?।
कहाँ सुआ, अस बुधि उपराजा ?॥
कहाँ अलाउद्दीन सुलतानू ?।
कहँ राघव, जेइ कीन्ह बखानू ?॥
कहँ सुरूप पदुमावति रानी ?।
कोइ न रहा, जग रही कहानी ॥
धनि सो पुरुष, जस कीरति जासू।
फूल मरै, पै मरै न बासू ॥

केइ न जगत जस बेंचा, केइ न लीन्ह जस मोल ?।
जो यह पढ़ै कहानी, हम्ह सँवरै दुइ बोल ॥२१८॥

टिप्पणियाँ

दोहा (१)

आदि = आदिभूत, सब के आरंभ में रहनेवाला, सबका मूल कारण, आदिपुरुष (या, आरंभ में)। एक = जो एक ही है। जिउ = जीव, प्राण। कीन्ह = किया, रचा। जोति = यहाँ मुहम्मद साहब से अभिप्राय है, मुहम्मद के रूप में ज्योति का प्रकाश किया। मिलाओ—

प्रथम जोति विधि ताकर साजा।
औ तेहि प्रीति सिहिटि उपराजा ॥

तेहि = उन मुहम्मद साहब की। पिरीति = प्रीति के कारण। कविलासू = कैलास, स्वर्ग (जायसी ने कैलास का प्रयोग सर्वत्र स्वर्ग के अर्थ में किया है)। अगिनि इ० = यूनानी और अरबी लोग चार ही तत्त्व मानते हैं। खेह = धूल, मिट्टी, पृथ्वी। उरेहा = चित्रकारी, रंग-रंग के प्राकृतिक दृश्य। बरन-बरन = भाँति-भाँति के। औतारू = अवतार (जन्म) लेनेवाले प्राणी। दिनयर = दिनकर। राती = रात्रि। तराइन = तारा-गण। पाँती = पंक्ति। सीउ = शीत। बीजु = बिजली। सप्त दीप = पृथ्वी पर सात द्वीप (जम्बू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौंच, शाक, पुष्कर)। खंड = लोक। चौदहो खंड = सात पाताल, भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपोलोक, सत्यलोक।

कीन्ह इ० = जिसकी सब रचना ऐसी की हुई है। दूसर छाज इ० = जैसी दूसरे को शोभा नहीं देती अर्थात् जैसी दूसरा नहीं कर सकता। अवगाहि = अगाध, गम्भीर।

(२)

सात समुद्र = पुराणों के अनुसार क्षार, क्षीर, दधि, घृत, उदक (मीठा जल), इक्षु, और सुरा के समुद्र, जायसी के अनुसार क्षार, क्षीर, दधि, सुरा, मीठा जल, किलकिला और मानसर। मेरु = सुमेरु। खिखिद=किष्किंध नामक पहाड़। जेहि = जिनमें। नग = रत्न। निरमरे = निरमल। साउज = जगली जानवर (श्वापद)। आरन = अरण्य, जगल। रहई = रहते हैं। दिहेसि = दो। भुगुति = भोग, भोजन के पदार्थ। तेहि पाई = उसके वास्ते। दरब = द्रव्य। जेहि = जिससे। अघाइ = तृप्त होता है। जियन = जीवन, जीना। चहा = चाहते हैं। मीचु = मृत्यु। रहा = बचता है।

निभरोसी—जिसे किसी का भरोसा, किसी का आसरा, न हो; निराश्रय (या, स्वाधीन और स्वाश्रयी)। बरियार = बलवान। छार = राख, धूल। छारहिं ते इ० = पहले राख से सबको बनाया और फिर अन्त में सबको राख कर दिया।

(३)

जावत—यावत् जितने भी। हस्ति औ चाँटा = हाथी और चींटा, हाथी से लेकर चींटी तक सब प्राणी, बडे-से-बडे से लेकर छोटे-से-छोटे जीव। भुगुति = भोजन। पतग = पतिंगा। लगि = तक। होई = होते हैं, हैं।

चीन्ह = (उसे) पहचानते हैं। ओहि = उसके। हुत = था। पुनि = फिर आगे भी। ना ओहि इ० = उसका कोई स्थान नहीं, फिर भी कोई स्थान उसके बिना नहीं।

मिला = मिला हुआ। बेहरा = जुदा, अलग। ऐस = ऐसे, इस प्रकार। रहा भरपूर = भरपूर है, व्याप्त है। दीठिवत = (ज्ञान की) दृष्टिवाला, जो देखे। नीयरे = निकट।

(४)

पूनो = पूर्णिमा। करा = कला, प्रकाश ; पूर्णिमा के प्रकाश के समान ज्योतिष्मान। प्रथम इ० = ईश्वर ने पहले उसकी ज्योति को बनाया। सिहिटि इ० = सृष्टि की रचना की। प्रथम इ० = कुरान में लिखा है कि ईश्वर ने पहले मुहम्मद साहब को उत्पन्न किया और फिर उनकी खातिर सृष्टि को बनाया। लेसि = जलाकर। निरमल = प्रकाशित। चीन्हा = पहचान लिया, जान लिया, देख लिया। परत = पड़ता। दुसरे इ० = ईश्वर ने उनको दूसरे स्थान (नंबर) पर लिखा ; इसलाम में मुहम्मद साहब का स्थान परमात्मा के बाद दूसरा है। धरमी = धर्मात्मा। पाढत = पाठ, धार्मिक पाठ, यहाँ कलमे से अभिप्राय है। बसीठ = दूत। दई, दैव = परमात्मा। दुइ जग = लोक-परलोक। बिधि = परमात्मा। लेख औ जोख = पाप-पुण्य का हिसाब। बिनउब = विनय करेगा। करब = करेगा। मोख = मोक्ष।

(५)

खंड = देश, दिशा। ओही = उसे। छाज = शोभा देता है। छात = राज-छत्र। पाटा = सिंहासन। राजै = राजाओं ने। भुइँ इ० = उसके आगे पृथ्वी पर माथा रखा। सूर = शेरशाह सूर-वंश का था। खांडै इ० = तलवार में शूरवीर।

अदल = न्याय। पुहुमी = पृथ्वी पर। चाटा = चीटा। दुखवै = सताता है। नाथ = नाक का एक गहना। पारना = सकना। सोन उछारा = सोना उछालते चलते हैं। रेंगहि = चलते हैं। नागा = नंगा, जिसे कपड़े की आवश्यकता हो।

(६)

दीन्ह = दिया, बताया, दिखाया। उँजियारा = प्रकाश वाला। लेसा = जलाया। प्रेम = ईश्वर का प्रेम। मारग इ० = जो मार्ग अँधेरा था वह दिखायी पड़ा। अँजोर = उजाला। जाना-बूझा =

जान-बूझ लिया। खार = मेरे पापो को खारे समुद्र में फेंक दिया, नष्ट कर दिया (या, मेरे पापो ने मुझे खारे समुद्र मे डाल दिया था)। बोहित इ० = धर्म के जहाज में (चढा) लिया। कै = करके, बनाकर। बूडत कै = डूबते हुए का। पायौ = मैंने पाया। तीर = किनारे पर जो घाट था उसे। कनधारा = कर्णधार। दस्तगीर = हाथ पकडने वाले, सहारा देने वाले। गाढे = विपत्ति। अवगाह = अगाध पानी में। हाथी = हाथ। मुरसिद = रास्ता बतानेवाले गुरु। करिया = कर्णधार। खेवक = खेनेवाला। पाव = पाता है, पहुँचता है।

(७)

कवि—कविता। ओतारा = उत्पन्न किया। कीन्ह इ० = परन्तु उसे प्रकाशवाला बनाया। नयनाहा = नेत्र से। उआ = नक्षत्रो में शुक्र की तरह उदय हुआ (शुक्र भी एक-नयन थे), शुक्र का तारा सबसे अधिक चमकीला है। भजा = की। टूट = टूटे हुए को सँभाल लो। मेरवहु इ० = सजाकर मिला लो। आदि-अंत = आरंभ से अंत तक। सन = से। भलहि = भले ही, चाहे। आछै = रहे। भँवर इ० = गुणग्राहक दूर होकर भी रसास्वादन कर सकता है, जो गुणग्राहक नहीं वह निकट होकर भी रस नहीं ले सकता।

(८)

ओहि सरि इ० = उसकी बराबरी के योग्य। अमराव = अमराई, आम के पेडों का बाग। उठा = पृथ्वी से उठकर आकाश को जा लगा है, बहुत ऊँचा है। तरिवर इ० = पेड सब मलयाचल से लाये हुए हैं, चन्दन की भाँति सुगन्धित हैं। भइ इ० = पेड इतने गहरे हैं कि सारे जगत में उनकी छाया हो रही है और वह छाया ऐसी गहरी है कि रात सी हो जाती है। फिरि = लौटकर। नोट—यहाँ ईश्वरीय लोक की ओर संकेत किया है, फिरि = फिर जन्म लेकर; यह = इस जगत की।

सघन = गहरा। घन = बहुत अधिक। पारौं = सकता हूँ।

(९)

भाखा = बोलियाँ । हुलास = उल्लास, आनद । चुहचूही, पडुक = पक्षीविशेप । 'एकै तूही' = पडुक की बोली जो इन शब्दों से मिलती-जुलती होती है मानो वह कहता है कि हे ईश्वर ! एक तू ही है । सारी = सारिका, मैना । रहचह = आनद का कोलाहल । कुरहिं = बोलते हैं । करवरही = कलवल करते हैं । गडुरी = एक पक्षी । जीहा = जिह्वा से । महरि = ग्वालिन नामक चिडिया । हारिल इ० = हारीत पक्षी मानो विनयपूर्वक अपनी हार बताता है कि हे ईश्वर ! मैं हार गया । कुराहर = कोलाहल । जावत = जितने भी । दई = ईश्वर ।

(१०)

पैग-पैग पर = पग-पग पर । पाँवरी = सीढियाँ । जपा-तपा = जप-तप करनेवाले । मानसरोदक = सिहल का सरोवर । काहा = क्या । अमृत इ० = मानो अमृत में कपूर की सुगधि ला दी गयी है । लक-दीप = जायसी ने लंका और सिहल को अलग-अलग माना है । अनायी = लाकर । बनाई = सजाकर । राता = लाल रग का, सुदर । छाता = कमल का छत्र । उनथहिं = उछलते हैं, प्रवाह में बहते हैं । उतिराही = पानी के ऊपर आकर तैरते हैं । बिरिछ = वृक्षो में चन्दन की सुगन्धि विद्ध हो गयी है (भर गयी है) । मनि-भाग इ० = सौभाग्य की मणि है (जो बडे सौभाग्यवाले हैं) ; जायसी ने जगह-जगह बडे आदमियो के माथे में सौभाग्य-सूचक मणि होने का उल्लेख किया है । आछहिं = हैं, रहते हैं । फाग = फाग खेलने का समय ।

(११)

दसा = देश, या दशा । अवासा = भवन । ग्याता = ज्ञानवान । ससकिरित इ० = सब संस्कृत में बातें करते हैं । हाटा = बाजार । बाटा = मार्गों में । अनगन = अगणित (अनबर्न = विविध या अनुपम) । बेसाहा लीन्ह = खरीद की । लाहा = लाभ । एहि हाट = इस लोक

की ओर सकेत । आन हाट = परलोक की ओर सकेत । कोई = जीव की ओर सकेत । बेसाहनी = खरीद । काहू केर इ० = किसी की चीजें बिक रही है। सन = से, साथ । मूर = पूँजी , मानव-जन्म ।

नोट—पिछली चार पक्तियो में पारमार्थिक अर्थ को भी ध्यान में रखिये ।

(१२)

गढ = दुर्ग । खोह = खाई । जाँघ = पैर । डर खाई = डर खा जाते हैं, भयभीत हो जाते हैं। परै = जो गिर पडता है वह फिर सातवें पाताल पहुँचकर ही रहता है । पौरी = द्वार । बाकी = विकट, दुर्गम । खड = मजिल । बरम्हडा = आकाश । बाचि = बचाकर, दूर रहकर । भौंरी = गश्त । चँपत = दबने पर, पडने पर । कापै इ० = उस पौरी पर पडते ही पैर कांप उठता है । गढि = गढकर । लायी = लगायी हैं। ताई = तक । बसेरे = मजिल, विश्राम । सत = शक्ति । [नव खड =शरीर के । नव पौरी = शरीर के नव द्वार, नव छिद्र । बरम्हडा = ब्रह्माड, मस्तिष्क में स्थित ब्रह्मरध्र । पाच कोतवार = शरीर के भीतर पच प्राण । चार बसेरे = साधना की चार अवस्थाएँ, शरीअत, तरीकत, मारिफत, और हकीकत । सत = सत्य की शक्ति, अथवा साधना की सात मजिलें या मुकामात ; मजिलो और मुकामो के नामों के, तथा उनके क्रम के, सबध मे मतैक्य नही है ।]

(१३)

पर=आगे, बाद में । दसवें दुआरा = ब्रह्मरध्र की ओर सकेत । बाज = बजती है । घरियारा = घडियाल । घरी इ० = घडीवाला, पहर-पहर में, अपनी-अपनी बारी से, बैठा हुआ घडी को गिनता है । घरी इ० = जब एक घडी पूरी हो जाती है तो वह डका मारकर घडी बजा देता है, इस प्रकार घडी-घडी पर घडियाल बोलती है। परा इ०=जो डडा पडता है वह मानो सारे जगत (के मनुष्यो) को डाँटता है कि हे मट्टी

के बने बर्तनो ! तुम निश्चिन्त हुए क्या बैठे हो ? चाक=कुम्हार का चाक, काल-चक्र। काचे=कच्चे (बरतन और मनुष्य)। आयेहु इ० = यहाँ रहने को नही आये हो, न स्थायी होकर बच सकते हो। भरी = पूरी हुई, बीत गयी। आउ = आयु। बटाऊ = पथिक (ससार का यात्री मनुष्य)। गजर = बडा घटा बजता है। बजर = वज्र के समान कठोर, जिस पर कोई प्रभाव नही पडता। जाग=जागता है, सावधान होता है।

मुहम्मद = जायसी का नाम। जीवन-जल इ०=अरहट के घडो में जैसे पानी भरता है वैसे ही जीवन की घडियो मे जीवन-जल भरता है; घडा पानी से भरता है और ऊपर आकर ढलकर खाली हो जाता है, उसी प्रकार जीवन की घड़ियाँ जीवन लिये आती है और बीत जाती हैं; मनुष्य का जन्म इसी प्रकार बीत जाता है।

(१४)

वारा = इधर, इस किनारे। राज-दुआरा = ईश्वरीय लोक की ओर सकेत। बारा=द्वार पर। रज-बार = राजद्वार (पर)। मन ते इ०=मन से भी आगे (तेज) चलने वाले। डोलहिं वागा = लगाम को हिलाते हैं। लेत इ० = साँस लेते ही आकाश तक जा लगते हैं। परि इ० = दिखायी पडी। दर = द्वार पर। निसान = नगारे। सूर इ०= ऐसे तपता है जैसे स्वय सूर्य तपता हो; सूर्य के समान प्रतापी है। माथे इ० = माथे पर तेज है।

(१५)

अछरीन्ह = अप्सराओ से। कविलासू = स्वर्ग। पदमिनी = पद्मिनी जाति की। एक एक तें = एक एक से बढकर। अधारी = आधार पर; अत्यन्त सुकुमार। अवधान = गर्भ के। सिवलोक = स्वर्ग। दिया = जो मणि स्वर्ग में दीपक के समान प्रकाश कर रही थी वह अब सिंहल-द्वीप में उत्पन्न हुई।

(१६)

जानौ = मानो सूर्य ने किरण निकाली (प्रसारित की) थी। हुति = थी। घाटि = घटकर। कविलासू = सिंहलद्वीप। इते रूप = इतने रूप के साथ प्रगट हुई कि पूर्णिमा का चाँद क्षीण होकर घटने लगा (जायसी ने चाँद का प्रयोग स्त्रीलिंग में किया है)। गाडि इ०—चन्द्रमा लाज के मारे पृथ्वी में गडी रही, बाहर नही निकली। निरमयी = बनायी। बेधा = विद्ध हो गया, भर गया। चहुँ पासा = चारो ओर (मँडराने लगे)।

(१७)

छठी = जन्म के बाद की छठी रात का उत्सव। रहस = आनद, आनद-क्रीडा। पुरान = शास्त्र। अरथाये = जन्म का फल कहा। उवय किया = उत्पन्न हुई। कहेन्हि = कही, सुनायी। बहुरे = लौट गये। बारी = वाला। बैसारी = बिठा दी। ओनाहीं = उमडते हैं, आते हैं। उत्तर = जवाब। कै = करके। बरोक = सगाई, सबध।

(१८)

धौराहर = ऊँचा महल, धवलगृह। रहसि = आनंदित होकर। केली = क्रीडा। ठाऊँ = स्थान मे, पास। लोना = सुन्दर। सुहागा = जो सोने को निखार देता है। ते = से। बुझाई = समझाकर। मोहि = मेरे लिए। आँखि लगावहि = देखते तक नही। जस गगा = गगा की तरह उमडा हुआ। देह-देह=अग-अग में। हम = हमारे। निवारि = रोककर रखो, वश मे रखो। दुर्जन = दुष्ट, निंदक। राजहि = राजा से।

(१६)

दीठि इ० = दृष्टि और हो हो गयी, कृपा की दृष्टि नही रही। बुद्धि = जो उलटी-सीधी बुद्धि देता है। रजायसु = राजा का आदेश, राजा की आज्ञा।

सूर इ० = जहाँ चंद्रमा (पदमावती) उदित है वहाँ सूर्य (वर, पति) की बात सुनाता है।

बारी = एक जाति। छपाँवा = छिपा दिया। व्याध = मारने वाला। आवै पावा = आ सका। सुजानू = समझदार। भुगुति = खाना। उड़ानू = उड़ना। ठोर = चोंच। दारिउ = दाड़िम। अबहिं = अभी, देखते ही, तुरत। ठोर = चोंच में।

(२०)

वै = मारनेवारो। फिरे = लौट गये। विनवा = विनय करने लगा। डर खावा = डर गया। रानी = पदमावती। कला = कान्ति, प्रकाश। पाती = काति। ठाकुर = मालिक। अन्त = अन्त में। माया = प्रेम, ममता, दया। प्रान-परेवा = प्राणों के समान प्यारा पक्षी। तोहि = तेरी। आखौं = चाहती हूँ। पींजर = हृदय के पिंजड़े में। खुरुक = खटका। कया = काया। करिया = कर्णधार; जब कर्णधार ही शत्रु है तो वह कभी नाव को डुबा सकता है, चाहे जब मार सकता है।

(२१-२२)

नहाई = नहाने के लिए। कुलेली = किलोलें करती हुई। नैहर = पीहर (ज्ञाति-गृह)। सासुर = ससुराल। गवनब = जायेंगी। काली = कल, थोड़े ही दिनों में। कित = कहाँ। पाली = पार, तट। अपने हाथा = अपने वश में। कहुँ = न जाने। ससुरे = ससुराल में। आपु आपु कहँ = हर एक को अपनी-अपनी पड़ेगी। परब इ० = जैसे पक्षी व्याध की डलिया में जा पड़ते हैं वैसे ही ससुराल की क़ैद में जा पड़ेगी।

नोट—आध्यात्मिक अर्थ की ओर भी ध्यान दीजिये (नैहर = यह लोक; सासुर = परलोक)

(२३)

होइ = जाकर। बाद मेलि = होड़ लगाकर। पसारा = आरम्भ किया। बूझि = समझकर, सावधानी से। अचेत = असावधान। बेकरार =

व्याकुल । पुकारी = पुकारकर कहूँ । लेइ हाथा = खाली हाथ लेकर । चलिउँ = मैं चली ।

नोट—आध्यात्मिक अर्थ को भी ध्यान में रखिये । ससार में सावधानी से चलकर जन्म सफल करना चाहिए ; जो असावधान होता है वह जन्म का लाभ खो बैठता है और पीछे पछताता है ।

बूडि = डुबकी लगाकर । उठी = निकली । काहू = किसी के । कोइ इ० = ससार में भी लोग अपनी-अपनी करनी के अनुसार फल प्राप्त करते हैं ।

(२४)

चाह सो पायी = मैं उसे देख पाया, उस (पदमावती) को देख सका । पारसरूप = पारस के समान सबको सुन्दर रूप देने वाली पदमावती । पायन्ह = पैरों को । पावा = मैंने उसके सौंदर्य को देखकर स्वय सौन्दर्य पाया । तन = शरीर से । न जनौ = न जाने । लेइ आवा = उसके शरीर की सुगन्ध-लहरों ले आया । उतिराना = पानी पर उतर आया (ऊपर आ गया) । चन्द = पदमावती । बिगसे इ० = जहाँ भी जिसको भी पदमावती ने देखा, जहाँ जिस वस्तु पर पदमावती की दृष्टि पडी, वही वह वस्तु चमक उठी । ओप=कान्ति । पावा = जिस रूप से पदमावती ने देखा सरोवर ने वही रूप पा लिया । चहा = देखा । ससि इ० = पदमावती के मुख के सामने सरोवर दर्पण बन गया ; पदमावती का सौन्दर्य सरोवर में, दर्पण की भाँति, प्रतिबिंबित हो उठा । नयन इ० = नेत्रो द्वारा जिसको देखा, जहाँ नेत्रो का प्रतिबिंब पडा, वहाँ कमल बन गये (कमल मानो उसके नेत्रो के प्रतिबिंब-मात्र थे) । निरमल इ० = जहाँ निर्मल शरीर की छाया पडी वहाँ स्वच्छ जल बन गया (स्वच्छ जल मानो उसके शरीर का प्रतिबिंब था) । हँसत इ० = जहाँ उसने हँसकर देखा वही हंस बन गये , जहाँ दाँतो की ज्योति पडी वहाँ हीरे आदि रत्न बन गये (हस मानो उसकी हँसी के, और रत्न मानो उसकी दाँतो की ज्योति के, प्रतिबिंब थे)।

नोट—आध्यात्मिक अर्थ भी ध्यान मे रखिये। पदमावती = परमात्मा, जिसका प्रतिबिंब यह सारा संसार है; संसार मे जो कुछ सौन्दर्य है वह परमात्मा का सौन्दर्य ही है, जो जगतरूपी दर्पण मे प्रतिबिंबित होकर दिखायी पड़ रहा है। इस सम्बन्ध में रामचन्द्र शुक्ल की जायसी-ग्रन्थावली की प्रस्तावना के पृष्ठ ८८ (११६) और १५८ (२१५) देखिये।

(२५)

मँजारी = बिल्ली। चलौं = यहाँ से चल दूँ। ताकि = तककर, ओर। बनढाँखा = ढाकों का वन, जंगल। जिउ लीन्हे = प्राणो को लिये हुए। फरि = फली हुई, फलोवाली। भुगुति इ० = जब तक विधाता रक्षा करता है तब तक भोजन से भेंट हो ही जाती है। गुसाईं = ईश्वर, मालिक। जावत = जितने भी। भुक = भोजन। चारा = भोजन। बिछोह कर=ईश्वरीय वियोग का।

(२६)

परी = झपट्टा मारा, हमला किया। उतर इ० = पूछने पर उत्तर दिया करता था। छूँछा = खाली। रानी = पदमावती। गहनैं = ग्रहण ने। आँसु इ० = हृदय मे अश्रु इस तरह भर गये जिस तरह आकाश तारो से भर जाता है। पाल = सरोवर की पार, मर्यादा। सरवर = हृदय। कँवल = नेत्र। मधुकर = पुतलियाँ। उडि भागे = छिप गये। नखत होइ = तारों के समान। ऊये = उगे। बासु = स्थान। दहुँ = न जाने। पवन इ० = उसकी अब पवन भी नही मिल सकती (या, पवन भी अब उसे नही पा सकता।

(२७)

पाउब = पावेगी। गा = चला गया। जौ लहि = जब तक। अहा = था। बन्दि हुति = वन्दीखाने से। बन्दि होइ = कैदी बन कर। वै इ० = उसने उड़ने के फल तभी खा लिये थे, उसका उड़ना तभी निश्चित हो गया था। पखि = पंखोवाला।

नोट—यहाँ से आध्यात्मिक अर्थ को भी ध्यान मे रखिये।

पींजर = (१ पिंजड़ा (२) शरीर। जो जाकर = जो जिसका था। वह उसका हो गया, पिंजड़ा तुम्हारा था, तुम्हारे पास रह गया, सुग्गा वन का था, वन को चला गया (शरीर मिट्टी का था मिट्टी मे मिल गया; आत्मा स्वर्ग का था, स्वर्ग में चला गया)। दस द्वार = शरीर के दस छिद्र। बाच = बचे। पाहा = पास से। केतन = कितनो को ही, बहुतो को। लीला = निगल गयो, खा गयी। गाढ = कड़ा। ढीला = ढीला किया, इसके पेट मे जाकर कोई निकल नही सका। तेहि बन = ईश्वरीय लोक की ओर संकेत। सुअटा = जीव की ओर संकेत। आनि = लाकर।

(२८)

चुऐ इ०= सुग्गे ने वहाँ वन मे कुछ दिन आराम से काटे। ढुका = पहुँचा। टाटी = टट्टी, झाड़, फन्दा। पैग-पैग = एक-एक पैर। भुइँ = पृथ्वी। चांपत = दबाते हुए जिससे पैरो का शब्द न हो। डर खावा = डर गये। अनभला = अनिष्टकर। गयी इ० = हमारी आयु बीत गयी। काऊ = कभी। पराही = भाग जायें। ताका = देखा। थाका = किंकर्तव्यविमूढ हो गया। साखा = व्याध जिसके नीचे छिपा था वह डाली। बैठ = बैठा रहा। वह = व्याध। खोचा = चिड़िया फँसाने का बाँस। लासा = चिपचिपा पदार्थ जो व्याध चिड़ियाँ फँसाने के लिए बनाते हैं। लासा = वे पाँचो ही लासे मे भरे थे। पख भरे = पख लासा में भरकर फँस गये। कित = कहाँ। मारे = मारे गये बिना बचेगा।

(२९)

मेलेसि इ० = पकड़कर डलिया में डाल लिया। तहँवा = वहाँ भी। खरभरही = खलभल कर रहे थे। केली = क्रीडा। आपु-आपु महँ = आपस में। बिस-दाना = जहरीला दाना। अगूरा = अंकुर, अकुरित। जेहि = जिससे। डहन इ० = पकड़कर पाँखें चूर कर डाली। भासा = तृष्णा। चिरिहार = व्याध। ढुकत = पहुँचता। काल =

मृत्यु। लगी = लग्गी, बास। कठिन = जिस पर उपदेश का कोई प्रभाव ही नहीं होता। पै = अवश्य। बाझा = फन्दे मे फँस गया।

नोट—यहाँ से दोहा ३० तक आध्यात्मिक अर्थ को भी ध्यान मे रखिये। सासारिक विषय-भोग ही जहरीले दाने हैं जिनके कारण जीव काल-रूप व्याध के फन्दे मे फँस जाता है।

(३०)

गरब = गर्व के साथ। झूले = झूलते थे। केरा = केला। कुरवारि = चोच से खोद-खोद कर। फरहरी = फल। ओहु = वह भी। तुलाना = आ पहुँचा। सो बिसरा = उसे अर्थात् परमात्मा को भुला दिया। पावा इ० = जिसके द्वारा (धन-संपत्ति आदि सब कुछ) पाया। अड़ा = बैठने का स्थान, अड्डा। गडा = गडा। खुरुक = खटका, भय। सुख सोइ = सुख मे सोते हुए, निश्चिन्त होकर। गिउ = गर्दन मे।

(३१)

बैपारा = व्यापार के लिए। हुत = था। मकु = कि, शायद (मिलाओ राजस्थानी मको)। बाढी = बढती, वृद्धि। हाट = बाजार। ओरा = अन्त। सर्व = सब वस्तुएँ। सुठि = अत्यन्त (सुष्ठु)। ऊँच = बड़े मोल का। बनिज = लेन-देन, खरीद-बिक्री। लाख इ० = लाखो और करोडो के समूहों में। ओनाई = गिनती। बेसाहना लीन्ह = वस्तुओ की खरीद की। बहोर = प्रत्यावर्त्तन, लौटना। साठि = पूँजी। गाठि = गाँठ मे, पास मे। थोर = थोडी।

(३२)

बनिज = वाणिज्य की वस्तु। मूर = मूल धन। तेहि = उसी (जिससे आया था)। बेवहरिया = महाजन। बेवहारु = लेन-देन, ऋण। देब = दूँगा। छेकिहि बारु = दरवाजा घेरेगा। बेदू = शास्त्रों की बातें। भेंदू = मर्म, असली बात का पता नही चलता। दहुँ = विकल्प

अथवा सन्देह-सूचक अव्यय, क्या जाने, न-जाने, दोनो में से कौन सा।

नोट —आध्यात्मिक अर्थ को भी देखिये। हाट = संसार।

(३३)

अहा = था। हुत = से। छूट = मुक्त, स्वतन्त्र। जजमाना = हे यजमान। घालि = डालकर। मजूसा = पिटारी में। बेचै इ० = बेचने को लाया गया। रोवत रकत = रोने पर लहू के आँसू निकलते हैं। पियर = पीला। मया = दया। चपसि = मारता है। कहेसि इ० = पक्षी ने कहा कि इसका क्या दोष है। पर-मँस = पराया माँस। खाधू = खानेवाले। धरै = पकडे। बेसाहा = खरीदा। सुनि इ० = सुग्गे के मुख से वेदादि ग्रन्थों के वचन सुनकर। मति = विचार।

(३४)

मर साजा = मर गया। सिंघली = सिंहलद्वीप के। गज-मोति = बडे-बडे मोती। काठा = कंठे सी रेखाएँ। राते डहन इ० = लाल रंग के चित्र-विचित्र डैने हैं मानो उन पर वेद-मन्त्र लिखे हैं। ठोर = चोंच। अमी-रस इ० = अमृत-रस से परिपूर्ण। कवि इ० = व्यास के समान कवि। सहदेऊ = पंचम पांडव जो बुद्धिमत्ता के लिए प्रसिद्ध था, सहदेव के समान पण्डित। अरथ सो = भावपूर्ण। डोल = हिलाते हैं।

(३५)

रजाइ = आज्ञा। औधारा = करने लगा। जीउ = जीव के समान। निनारा = अलग। बिसवासी = विश्वासघाती। नाव = नवा दिया, झुका दिया। बड साजू = बडे साज के साथ। सो कहा इ० = उसे अपना गुन अवश्य कहना चाहिए। मरम = भेद। मेरवौं = मिलाऊँ।

(३६)

कतहुँ = कहीं। पियारे नाहा = नाथ के प्यारे। मोरे रूप = रूप में मेरे समान। बानि कसि इ० = रंग कसकर बताओ कि यह सोना कैसा

है, परीक्षा कर कहो कि मैं कैसी हूँ। लोना = सुन्दर। तोरी रुपमनी = तेरे सिंहल की रूपवती स्त्रियाँ। लोनि = सुन्दर। सत = सत्य। आन = शपथ।

(३७)

हेरा = देखने लगा, देखकर। दई = ईश्वर ने। आगरि = आगे, बढ़कर। कै इ० = मन में गर्व करके किसी ने शोभा नही पायी। चाद = चाद ने सुन्दरता पर गर्व किया तो उसे घटना पड़ा। बिलोनि = असुन्दर, कुरूप। पूजै = पहुँच सकती है, बराबरी कर सकती है। जहाँ इ० = माथे के आगे पैरों का क्या वर्णन करूँ, वे शीर्षस्थानीय हैं तो उनके सामने तुम पैरो के समान हो। गढी इ० = वे सुगन्धित सोने से बनी है। भरी इ० = रूप और भाग्य से भरी है। रूखि = क्रुद्ध। लोन = नमक के समान खारा। मुद्रा अलङ्कार—सोना, रूपा, लोन, रूखा।

(३८)

अहई = है, रहेगा। होइ अकूरु = कही वह अकुरित हो उठे। सबद इ०—यह मुर्गा बनकर प्रात:काल की सूचना न दे दे, रतनसेन को पदमावती की कथा न सुना दे। दामिनी = दास का नाम। मँद-चाला = बुरी चालवाला। भयेउ न = नहीं हुआ, छोड़कर भाग आया। जाकर पाला = जिसका पाला हुआ था, जिसने पाला था। आन = और। होइ कुभाखी = जो कुवचन बोलनेवाला हो। साखी = देखनेवाला। जेहि इ० = जिस दिन से मै डरती हूँ कि कही आ न पहुँचे (विरह का दिन)। रैनि = अपने सूर्य (पति) को रात्रि के अन्धकार मे छिपाये हूँ। लै इ० = अब मेरे सूर्य को यह कमल को (पदमावती को) ले जाकर दे देना चाहता है। मो इ० = मुझ नागमती के लिए मोर बनकर, मेरा शत्रु बनकर, (मोर नाग का शत्रु प्रसिद्ध है)।

(३९)

मति = विचार। बिसरामी = विश्रामदायक या विश्रंभपात्र। मकु = शायद। तुरय-रोग इ० = मिलाओ, तबेले की बला बन्दर के सर (प्रसिद्ध

कहावत)। तुरय=घोड़ा। हरि=बन्दर। राखा=मारा नहीं। मति साजा=विचार किया। लीन्हा=पकड़ लिया। विक्रम=राजा विक्रमादित्य के पास एक सुग्गा था, जिसने एक दिन राजा को एक अमृत-फल लाकर दिया, जिसके खाने से बूढ़ा भी युवा हो जाय। राजा ने फल रखवा दिया। रात्रि को साँप ने आकर उसमें अपना मुँह लगा दिया। दूसरे दिन राजा ने फल खाने को मँगवाया तो मन्त्रियों ने कहा कि परीक्षा किये बिना खाना ठीक नहीं। फल का एक टुकड़ा कुत्ते को खिलाया गया। कुत्ता खाते ही मर गया। तब राजा ने क्रोध में भरकर सुग्गे को मरवा डाला और फल को फिकवा दिया। उसके बीज से समय पाकर एक पेड़ तैयार हो गया। जहरीला पेड़ जानकर लोग फलों को नहीं खाते थे। एक बार एक बूढ़े आदमी ने दु:ख के कारण मरने की इच्छा से एक फल खा लिया। खाते ही वह युवा हो गया। अब राजा को अपनी भूल मालूम हुई और उस उपकारी सुग्गे के लिये बहुत पछताया। जिनि इ० = यह मत समझो। कै औगुन = बुरा काम करके। मँदिर इ० = घर में सुख का साज होता है। अकाज = अनिष्ट। की = या तो, या। घट = शरीर में। मती = हे नागमती। सती होहु = जलकर मर जाओ।

(४०)

धनि = प्रिय, प्रेयसी, नायिका, स्त्री। उजियरि = कान्तिमयी। निबाहि इ० = अन्त तक निभा न सकी। दोहाग = पति का अप्रेम। हारी = चूकी। बिरचि = प्रेम को भूल कर, नाराज होकर (रचना = अनुरक्त होना का विपरीत शब्द)। पियारी = पति की प्यारी। सुआ इ० = रानी की दशा ऐसी हो गयी जैसे सेंमल से रुई निकलने पर पके फल की आशा रखनेवाले सुग्गे की होती है। भुआ = रुई (पाठान्तर मुआ)। बिहरि = बिखरकर, अलग-अलग होकर, फटकर। स्याम पै इ० = काला दिखायी देने लगा। सोनार = (१) सुनार (२) वह समझदार नारी। सोहाग = (१) सुहागे द्वारा कंचन को फिर मिला दे (२) पति

का प्रेम-देकर फिर एक कर दे। तेहि = उसने। रिस = रोष से। परहेली = तिरस्कार कर दिया। हौं = मुझे। नागर = चतुर।

(४१)

रिस इ० = क्रोध अपना नाश करता है, बुद्धि दूसरो का। गयेउ = नष्ट हुआ। घाला = नष्ट किया हुआ। बिरस = द्वेष, विरक्ति। मारै = वश मे करे। आनी = लाकर। मरम = भेद। पाहाँ = पास। मया = दया। बररुचि इ० = वररुचि जैसे पंडित और भोज जैसे राजा।

नोट—आध्यात्मिक अर्थ पर भी ध्यान दीजिये।

(४२)

जसे इ० = सेमल की रुई के समान, निस्सार। रात = प्रकाशित। सघाता = समूह। सिहिटि = सृष्टि। बारी = बाला, कन्या। पदम इ० = विधाता ने मानो कमल की गन्ध से युक्त चन्द्रमा बनाया है। अग इ० = चन्दन के समान सुगन्धित अग। कनक = वह बारहवानी (पूर्णतया खरे) और सुगन्धित सोने के तुल्य है। पदमिनि = दूसरी पद्मिनी स्त्रियाँ। ओहि कै = उस पदमावती की। सुगन्ध इ० = सुगन्धि और रूप मे उसकी छाया-मात्र हैं। परेवा = पक्षी। कठ फूट = उसकी सेवा करते-करते कठ फूटा है; उसकी सेवा में सज्ञान बना हूँ। भाखा = बोली। मूठि इ० = केवल मुट्ठी भर पाँखो का ढेर हूँ। जगत = लोक।

नोट—आध्यात्मिक अर्थ भी देखिये। पदमावती = ईश्वर।

(४३)

कँवल = पदमावती। भवर होइ = भौंरे के समान। भुलाना = मुग्ध हो गया। उतग = ऊँचा, अगम्य। दीप = (१) द्वीप। (२) दीपक। सुनि इ० = समुद्र का हाल सुनकर नेत्र किलकिला पक्षी हो गये हैं। किलकिला = एक जल-पक्षी जो मछली के लिए जल पर मँडराता है। भा इ० = विवाह हो गया या अभी कुमारी है। तासू = उसको।

न वहुरा = नहीं लौटा (आध्यात्मिक अर्थ)। अछरी = अप्सरा। ओनाही = उमड़ते है, आते हैं। धूप = प्रकाश।

(४४)

रवि-नांव = सूर्य का नाम, सूर्य का शब्द (पदमावती का नाम)। रतन = रत्न-रूप राजा रतनसेन। राता = अनुरक्त। सुरंग = सुन्दर। कही = वर्णन की। चित्र इ० = चित्र की भांति वहां जम गयी है। होइ सुरुज = सूर्य की तरह। घट = शरीर। पूरि = भरकर, व्याप्त होकर। परगसी = प्रकाश कर उठी। छाया = सौंदर्यवती। जल इ० = उसके बिना मैं ऐसा हूं जैसा जल के बिना मीन और रक्त के बिना शरीर। छाजा = शोभा देता है। पुछार = मोर। नगवासी = नागफांस के फन्दे। बांदू = बन्दी। मुयो मुयो = मर गया मर गया (मोर की आवाज इसी प्रकार की होती है)। ओही रोस = उसी रोष के कारण (हेतूत्प्रेक्षा)। धै (धरि) = पकड़ कर। गीउ = ग्रीवा। दोख = अपना दुःख। कित = क्या तो, या तो। सो कित इ० = या तो वह प्रिय पास मे बुलाकार गले से फन्दा निकाल दे या वह मार डाले तभी छुटकारा हो सकता है। मेल्है = अलग करे।

नोट—आध्यात्मिक-अर्थ (प्रकृति ईश्वर-प्रेम मे व्याकुल)।

(४५)

लीन्ह इ० = ऊंची लबी सांस ली। दुहेला = सकटमय। राखा = रखा हुआ। जग इ० = जो उसे चख लेता है वह जगत् मे मरण नही सहता (नही मरता)। लावा = रखा। मेला = डाल दिया। बार = द्वार। कहै = वर्णन करे। बिसेखा = विशेषता। तौ इ० = दुख तभी तक है जब तक। भेंट = मिलता है। मिलै = यदि प्रियतम मिले। मिलै कं = मिलने की (पदमावती के)। मेरवै = मिलावे।

(४६)

ओहि क = उसका। ओही पै छाजा = उसी को शोभा देता है। कस्तूरी = कस्तूरी जैसे काले और सुगन्धित। वासुकि = सर्पो का

राजा। विसहर = साँप (बालों को साँपों की उपमा दी जाती है)। लुरे = लोटते हुए, झूलते हुए। अरघानी = सुगन्धि। छोरि = खोलकर। झार = झाड़ती है। उपराहीं = ऊपर। दीआ = दीपक। पय = माँग। रैनि = केशजाल। कसौटी = केश-रूपी काली कसौटी पर। बिसेखी = बढ़ी। जमुना इ० = यमुना का रंग काला और गंगा का सफेद है। खाँडै इ० = मानो तलवार की धार पर रुधिर भरा हो (माँग का रंग लालिमा लिये हुए सफेद है)। करवत = (१) आरा (२) त्रिवेणी (प्रयाग) तीर्थ में प्रसिद्ध आरा जिस पर गिरकर भक्त लोग प्राण दिया करते थे। बेनी = (१) केशपाश (२) त्रिवेणी तीर्थ। कनक इ० = यह माँग खरे सोने के समान (कान्तिमय) है, उसे सोहाग की आवश्यकता है। सोहाग = (१) सुहागा (सोने के पक्ष में), (२) सौभाग्य, पति का होना। नखत = नक्षत्रों के समान मोती। उवै = उदित है। गांग = आकाश-गंगा।

(४७)

दुइज = द्वितीया का चन्द्र। ओती = उतनी। सरवरि = उपमा। मयंक = मृगांक। गरासा = ग्रास करता है। दुइज-पाट = द्वितीया के चन्द्र रूपी सिंहासन पर। ध्रुव = ध्रुव का तारा। धनुक = धनुष। जा महँ हेर = जिस की ओर देखती है। सहुँ = सामने। मार = मारती है। सरि = समानता (करके)। गोपीता = गोपियाँ। गगन-धनुक = इन्द्र-धनुष। धनि धानुक = वह पदमावती धनुर्धारिणी है। लाजहि = लज्जा में, लज्जित होकर।

(४८)

मानसरोदक इ० = मानस-सरोवर की भाँति उछलते हैं। तुरंग = घोड़ों की तरह। बागा = लगाम। उलथि = उछलकर। चली = शोभायमान। साधे = चढ़ाये। अनी = फौजें। मारा = मारा गया। बेधि रहा = विद्ध हो रहा है। सगरौ = सारा। हने = मारे हुए। साखी = (१) पेड़ (२) साक्षी। ठाढ़ = खड़े हुए। ओ पहँ = उस पद-

मावती के पास । रन इ० = मरुभूमि और गहरे वन । सौंजहि = पशुओं के । रोवाँ = रोम ।

नोट—अन्तिम पंक्तियों में आध्यात्मिक अर्थ पर भी ध्यान रखिये (जायसी ग्रन्थावली, प्रस्तावना, पृष्ठ ५४ (७३) देखिये) ।

(४६)

सूआ = सुग्गा । सूक = शुक्र का तारा । वेसर = नथ में । ऊआ मोती के रूप मे उदय हुआ । हिरकाइ = सटाकर । अमी = अमृत । बिंब इ० = उनसे लज्जित होकर सुन्दर बिंबाफल वन मे जाकर फलने लगे । हीरा = ओठों के बीच दाँत ऐसे शोभित हैं मानो मूँगों की पंक्तियाँ हीरों को लिये हुए हैं ।

बतीसी = बत्तीसो दाँत । उपराही = ऊपर, बढकर । निरमयी = बनायी गयी । जोति ओहि = उस ज्योति से । ओहि जोति = उस ज्योति को पहुँचनेवाली । पाहन = रत्नों के रूप मे । छरक्कि = चमक । दारिउँ दाडिम । कै = कर । फाटेउ = फट गया (हेतूत्प्रेक्षा) । दरक्कि = दरार पड़कर ।

नोट—आध्यात्मिक अर्थ ।

(५०)

माति = मतवाला होकर । घूमना = नशे की अवस्था में होना । कहौं = वर्णन करता हूँ । राता = अनुरक्त हो जाता है । दुइ = दो भाग । परा = पडा हुआ है । तिल-तिल = सब-का-सब । देखत = लोगो के देखने से । तेहि तें इ० = सुरंग कपोलो पर काला तिल मानो नेत्रो का प्रतिबिंब है (लाल नेत्रों में काली पुतलियाँ) । सीप इ० = सीप के दो दीपक । लोने = सुन्दर । कौंधा लौकहिं = बिजलियाँ चमकती हैं । गीउ = ग्रीवा । कंबु इ० = शख के समान । रीसी = रीस, बराबरी । लागि = युक्त । सीसी = बोतल । गिउ = ग्रीवा से । मयूर, तमचूर = ग्रीवा के उपमान । उहै = वही (अपनी हार) । मकारे = सवेरे (सकाल) ।

कठसिरी = गले की माला। अभरन = भूषण। को तप इ० = किस प्राणी ने ऐसा तप किया है कि जो कठहार बनकर उसके गले लगेगी।

(५१)

फेरि इ० = खराद पर चढ़ाकर बनाया। भायी = चमकायी गयीं। कदलि-गाभ = केले का भीतरी भाग जो अत्यन्त कोमल एवं स्निग्ध होता है। जोरी = जोड़ा। कँवल-हथोरी = कमल के समान हथेलियाँ। मलयागिर कै = चन्दन के समान।

लंक = कमर। पुहुमि = पृथ्वी पर। काहू = किसी के। ओहि = वह भी। सरि = बराबर। बसा = बर्रे। झीनी, खीनी = पतली। परिहँस = ईर्ष्या। पियर भये—(हेतूत्प्रेक्षा)। लिये डंक इ०—(प्रत्यनीक)। फेरि = उलटकर। पाट = सिंहासन। चूरा = पैरों में पहनने की चूड़ियाँ। उजियारा = प्रकाशित। पायल = नूपुर। अनवट = अंगूठे का गहना। बिछिया = उँगलियों का गहना। ताई = तक। अभोग = अभुक्त, पवित्र।

(५२)

पै = निश्चयवाचक अव्यय। लहर-हि-लहर = प्रत्येक लहर में। बिसँभारा = बेसँभाल, बेसुध। भौंर होइ = भँवर बनकर, भँवर के समान। भावरि = चक्कर। उसास = ऊँचे साँस के साथ। उठै = ऊपर आता है। बौराई = बावला बनकर। बेवस्था = व्यवस्था, ढंग। दसवें अवस्था = मरण। हरहिं = धीरे-धीरे। तरासहिं = कापता है, सताता है। एतनै = इतना ही। तराहि = त्राहि-त्राहि।

(५३)

जग आवत = जगत में आते ही, होश आते ही। ग्यान = प्रिय का ज्ञान, ईश्वर का ज्ञान। अहा = था। सूना = निष्प्राण। बिहूना = बिना। बूझहु = समझो। जेई = खायी। पोना = रोटी बनाना। जेईं इ० = घर में पकी-पकायी रोटियाँ खायी हैं (कष्ट नहीं उठाया है)। कोई =

कुमुदिनी (साधारण रानियाँ पा सके हो)। झूझ कर = युद्ध का। साजू = सामग्री। चाहहु इ० = तुम्हें सुख पाना चाहिए। साधन्ह = साधो से, इच्छाओं से। सधै = सिद्ध होता है। कलप्प = काटना, जो प्रेम के लिए सिर काटकर दे देता है। बापुरा = बेचारा।

नोट—आध्यात्मिक अर्थ।

(५४)

हेराना = खो जाना। हेरत = खोजता हुआ। सोई = उस परमात्मा को। पथ इ० = उस (साधक) के मार्ग मे शूली का अंकुर खड़ा है। मंसूर = प्रसिद्ध सूफी सन्त जिसे कट्टर-पंथियो ने शूली पर चढ़ा दिया था। मन जागा = मन मे जाग उठा, ज्ञान हो गया। पलक न मार = पलक न मारते-मारते, तुरन्त। सूझा = दिखायी पड़ा। बूझा = जान लिया। चिनगी = चिनगारी। मेला = डालता है। फनिग = पतिंगा। भृङ्ग = एक कीड़ा जो पतिंगे को भृङ्ग बना लेता है। अब इ० = अब मुझे अपने समान बना लो (गुरु शिष्य को अपने समान ज्ञानी बना लेता है)। जेहि कारन = जिस पदमावती के कारण। जरा = जल रहा हूँ। नैत = निकेत, स्थान। कै = करके।

नोट—आध्यात्मिक अर्थ।

(५५)

किंगरी = सारंगी की तरह का एक बाजा। बिसंभर = बिना सभाल के। लटा = शिथिल, दुर्बल। चन्दन देहा = चन्दन के समान शरीर। खेहा = धूलि। कथा = गुदड़ी। गोरख कहा = गोरखनाथ का नाम लिया। मुद्रा = योगियो के कुण्डल। उदपान = कमडलु। भुगति = भिक्षा। कया = काया के।

(५६)

गनक = ज्योतिषी। गौन = प्रस्थान का मुहूर्त। दिन = शुभ दिन। सरेखा = होश मे, बावला का प्रतिलोम शब्द।

सिंगी पूरी = सिंगी-नाद किया। मेलि इ० = शरीर पर भस्म लगाकर, योगी बनकर। राय-रान = राजा और राना, सामन्त राजा, साथी राजा। मिलान = पड़ाव। सुठि = अत्यन्त। बटपारा = लुटेरे। आगू = आगा, आगे की बात। ओ ठाहिं = उसी जगह, जो चलते हैं वे उसी जगह नहीं पड़े रहते, आगे बढ़ते ही हैं।

(५७)

होत इ० = दिन भर चलना होता रहा। कुस-साथरि = कुशों की शय्या। सौंर = चद्दर। सुपेती = (सफेद) चद्दर। करवट = सोना। भुइ सैंती = पृथ्वी पर। मलीजा = मैली हुई। ओही = वही (प्रियतम की)। जामा = दृढ़ हुआ, या उत्पन्न हुआ। किंगरी = एक बाजा। पाच तन्त इ० = शरीर के पंच तत्त्वों से उसी पदमावती की धुन निकल रही थी। बन इ० = वन में चातक पक्षी और जल में सीप।

(५८)

भेंटै = भेंटने को। गजपती = विजयनगर के राजा की उपाधि। भाव = भावना, समझ (या शरीर)। तुम्ह तें = तुम से (जहाज मिल जायें)। सीस पर = शिर पर, स्वीकार। खागा = कमी। गोसाईं सन = मालिक से। बिनाती = विनय। जाब = जावेंगे। अकूत = अपरिमेय, अपार। बूत = बूता।

(५९)

सकती-सीऊ = शक्ति की सीमा, असीम शक्ति वाला। पग्रु धरई = आगे बढ़ता है। मूये केर = मरे हुए का मौत क्या बिगाड़ सकती है। सामरि = सबल, पाथेय (या सँभालकर)। मुँह = तरफ।

सत्त-दत्त = सत्य और दान दोनों में सत वाला है। भरम = संशय। पेले = धकेले, चलाये। प्रेम इ० = प्रेम के मार्ग में चलता हुआ जो पार पहुँच जाता है। एहि छारा = इस संसार की मिट्टी में। चपराही = मन से भी बढ़कर तेजी से। सरग इ० = ईर्ष्या के कारण स्वर्ग की पलुए भर भी

पर्वाह नही करता। घाल = घलुआ, चुंगी, सौदे के ऊपर दी जाने वाली थोडी सी वस्तु। बेहर-बेहर = अलग-अलग।

(६०)

नाईं =समान। ताईं =तक। लेइ=से, लेकर। नहि=तक। निबाहू = निर्वाह, पहुँचा जा सकना। साकर=कठिन स्थिति, संकट।

(६१–६२)

कान = पतवार। आपनि इ० = सबको अपनी-अपनी पडी थी। पछराति = पिछली रात मे, रात के पीछे के भाग मे। साज = साधन। उतरा = पार हुआ।

(६३)

पुरइन होइ = कमलिनी के समान। मसि = कालिमा, अन्धकार। भिनसार = सबेरा। अस्ति-अस्ति = है है, वह रहा, वह रहा (तट और ईश्वर)। अन्ध जो अहे = अब तक जिन्हे कुछ भी नही दीख पडता था। भौंर दसन होइ कै इ० = दाँत भौंरो की तरह रसपान कर रहे है, मिस्सी लगे दाँत भौंरो के समान हैं। किरीरा=क्रीडा। हस—(१) प्राण (२) हस पक्षी। चुनहिं=चुगते हैं। मान=भोग करते हैं। मनसा इ०=मानसरोवर की इच्छा की, सकल्प किया। हियाव =साहस। सूर = सूरा।

नोट—आध्यात्मिक अर्थ।

(६४)

न जनौं इ० =न-जाने सूर्य आज कहाँ उदय हुआ है। लावा=लगाया। जुडान=शीतल हुआ। अैस=अैसा। आदी=प्राचीन काल का (या बिलकुल)। पूज = पहुँच सकता है, बराबरी कर सकता है। तुइँ=तू ने। गगन इ०=सिंहल-रूपी आकाश सरोवर है, पदमावती-रूपी चन्द्र कमल है, सखीजन-रूपी तारागण कुमुदिनियाँ हैं, रतनसेन-रूपी भौंरा सूर्य बनकर उदय हुआ, पवन उस पदमावती-रूपी कमल की गन्ध लेकर आ पहुँचा।

(६५)

बिजुरी = बिजली का चक्र। फेरी = ओर। जमकात = यमकर्त्तरी, खाड़ा। धाइ इ० = जो वहाँ पहुँचने की इच्छा करके दौड़कर पहुँचा उसे। तराई = तारागण। सबाई = सभी। पहुँचै चहा = पहुँचना चाहा। तस = ऐसा मारा कि लौटकर पृथ्वी पर जा पड़ा। निश्राना = आखिर। उठी = ऊँची उठी (वहाँ तक पहुँचने के लिए)। बहुरा रोई = रोकर लौट आया (वर्षा के रूप में)। रावन इ० = रावण ने सामने होना चाहा, सामना करना चाहा। जोगीनाथ = बड़ा योगी।

नोट—सिंहलगढ़ में ईश्वरीय लोक का संकेत है (जायसी-ग्रन्थावली, प्रस्तावना; पृष्ठ ५४ (७३) और १६० (२१८) देखिये)।

(६६)

रामा = नारी। भौंर इ० = वहाँ भौंरा या पक्षी नाम का कोई भी प्राणी नहीं जा पाता। मेरु = पहाड़। मंडप = मन्दिर। सिरी-पंचमी = श्री-पंचमी, वसंतपचमी। बारू = द्वार। पूजै = पूजने को। दीठि-मेरावा = दृष्टि-मिलाप। गवनहु = जाओ। पूजै—(१) पहुँचे (२) पूर्ण हो।

(६७)

जोग-मजोगा = रतनसेन के योग-साधन के प्रभाव से। कंवाच = कौंच की फली जिसके छू जाने से शरीर में खुजली होती है। लावा = लगा दिया। गाढ़ी = कठिन, व्यथापूर्ण। तिल इ० = एक एक पल एक-एक युग के समान व्यथा करता था। मकु इ० = शायद इस मनोरंजन से रात बीत जाय। ससि-बाहन = चन्द्रमा के रथ में जुते मृग। श्रोनाई = झुककर (या, मुग्ध होकर)। ससिबाहन इ० = मृग बीणा के नाद को मुग्ध होकर सुनने लगते हैं, चन्द्रमा का रथ स्थिर हो जाता है, इस प्रकार रात बीतने के बदले और बढ़ जाती है। सिंघ इ० = सिंह का चित्र बनाने लगती है कि मृग भयभीत होकर भाग चलें और रात बीते। बिथा = व्यथा में। परी इ० = विरह के वन में जा पड़ी, विरह के उस वन ने उसे चारो ओर

से घेर लिया, वह वन, जहाँ तक दिखायी पडता था, अगम्य और अन्त-हीन था। असँभारा=जो सँभाला नही जा सकता। भँवर इ० =वह प्राणों को अपने भँवर मे डालकर लहरे मार रहा है। होइ अगिनि=अग्नि के समान। चन्दन महँ = चन्दन मे आग छिपी रहती है जो रगड से प्रगट हो जाती है। उआ = उदय हुआ। जस = ज्यो ही। कहै न इ० = किसी से अपनी व्यथा नही कह सकती।

(६८)

बियोग=विरह की दशा मे। लाइ = लगाकर। बिछोई = बिछुडा हुआ। आगि उठै = हृदय मे विरह की अग्नि जल रही है और साथ ही गहरा दुख है, आग के प्रभाव से वह दुखरूपी जल भाप बन गया और फिर नेत्रो से आँसू बनकर टपकने लगा। रहस = आनन्द। कित = क्यो। बिछूना=बिछुडा हुआ। भेंटै=मिलता है। जानै = (उस समय का सुख)। सुहेला = अगस्त्य का तारा जो वर्षा के अन्त में उदय होता है। झरै = बरसकर समाप्त हो जाता है, सब-का-सब बरस जाता है।

(६९)

गवनेहु = चले गये थे। कै = करके। सुख-पाटू=सुख के सिंहासन पर विराजो। छाज न = शोभा नही देता। ठाटू = ठाटबाट। घेरा = रोक रखा था। हाथ पै मेला = अवश्य हाथ डालेगी। खेला = चल दिया। नर = नरसल। धरि = पकडकर। चित्र = विचित्र। लीन्ह सर साज=मर गया। (पाठान्तर—सिवसाज = शिवलोक की तय्यारी की, शिवलोक प्राप्त किया)।

(७०)

ठाँउ = स्थान पर। वै इ० = उन्होने मुझे लिया। चाहै = सोने को सुहागा मिला ही चाहिए। नग=रत्न। हीछा = इच्छा। रतन-पदारथ = पदमावती। ससि = पदमावती। इहै पै = यही। भानू = सूर्य, वर। चिनगी = चिनगारी। रतन इ० = रत्न तभी रत्न है जब कचन की कली

को पा सके, तभी उस की सार्थकता है। कचन-करी इ० = कचन की कली को काँच का लोभ नही होता'। नग = सच्चा रत्न। प्रिथमी = पृथ्वी पर। मोहि इ० = जो जगत् मे मेरे योग्य हो।

(७१)

विरह = विरह और वज्र सी कठोर अग्नि में क्या कोई अन्तर है, दोनों समान-रूप से जला देने वाले हैं। गाढे = गहरा, अधिक। आपु ही = अपने-आप। मयन = प्रेम (मदन)। मया = ममता, दया। भानू = रतनसेन। वानू = रग। जोग = योगी। छाला = मृग चर्म। भुगुति = भीख। सभारै = मृगछाला उठाकर भीख मांगेगा। कँवल-भँवर = कमल के लिए भ्रमर के समान। सूर = सच्चा सूर्य।

(७२)

पान = बिदाई का पान। राता = लाल (हेतूत्प्रेक्षा)। सँवारै = चलने को पाँखें सजाता है। ऊआ = सूर्य उगा है। चलेहु मिलि = मिलकर चल दिये। आना = मानो दूसरा मरण है (कै = क्या, मानो ', अथवा मरण ही ले आये। राँधा = पास। तुम्ह सेवा = तुम्हारी सेवा मे है , तुम मे लगी हुई है। मन = मन में। जल = पानी मे। अम्वा = आम (या, बादल, पानी)। अन्त इ० = मछली पकाते समय उसमे आम की खटाई पडती है।

(७३)

पेम-रस = प्रेम-रस का। मारग नैन = दृष्टि सुग्गे के आने के मार्ग की ओर लगी थी। गोरख = गुरु (पदमावती)। अदेस = आदेश, योगी मिलते हैं तब आदेश शब्द बोलते हैं। आदि = मूलमन्त्र। सबद = उपदेश। अकेला = केवल। भिंग = भृंग जो पतिंगे को भी भृंग बना लेता है। फनिग = पतिंगा। ओहि = उसे, पतिंगे को। एकहि बार इ० = एक ही बार मे प्राण लेकर फिर प्राण देता है, भृङ्ग के रूप मे बदल देता है। ता कहँ = शिष्य पर। माया = मया, दया। जो इ० = जो इस प्रकार पतिंगे

की भाँति मरकर फिर जीवित होता है। भौर = अर्थात् प्रेमी। कँवल = अर्थात् प्रिय। रस लियँ = आनन्द भोगता है। समापन=पूर्ण।

(७४)

दैउ-दैउ कै = परमात्मा का नाम ले-लेकर, किसी प्रकार, बड़ी कठिनता से। पहुँची आई = आ पहुँची। हुलास=उल्लास। हँकारी= बुलायी। जावत = जितनी भी, सब। परास = पलास, वसन्त में पलास लाल रंग के पत्तो से भर जाता है। पियर इ० = दुःख के समान पीले पत्ते झड़ गये। निपाते = पेड़ पत्तो से रहित हो गये। सुख इ० = सुख के समान नये लाल पत्ते निकल आये। पूजी = पूरी हो गयी। हीछा = इच्छा। देव मढ = मन्दिर। गोहने = साथ। दीन्ह चही = चढाना चाहती हूँ।

(७५)

कँवल इ० = पदमावती के साथ। फुलवारी = सखियाँ। फर = फल। धमारी = धमाल, होली की क्रीडा। जोहारू = अभिनन्दन। चहै = चाहती हैं, इच्छानुसार गाती हैं। मनोरा-झूमक = गीतो के प्रकार। आजुसाज इ० = आज जैसे साज का दूसरा कोई दिन नही मिलेगा। कै = करके। बारी = बाडी। संतब = समेटेंगे। झोरी = झोली भर-भरकर। पूजा = देवता की। बिसेसर = विश्वेश्वर, महादेव।

नोट—आध्यात्मिक अर्थ पर भी ध्यान दीजिये।

(७६)

जाबु = जामुन। बिरह इ० = जिसे मानो बिरह ने खूब जलाकर काला बना दिया था। बीनहि = चुनती हैं। ओनाई = झुक रही थीं। पंचम = पंचम राग। मादल = एक बाजा। बुक्का = चूर्ण उड रहा है। चाचरि = फागुन का नृत्य। कोड = कौतुक। भूला = सुध-बुध भूल गयी। सगरिउ = सारा ही। रात = लाल। राते इ० = ईश्वरीय लालिमा की ओर संकेत।

(७७)

पैसारा = प्रवेश। जोहार = प्रणाम। तुलानी = पहुँची। गुनि इ० = पर हे देव ! तुम गुणी-निर्गुणी सबको देनेवाले हो। मानि इ० = कलस चढाने की मानता करके। हींछा = इच्छा। पूजै = पूरी होगी।

(७८)

मढ = मन्दिर के। तंत = तत्त्व। जनु उन जोग-तन्त तन खेला = वे ऐसे जान पडते हैं, मानो स्वयं योग-तत्त्व अनेक शरीर धारण करके निकल पडा है। सिद्ध = तपस्वी। निसरे = निकल पडे। कहावा = कहा जाता है। गुर = उसे मानो किसी ने गुड देकर बहकाकर पागल बना दिया है। काहु = किसी ने। राता = सुन्दर। दसयें इ० = सत्य। जानौ = मैं समझती हूँ। भरथरी = भर्तृहरि। वै इ० = भर्तृहरि रानी पिंगला के लिए कजरी-वन गये थे। केहि कारन = किसके लिए, शायद ये भी किसी के लिए आये हैं। मूरति = रूप। मुद्रा = मुखाकृति। अवधूत = योगी।

(७९)

मढी = कुटिया। फेरा कीन्ह = आयी। अपछरन्ह = अप्सराओं के समान सखियों ने। नयन-कचोर = नेत्र रूपी कटोरे। मद = सुरा। सुदिस्टि = कृपा-दृष्टि। सहुँ = ओर। ढरे = ढले। नयन-कचोर इ० = पदमावती के नेत्र-रूप कटोरे प्रेम-रूप मद से भरे थे; योगी पर सुदृष्टि हुई, वे योगी की ओर ढले, योगी ने पदमावती की दृष्टि को अपनी दृष्टि में लिया, अपने नेत्रों को पदमावती के नेत्रों मे जमा दिया, और प्राण ही दे दिये, सुधबुध खो बैठा। जो मद चहा परा तेहि पाले = जिस मद की इच्छा थी उसी के पाले जा पडा। सुधि = होश। एक पियाले = एक ही प्याला पीकर। माति = मतवाला होकर। खेला = चल दिया। गहे हुत = लिये हुए था। मरतिहु बार = मरते समय भी उस किंगरी से वही पदमावती की धुन निकल रही थी। सूझ = दीखता है। करहिं

६० = ईश्वर के प्रेम मे मन को बांधते है ताकि अन्त समय भी उसी का ध्यान रहे।

(८०)

बखानू = प्रशंसा। सहस करा = सहस्र कलाओ युक्त। भानू = रतन-सेन। मेलेसि = लगाया। मकु = शायद। जागा = जाग जाय। अधिको सूत = और अधिक सो गया। मीर = ठडा। भीख ६० = हे जोगी ! तूने भीख लेना नही सीखा। घरी = प्राप्ति की घडी। भुगुति = भिक्षा की प्राप्ति। सूर = हे सूर्य (रतनसेन)। अहो ससि-राता = चन्द्र (पदमावती) से अनुरक्त हो तो। पयान = प्रस्थान। ताका = ताककर चले। कया = काया। भुँइ = पृथ्वी पर। बलि भीउँ = भीम के समान बली जीवात्मा। बैठारै = (काया) को उठा कर बिठावे, सचेत करे। बाज = बिना, सिवाय (बाह्य)।

(८१)

गयी हेराइ = अदृश्य हो गयी। दीठि परी = दिखायी पडी। उकठी = सूखी। बारी = बाडी। केइ = किसने। बसत ६० = बसते हुए बसत को उजाड दिया। चाँद = पदमावती। अथवा = अस्त हो गया। लेइ = लेकर, साथ। दवा = दवाग्नि मे। सिरावा = शीतल करे। मेरावा = मिलाप। दुहेला = दुखी। परजरे = जल उठे। आक = अक्षर जो पदमावती लिख गयी थी। उपदेस = ऐसा उपदेश कौन गुरु दे।

(८२)

रोवँ = आँसू गिरते है मानो रत्नो की माला टूट गयी हो, और रत्न गिर रहे हो। कूरा = अश्रु-रूपी रत्नो का ढेर। दीठि परी = दिखायी पडी। बिसवासी = विश्वासघाती। लगि = लिए। टेकेउँ = पकडा। सुआ क सेंवर = निराशा देने वाला। सेवा = सेवा से। ओद = गीला। बाउर = बावला। भार = दुख का भार। तरेंदा = तैरने वाला। पै = अवश्य।

(८३)

आनहिं काहू = किसी और को। का = क्या। संगी कया = काया को भी जो सदा संग रहती आयी है। हुता = हुआ था। हुता बिछोई = बिछुड़ गया। लाग = लगी। दूखन = यह मेरा ही दोष है, इसे क्या दोष? लाइ = लगाकर। होरी = अग्नि। होउँ = खुद ही जलकर राख हो जाऊँ। फाग इ० = तभी फाग मना सकूँगा, तभी आनन्दित हो सकूँगा। कित = किसलिए। सर = चिता। फिरि गा = लौट गया। बसंत = वसंत जैसा आनन्द। होरी घालिकै = शरीर को अग्नि में डालकर।

(८४)

हाँका = आवाज, ललकार। तेहि के = रतनसेन को। उहौ = वह हनुमान वीर भी। पलका = परली लंका (कल्पित स्थान)। मंडप = मन्दिर में। बोयी = बो दी है, लगा दी है। लगूर = पूँछ। राता = लाल हो गया। करमुँहा = काले मुँह का। बजरागी = वज्र जैसी अग्नि। बजर-अंग = वज्र के समान अंगों वाला होने पर भी। हौ दही = मैंने जलायी थी। वह इ० = वह मुझे जलाने को आ रही है। औटि = उबलना, जलना। गहि = पकड़कर।

(८५)

कुस्टि = कोढ़ी। गौरा = गौरी। धनि = स्त्री। अवतहिं = आते ही कहा। लागी = लिए, कारण। जरै इ० = रतनसेन की उक्ति। निस्तर = छुटकारा। एक बारा = एक बार में ही, एक बार जलकर ही। तै = तूने। निकसि रहा = बाहर निकल चुका है। घट = शरीर में। अधजर = आधा जला हुआ। सो इ० = उसे देर नहीं लगानी चाहिए, तुरन्त जला देना चाहिए।

(८६)

चाऊ = इच्छा। भाऊ = भाव। ओहि इ० = उसके (पदमावती के) और इसके बीच कुछ अन्तर है। बीच = अन्तर। पूजा = पूर्ण। तन-

मन = तन-मन से, पूर्ण रूप से । दूजा = भिन्न । धरा = पकड़ा । राता = सुन्दर । तो का = तुझे । सवद = प्रशंसा । सिवलोका = स्वर्ग में । तो= तेरे पास । अछरी = अप्सरा । कविलास = स्वर्ग । सँवरि = उसे याद करके । सर पूज = बराबरी को पहुँचती है ।

(८७)

भाव = अच्छी लगती है । मोहि = उसको याद करके मरने से मुझे ऐसा लाभ हो रहा है कि । ठाढ़ि =खड़ी हुई । गौरइ = गौरी ने । आछैं = रहता है । परिमल पेम = प्रेम की सुगन्धि । पुरवहु = पूरी करो । कि = या । आस = इच्छा । सूत-सूत भरि = बहुत लंबे-लंबे ।

(८८)

बूडि इ० = आँसुओं में सारा संसार डूब गया । मयारू = दयालु । भयेसि = हो गया । काई = मैल, काट, जंग । दरपन कया = कायारूपी दर्पण की । गढ़ = यह सिंहल का दुर्ग । बाँक = विकट । ओही कै छाया = उसी का प्रतिरूप, उसी के समान । पौरी = द्वार । ताका = उसका । सुठि = अत्यन्त । भेदी = भेद को जाननेवाला । चाटी = चींटी की तरह, धीरे-धीरे अध्यवसाय के साथ । पाइय इ० = हठपूर्वक युद्ध करने से उस पर अधिकार नहीं होता । जेइ = जिसने उसे पाया है उसने अपने आप को पहचानकर ही पाया है ।

मरजिया = मरजीवा, समुद्र में डुबकी लगाकर मोती निकालने वाला । धँस = धँसता है । सरग-दुआरी = सिंहलगढ़ का द्वार ।

नोट - आध्यात्मिक अर्थ पर भी ध्यान दीजिये ।

गढ़ = शरीर । नौ पौरी = शरीर के नौ रंध्र । पाँच कोतवाल = पंच प्राण । दसम द्वार = ब्रह्मरंध्र जो बन्द रहता है, योगी लोग योग-बल से उसे खोलते हैं ।

अर्थ के विशेष स्पष्टीकरण के लिए जायसी-ग्रन्थावली, प्रस्तावना, पृष्ठ ६०-६१ देखिये ।

(८९)

सिधि-गुटिका = महादेवजी की दी हुई सिद्धि की गुटिकाएँ (या गुटिका नाम की सिद्धि)। सिद्धि भइ=प्रस्थान किया। हूल = हल्ला (या आक्रमण)। खेंका = घेरा। छेंकि मेला = घेरा डाला, घेर लिया (या घेरकर डेरा डाल दिया)। खेला = चलकर आये हैं। बमीठ = दूत।

(९०)

उतरि = दुर्ग मे नीचे आकर। जोहारे = प्रणाम किया। खेलहिं = चले जायें। गढ इ० = दुर्ग से नीचे का भाग छोडकर अन्यत्र जाकर डेरा डालें। भुगुति = भिक्षा। आनु = लाओ। लागि = लिए। बार भा = द्वार पर आया हुआ। निरास = इच्छा-विहीन। दिढ इ० = अपने आसन पर जमा रहता है। गवनै = जावें। केहु = किसी के।

(९१)

धुन = निर्दोष व्यक्ति। अस = ऐसी बात। कहुँ = कही। जोग = उचित। हेरु = देख। कोह = क्रोध। कुँवर = राजा के सामन्त। माखे = क्रुद्ध हुए। कोइ इ० = देखते हैं कि किस ने योग लिया है और कौन उसे अब रखता है, अब योग छोड़कर सब भाग जायेंगे। रहो इ० = मन मे समझकर चुप रहो। पति = प्रतिष्ठा। काह = क्या। जूझें = युद्ध करने से। आछै देहु = रहने दो। चालहु = चलाओ, करो। तहँ इ० = वहाँ बैठे-बैठे पत्थर खाते रहे ऐसे जिसके मुँह में दाँत हैं? खाने को नही मिलेगा तो पत्थर थोडे ही खायेंगे, अपने आप चले जायेंगे।

(९२)

सरग = सिंहलगढ मे। लाये = लगा दिये। चाहा = खबर। काया = शरीर मे। पाया = पैरो मे। हँकारेसि = बुलाया। माँझी = केवट, मार्ग-दर्शक। नैना = नेत्र-जल। लिखनी = लेखनी। बरुनि = बरौनी। अकरथ = अकथनीय व्यथा का सन्देश।

(६३)

गिउ = गर्दन मे। राती = अनुरक्त। नीर इ० = गले तक पानी में होकर भी। धीर = धैय। सुना इ० = जब तक प्रिय का नाम नही सुना। हिय इ० = जब तक हृदय में प्रेम नही उत्पन्न हुआ। सुठि = अत्यन्त। अगिनि = अग्नि के समान दाहक। कया कर = शरीर का। चीरु = वस्त्र। सूख = सूखता है।

(६४)

फेरा कीन्ह = लौटे। निनारा = पृथक। आसा = इच्छा (पानी की)।

(६५)

गोसाईं = ईश्वर। वारा = द्वार (का)। पावै इ० = वह साँस पाय या निराश होकर मर जाय, तुम क्या कहती हो ? साँव = श्याम। राते इ० = लाल और काले दो कठे गले में बन गये (मिलाइये, राता-साँव कठ दुइ काँठा)। देहि पवारी = फेंक दे।

(६६)

राता = रात अर्थात् कल की भाँति। मरि कै = प्राणो की पर्वाह न करके, प्राण देकर। जोरा = जोडता है, करता है। हौ = मैं।

कनक-पानि = सोने के पानी की स्याही। आगी = अँगिया, चोली। नग = रत्न। तस कचन = . । भोरी = भोली (हौ का विशेषण)। बिसँभार = बेहोश। घाला = लगाया। मकु = शायद। तै = तू। भुगुति = भिक्षा। पराये हाथ = पराधीन।

(६७)

तहूँ = तुम भी यदि प्रेम को निभा सको (तो निभाओ)। केत = केतकी। महूँ = मैं भी। ओर = अन्त तक निभाओ। राहु = मछली (स० राघव), राघवमच्छ प्रसिद्ध है, अर्जुन का एक नाम राधावेधी भी कहा गया है।

(९८)

छार कर कूरा = राख का ढेर। नैन लाइ = प्रेम लगाकर। विमोही = मोह-हीन, निष्ठुर। ओही = उस प्रेम-पात्र को। मेला = डाले। गुरु = पदमावती। दिस्टि बिछाई = आँखें बिछाकर।

पौन इ० = मलय-पवन के समान। दीठि पावा = देखा। विहराना = बिखर गयी। चाद = पदमावती। सूर = रतनसेन। सासा = दुःख। सँमारा = याद किया। सरग-दुआरी = सिंहलगढ रूपी स्वर्ग का द्वार। बज्र = वज्र के समान किवाड। बाक = विकट।

(९९)

सबद = बात, सलाह। वेदी = वेदज्ञ। मालति = (१) मालती का फूल (२) पदमावती। रांघ = पास। पै = अवश्य। भवँही = फिरते हैं। ताका इ० = देखते हैं वही चले जाते हैं।

छेंकि = घेरकर। धरे = पकड लिये। बिसमौ = विस्मय, विषाद। एकौ = एक भी। जीवा = जी में। मेली = डाली। फाद = फंदा। प्रेमपथ = प्रेम के मार्ग पर प्रयाण किया था। गुरु इ० = गुरु को मैंने नही जाना। अंतर-पट = पर्दे। परछाही = द्वैत-भाव। मारैं = चलावे। मोरौ = मोडूँ।

(१००)

पदमावती = इ० कमल और चद्र के समान शोभावाली पदमावती। हँसै इ० = हँसती है तो मानो फूल झडते है, रोती है तो मानो मोती गिरते है। सुरुज = रतनसेन। राहू = ग्रहण, बधन। कँवल = पदमावती। अगाहू = आगम-ज्ञान। बिरह इ० = कठिन विरह-रूपी अगस्त्य उदय हुआ (अगस्त्य का तारा वर्षा की समाप्ति पर उदय होता है)। बिसमौ = कठिन। जस = मानो। कोई = कुमुदिनियाँ, सखियाँ। कला = समान। सहै = सहना पडे। सर = चिता।

विधि = ईश्वर ने। ऊभि = बन्द हो गया। गोत = मकट। बुलाइ = बुलाओ। गहन = प्रिय का अदर्शन रूपी ग्रहण।

(१०१)

कँवलहिं = पदमावती रूपी कमल को। केसर-बरन = हृदय में केसर के रंग की गहरी पीडा है (पीडा से हृदय पीला पड गया है)। दगध = जलन, संताप। जरै = जो जलती है। आग = ज्वाला। पैठ = भीतर घुस गया है। वजरागी = वज्र के समान भयकर अग्नि।

(१०२)

वारी = वाडी। दुख = दुखी। पेम उ० = प्रियतम के प्रेम की बेल। मुये = मरने पर भी। हुँत = से। खेवा = नाव को खेना। दमन = दमयती। साल = सालता है। मेरवा = मिलाया। भकनी = भक्ति-वाण। मुकुत होना = छूटना। भानु = रतनसेन।

(१०३)

आवत बार = आते ही। बार = समय। धरा इ० = चोर कहकर पकड लिया। देइ = देने को। अब इ० = अब तुम प्राण हो गयी हो, वह योगी काया-मात्र है (उसका प्राण अब उसके शरीर मे नही है)। कया इ० = काया के रोग को रोगी ही जान सकता है, काया के कष्ट का अनुभव काया को नही होता जीव को ही होता है, अब रतनसेन की काया को जो कष्ट दिया जायगा उसका अनुभव उसे नही, तुम्हे होगा, क्योकि उसका जीव तो तुम ही चुकी हो।

सूर इ० = रतनसेन के सकट से पदमावती दुखी हो उठी। मोहि = मेरे। नेहा = प्रेम के कारण। परेवा = पक्षी-रूप प्राण। एकै = एक साथ। तुम्ह = अर्थात् रतनसेन।

(१०४)

तपा = तपस्वी, योगी। आने = लाये। सूरी = शूली। जुरे = इकट्ठे हो गये। सिघलपुरी = सिहलनगर के लोग। देइ कहँ = सूली देने के

लिए। काहुहि लागि = किसी के लिए। सो = वह (प्रियतम को) । जब इ० = ज्योंही मारने के लिए बाजा बजाकर संकेत दिया गया। मसूरू = मसूर के समान राजा रतनसेन। चौंकु इ० = भौचक्का रह गया, मानो ऊपर बिजली गिर पड़ी हो। खोजू = खोज करो, पता लगाओ। मकु = कदाचित् । ठाँव = स्थान, मौका । भाव = कारण।

(१०५)

गारि इ० = गाली देने से क्रोध नहीं होता। मारि = मारे जाने से। बसा = तुला हुआ हैं। गाढ = संकट। टरा = हिल उठा। गहन = ग्रहण। गहा = पकड़ लिया। वह मूरति = रतनसेन। सती = सतवाली। असूझ = अपार। दैउ क दसा = भाग्य की गति। दहुँ = न-जाने।

(१०६)

सदेस = पदमावती का (पिछले खण्ड के अन्त मे देखिये)। राजा-जिउ = राजा रतनसेन के प्राण। खोवा = नाश कर रहे हैं। दसौंधी = भाटो की एक जाति। भाट दसौंधी = महादेव। भये इ० = प्राणों पर तुल गये (और बोले)। राव = गन्धर्वसेन। चलि इ० = अब वहाँ चलकर देखें कि जहाँ राजा बैठा है।

(१०७-१०८)

राजा = रतनसेन। औंधी = उलटी, नीची। मेलि कै = रखकर। आछै = रहता है। पेटारी = पिटारी मे। बसू = आनन्द की बसी। ठाढ खड़े हुए। बरह्याऊ = दीर्घायु का आशीर्वाद (बाँये हाथ से आशीर्वाद देना अशिष्टता-सूचक और अपमान-व्यंजक है)। असाई = अशिष्ट। जूझ = युद्ध। छाजा = शोभा देता है। बूझ = समझ। बार तोहि = तेरे द्वार पर। बाचा = बचा। भीउ = भीम ; कुम्भकर्ण की खोपड़ी पड़ी हुई थी, वर्षा में उसमें पानी भर गया, एक बार भीम वहाँ से निकला, उसने उसे सरोवर समझा और नहाने को उतरा पर गहराई इतनी थी कि भीम

उसमे डूबने लगा, तब पास की कुछ स्त्रियो ने उसे बाहर निकाला (एक प्रसिद्ध लोक-कथा)।

(१०९)

ओहट होउ = हट जा। जोरा = बराबर। पारा = सका। नाहिं इ० = इतना ही समझो कि अभी तक शूली पर चढाकर इनके प्राण नही ले लिये। हीछा = इच्छा। साध = इच्छा (प्राण गँवाने की)। पतग इ० = दीपक मे गिरनेवाले पतिगे की भाँति। तेहि = उस (रतनसेन) को। छार इ० = सारा जगत् धूल हो जाय। चालौं = चलाऊँ।

(११०)

दर = सेना। जोगी धरि मेरे इ० = योगियो को लेकर पीछे कर दिया। मेरे = मेले, डाल दिये। उरए = उत्साह से भरे। माल = मल्ल, देवताओ और सिद्धो की सेना के वीर। काछे = सन्नद्ध हुए। दर इ० = कटक के कारण जगत् में और कुछ भी दीख नही पडता। कहत बात = बात कहते-कहते। अस कै इ० = इस प्रकार काम करो। जूह = यूथ। पेलहु = सामने ठेल दो। जस = ज्योंही। तस = त्योंही। बगमेल = सवारो की पक्ति का धावा। अगसारी = अग्रसर, आगे। लगूर = पूँछ। चलायी = फेंक दी। खोज = पता, निशान। पीरा = पीडा। रोज = रोना।

(१११-११२)

ईसर = महादेव। पुरे = पूरे। जुरे = इकट्ठे हुए। बारि = कन्या, लडकी। गोसाई केर = मालिक की, आपकी। बाजन = बाजे। ओनाहँ = उमड रहे हैं, हो रहे है।

(११३)

नेवत = न्योता। कापड = कपडे (पहरावनी के)। लाये = लगे हुए। नइ = झुककर। मसियर = मसालें। नखत इ० = नक्षत्र और तारागण के समान। गढी = निर्मित की (ब्रह्मा ने)।

(११४-११५)

बजावति = बाजे बजाती हुई। बैठि = प्रविष्ट हुई, या बैठो। खंडवानी = शर्बत (खाड + पानी)। कुहँकुहँ-पानी = गुलाब-जल। बहुरा = लौटे। भूला = मुग्ध हुआ। चार = रस्में। जेत = जितना।

(११६)

गोसाइ = ईश्वर, मालिक। अहही इ० = सेवा में हैं। छार = राख, मलिनता। कै मानुस = सच्चा मनुष्य बनाकर। नातरु = नहीं तो। खेह इ० = पैरों की धूलि। केहि जोग = किस लायक।

(११७-११८)

चितउर = चित्तौड़ में। पथ हेरा = प्रतीक्षा करती थी। कीन्ह न फेरा = नही लौटे। नागर = चतुर प्रियतम। तेइ = उस नारी ने। मोर = मेरा। पिउ इ० = प्रियतम न जाते, प्राण भले ही चले जाते। नरायन = नारायण, विष्णु। बावन करा = वामन-रूप। छरा = छला। करन = राजा कर्ण। छद्र = छल। झिलमिल = कवच। इन्द्र = इन्द्र ने (कथा महाभारत में देखो)। मानत भोग = भोगो को भोग रहा था, आनन्द मना रहा था। गोपिचन्द = गौड़ का एक सुप्रसिद्ध राजा। अपसवा = चल दिया। जलधर = जलधरनाथ जिसके उपदेश से गोपीचन्द जोगी हो गया था। कुस्न = कृष्ण। अलोपी = अदृश्य। सारस इ० = सारस पक्षी की जोडी को किस व्याध ने मारकर छीन लिया (मेरी जोडी किसने छीन ली)। पिंजर = अस्थि-पिंजर। आहि = आह, ऊँचा साँस। लागि = कारण। हंस = (१) हंस पक्षी (२) जीव।

(११९)

पाट-महादेइ = हे पट्टमहादेवी, प्रधान रानी के लिए संबोधन-शब्द (यहाँ नागमती)। न हारू = निराश मत हो। समुझि इ० = जी में समझो। चित इ० = चित्त में चेत (होश) को संभालो। भौंर इ० = भौंरा कमल के पास जाकर उससे मिल जाता है पर कुछ समय बाद मालती के

प्रेम को याद कर मालती के पास लौट आता है, वैसे ही रतनसेन पदमावती से जा मिला है पर तुम्हारे प्रेम की स्मृति उसे तुम्हारे पास खींच लावेगी। पपिहै = पपीहे को। टेकु पियास = वैसे ही प्यास को कुछ समय तक रोको। बाघु इ० = मन को स्थिर रखो। थीति = स्थिति, स्थिरता। मेहा = मेघ, तब बादलों के कारण धरती और आकाश फिर मिल जाते हैं, मिलाओ, धरति-गगन मिलि एक। बेली = लता। जनि = मत। अस = ऐसा, निराश। बारी = (१) बाला (२) बाड़ी। सँवारी = सवरकर, सजकर, हरा-भरा होकर। अकम = अक में। तपनि = गर्मी, ताप। पलुहत = हरेभरे होते हैं। मृगसिरा = मृगशिरा नक्षत्र में अर्थात् जब सूर्य मृगशिरा नक्षत्र में हो (जून का दूसरा-तीसरा सप्ताह), इस समय बराबर तेज हवा चलती रहती है। अद्रा = जब सूर्य आर्द्रा में हो (जून का अन्तिम और जुलाई का प्रथम सप्ताह), इस समय वर्षा होती है।

(१२०)

चढा = आरम्भ हुआ। दुन्द = द्वन्द्व। दल बाजा = सेना निकट आ पहुँची। धूम = धूम्र रंग के। साम = श्याम। धौरे = सफेद। धजा = (सेना का) झडा। बीजु = बिजली। ओनयी = उमडी। फेरी = ओर। हौं = मुझे। घट = शरीर। मन्दिर इ० = मकान पर छप्पर कौन डाले, (वर्षा के पूर्व मकान को ठीक कर लिया जाता है, छप्पर बदल लिया जाता है)। गारौ = गौरव। बाहिरै = बिना (राजस्थानी बायरो)।

(१२१)

भरनि = मूसलाधार वृष्टि। बिरह झुरानी = विरह के दुख से सूख गयी। सरेखा = चतुर (बावला का उलटा)। हरियरि = हरियाली से युक्त, हरी हरी। चोला = वस्त्र। भँमीरी = एक बरसाती पतिंगा, जो निरन्तर फिरता रहता है। अगम = अगम्य। बिच = तुम्हारे-मेरे बीच में। घन = सघन। बन ढाख = बन के गहरे पेड। किमि कै = कैसे।

(१२२)

दूभर = जो कठिनता से बिताया जा सके। भरौ = बिताऊँ। तरासा = डराता है। गरासा = ग्रास करता है। मघा = एक नक्षत्र। ओरी = छप्पर की ओलती, जहाँ से छप्पर का पानी नीचे गिरता है। धनि = प्रियतमा। भरे = पानी से भरे। आयेन्हि = आये। झूरी = सूख गयी। अपूर = भरपूर। अवगाह = अथाह। बूडत = डूबती हुई को। दे टेक = सहारा दो।

(१२३)

लटा = शिथिल हो गया, क्षीण हो गया। पलुहै = पल्लवित (हरी-भरी) हो जायगी। उतरा चीतु = चित्त निराश हो गया है (या, तुमने चित्त से उतार दिया है) मया = दया। चित्रा = एक नक्षत्र। मीन कर मित्र = जब सूर्य चित्रा मे आता है तब वर्षा का जल स्वच्छ हो जाता है (अक्तूबर का पूर्वार्ध)। अगस्त्य = एक अत्यन्त चमकीला तारा जो आश्विन में दिखायी देने लगता है। हस्ति-घन = बादल के समान हाथी। तुरय = घोड़े। पलानि = जीन कसकर। रन = वर्षा के बाद राजा लोग विजय-यात्रा को निकलते थे। भँवरि = याद कर। कुरलहिं = कलरव करते हैं। देखाये = दीख पड़े। फिरे = लौटे। सालै = सताता है, पीडा करता है। घाय = घाव। बाजहु = भिडो (या, पहुँचो)। सदूर = सिंह।

(१२४)

बिरहै = विरह ने। करा = कला। जनहुँ = मुझे ऐसा जान पड़ता है मानो। सेज = शय्या। अगिदाहू = अग्नि-दाह। खड = देश, दिशा। परब = त्यौहार। देवारी = दिवाली। झूमक = दिवाली के गीत। मोरी मोड़कर। झुरावँ = झूरती हूँ। पूजा = पूरा हुआ। मानै = मनाती हैं। रही छार इ० = सिर पर धूल डाल रही हूँ (होली खेल रही हूँ)।

(१२५)

गाढी = दुखदायी। जनावं सीऊ = शीत मालूम होता है। औरं रंग = सुन्दर वस्त्र पहने। पलटि इ० = जो छोड़कर गया तो लौटकर नहीं आया। फिरै = लौटे। बजर अगिनि = वज्र के समान अग्नि में। जारा जला दिया। सुलगि-सुलगि = सुलग सुलगकर। छार = राख। दगधै = जलता है। दगध = जलन। भसमन्तृ = भस्म। धनि = प्रेयसी। तेहिका इ० = उसका धुँआ हमें लगा उसी से हम काले हो गये हैं।

(१२६)

लंका दिसि = दक्षिण में जहाँ शीत कम पड़ता है। चापा = दबाया गया। सीऊ = शीत। कोकिला = विरह में जलकर कोयल के समान काली बनी हुई। जड़काला = जाड़े का मौसम। पहल-पहल = ढेर-का-ढेर। झापै = ढकती है। माहा = माघ में। रस-मूल = रस का मूल। महवट = माघ की झड़ी। सर-चीर इ० = बाण का घाव सा। चीर = चीरा। झोला मारइ = जलाकर सुखा देता है। पटोरा = पट्टकूल। गीउ = ग्रीवा। डोरा = (१) एक गहना (२ डोरे की तरह क्षीण। तिनउर = तिनकों का पुराना ढेर। टोल = हिल रहा है। झोल = राख उड़ाना।

(१२७)

जस इ० = पीले पत्ते की तरह। झरहिं = पत्ते गिरते हैं। ओनत = अवनत, फूलों से झुकी हुई। फागु = फाग खेलती हैं। चाचरि = चचंरी, होली का नाच। लाइ दीन = लगा दी, जला दी। यह = यह बात। निहोरे = काम। मकु = शायद। पाव धरैं = पैर रखे, चले, और इस प्रकार मैं उनके चरणों मे लग सकूँ।

(१२८)

धमारी = वसंत का नाच-गान। लेखे इ० = मेरे हिसाब से, मेरे लिए। बौरे = बौरे हुए, मंजरी-युक्त।

चोग्रा = एक सुगन्धित पदार्थ। सूरज = सूर्य भी जलने लगा और उसने ठंडे हिमालय की ओर रुख किया है; सूर्य उत्तर की ओर बढता आ रहा है, मानों गर्मी मे डरकर हिमालय की शरण लेने के लिए। बिरह इ० = विरह की वज्र के समान अग्नि ने मेरी ओर अपना रथ हाँक दिया है। वजागिनि = वज्र की सी अग्नि। छाँह = शीतलता। अंगारन माँहा = मैं अगारो मे पडी हूँ। आइ इ० = आओ और मुझे जलती हुई आग से शीतल फुलवारी बनाओ। लागिउँ जरै = जलने लगी हूँ। भारू = भाड़। भूँजेसि = भूनता है। तजिउ = छोड पाती हूँ। बारू = भाड की बालू। घटत = सरोवर का पानी जैसे घटता जाता है वैसे ही मेरा हृदय घट रहा है। बिराई = फट रहा है, जैसे सरोवर का तला पानी घट जाने पर फट जाता है। टेका = सहारा दो। दीठि = कृपा-दृष्टि (दर्शन) रूपी वर्षा की प्रथम झडी से फटे हुए हृदय को मिला दो, जैसे पानी पडते ही फटा हुआ सरोवर का तला मिलकर एक हो जाता है। मानसर = मानसरोवर मे।

(१२६)

धुवारा = धुएँ। हनुमन्त होइ = हनूमान के समान। पलका = परली लंका, लंका को जलाकर परली लका तक जा पहुँची। दहि = जलकर। भइ = मैं हो गयी। साम = काली। कालिंदी = यमुना (के समान) । मंदी = धीमे-धीमे जलनेवाली। आँधी = (१) तूफान (२) आँखों में अन्धापन। बाँधी = बँधी हुई। मुहमद = कवि का नाम। लागि = लिए।

(१३०-१३१)

परि = समान। जाई = बीतते हैं। सेराई = बीतता है। कोइला = कोयल की तरह काली। जारा = जला दिया। जुडावहु = शीतल करो। हारि परी = थक गयी, निराश हो गयी। झाँखि = झीखकर। बूझै = पूछने को। पंखि = पक्षी। नियर = निकट। जाइ जरि = जल जाता है। होइ निपात = जलकर गिर पडता है।

(१३२)

बोयी = मानो बहुत सी गुंजाएँ बो दी। करमुखी = काले मुख वाली। राती = लोहू से लाल। सेराव = शीतल करे। ताती = तप्त। बनवासी = वह वन मे भटकती हुई नागमती। परास = पलाश। निपाते = पत्रहीन। बिंब = बिंबाफल। गोहूँ = गेहूँ। बाता = उस देश की बात। श्रोहि = उस। देसरा = देसड़ा। हेवन्त = हेमन्त। जेहि सुनि = जिन्हे सुनने से विरहातुर होकर।

(१३३)

कारन = करुणा। मन इ० = मेरे मन और चित्त से वह प्रियतम नही उतरता। भोरे = भूलकर भी। चुकि रहा न = समाप्त होने में नही आता। सेवाति = स्वाति-जल। सीपा = सीप की भाँति आतुर। नाहू = नाथ। हुँत = से। काहू = किसी ने। जगम = योगी-विशेष। चक्र = दिशाएँ। टेक = ग्रहण करता है, ले जाता है। दंड = घड़ी।

(१३४)

बीरा = हे भाई। लागै = लगे, प्रभावित करे। पर = दूसरे की। भिउँ होइ = भीम के समान। अगवै = अंगीकार करे, अपने पर ले। दाहा = दुःख। चाहा = खबर। किंगरी = योगियो का एक बाजा। पूरी = बजायी। पाँवरि = पैर की जूती। बहुरा = लौटा। उडि गा छाला = उसके नाम की माला फेरते-फेरते उंगलियो की खाल उड गयी।

(१३५)

घर-घरनि = घर की गृहिणी, मालकिन। आपु इ० = खुद जीव पाकर दूसरे के जीव को भी जानो कि वह कैसा व्यथित होगा। करु जिउ फेरा = प्रिय को दिखाकर मेरा प्राण लौटा दे। काज = काम। वारी = हे वाला। सौंह = सामने। चाहनहारी = देखनेवाली हूँ, देखते रहना चाहती हूँ। पाँय = पैरो पर।

(१३६)

उठी आगि = विरह-संताप से। सगरी = सारे। बजागि = वज्राग्नि। ठेघा = ठहरा, टिका। साम = श्याम (हेतूत्प्रेक्षा)। लूक = उल्का, टूटते तारे। टूटे = वेग से गिरे। दाध = जलन। रेहू = खारी मिट्टी, राख। डफारा = चिल्लाया।

नोट—[आध्यात्मिक अर्थ]।

(१३७)

फेरा कीन्ह = घूमता हुआ आया। भाखा = बोली। अहा = था। विहगम-नामा = विहंगम नामवाले अर्थात् पक्षी (विहगमाख्या.)। सामा = काले। डाढ़े = जल गये।

(१३८)

धुंध बाजा = अन्धकार छा गया है। कोइल-बानी = कोयल के रँग की, काली। छारा = राख। झारा = ज्वाला। गुना = विचारा। विधि = हे विधाता। पखी-वेसा = पक्षी का रूप धारण किये। महूँ = मैं भी तेरी ही तरह जलते हुए दिन बिताता हूँ। रहहिं = रहती हैं। सदेसी = सँदेश लानेवाला। तेहि इ० = जिसके साथ सदेश कहलावें। सरग-सँदेसी = स्वर्ग का सदेश देनेवाले (या, ऊपर बैठकर सँदेश सुनानेवाले)।

(१३९)

टेकि = पकड़कर। गोहरावा = पुकारा। अलोप = अदृश्य। पखी इ० = पक्षी के नाम पर पाँख भी नहीं देखी। फिरा = लौट गया। साखा = सशय, दुःख। जेति = जितनी भी, सभी। अमिय-बचन = अमृत जैसे मधुर वचनों से। जिउ तत = जी की बात। ओहि = उसका। तत-मत = तन्त्र-मन्त्र, किसी प्रकार का उपाय।

(१४०)

बारा = द्वार पर। जहँ ताईं = जहाँ तक, जितनी, आपकी जितनी प्रशंसा है वह सब। काच = कच्चा सोना। जोति इ० = जब आपने ज्योति दी। परेवा = पक्षी, दूत। चलि आवा = चला आया है। लिखि पठइत = लिख भेजा है कि। परावा = पराया। भोर = (१) असावधानी (२) सवेरा। रहहु इ० = गधर्वसेन का वचन। महि-गगन इ० = जब तक पृथ्वी और आकाश है। महि = पृथ्वी पर। हम-आउ = हमारी आयु लेकर।

(१४१)

सँवारी = समर्थन कर उठी। अनु = (अनुमोदन-सूचक अव्यय) हाँ, ठीक। विनती = हमारी विनय है कि। पति = बात मानकर इनकी प्रतिष्ठा रखिये। लाइ = लगाकर। दीपक = ... । लेसी = जलाकर। दिवस देहु = दिन निश्चय कर दो। आउ = आयु। सबहि इ० = सबका ऐसा विचार हुआ। गवने कर = चलने की तय्यारी। सिद्धि इ० = सिद्धिदाता गणेश को मनाते है। विधि = हे ईश्वर। पुरवहु = पूर्ण करो।

गवन-चार = चलने की तय्यारी। धसकि = दहल। गहवर = गला भर आया। छाडिउँ = छोड रही हूँ, छोड़ूगी, छोडना पडेगा। तजि = सबको छोडकर। मिलहु = मिल लो। गिउ = गर्दन में। मेला = डाला। चलायी = ले जा रहा है।

नोट—आध्यात्मिक अर्थ पर भी ध्यान दीजिये।

(१४२-१४३)

चालू = प्रस्थान। समदि = मिलकर, विदा लेकर। बिवाना = पालकी। तुलाना = पहुँचा। टेक = रोक सकता है। भरी = अक मे भरी। फेरा = लौटाया। गुरेहा = साक्षात्कार। गवन = गौना। साजा

= सामान। उहै = ऐसा जो वही (राजा गन्धर्वसेन) दे सकता था। लागि ज लेखै = हिसाब करने लगे।

नोट—[आध्यात्मिक अर्थ]।

(१४४)

बाउ = वायु। उतराहीं = उत्तर दिशा में। उलथाना = उछलने लगा। सरग = स्वर्ग, आकाश। अदिन = बुरा दिन। काऊ = कभी। बाऊ = हवा में। ताके = ताककर, ओर। कुपंथ = भटक गये। लंक = लंका (सिंहलद्वीप नहीं)। एहु = यह भी। घाटा = नल्लों पर। बाटा = रास्तों पर। मारि इ० = फिर उनको मारकर। खंड = टुकड़े। बरम्हंड = आकाश।

(१४५)

गहि = लेकर रख दी हो। जायी = जा रही थी। लच्छि = लक्ष्मी, सम्पत्ति। जेहि भेंटी = जिसकी उससे भेंट होती है उसको। अही = थी। समुझि परा = दिखायी पड़ा। बोलि कै = पति का नाम लेकर। ओही = उसे। तिरिया!—तिरिया के आगे सम्बोधन का चिह्न नहीं होना चाहिए। आगर = बढ़कर, श्रेष्ठ। लागि रहा = अनुरक्त हो गया है। धनि = हे नारी।

(१४६)

देख = देखती है। चेती = चेत करके, होश में आकर। कँवल इ० = जो कँवल के साथ कुमुदिनियों की तरह मेरे साथ थी। गरुअ = गौरवशाली (सुमेरु से भी)। सवारा = बनाना। बेकरार = दुखी। चूरि कै = तोड़कर।

(१४७)

सेंदुर = सौभाग्य का सिंदूर। साथी इ० = जो अर्थ-अनर्थ का, सुख-दुख का, साथी है उस प्रियतम का साथ, यदि सको तो, निभाओ। जो इ० = हे जीव! यदि जीव जला देने से भी प्रिय मिलें तो तू जल जा और प्रिय से मिल।

(१४८)

पाहुन इ० = अतिथि को सब कोई पानी और पवन ही देते हैं। जीऊ= पदमावती के जीव को समझाने लगी। जसि = जैसी। तहूँ = तू भी। बारी = बेटी (तू भी मेरी तरह ही समुद्र की बेटी है यह समझ ले)। लेउँ। खटवाटी = खाट की पाटी पकड़ूँगी, रूठूँगी। जेंवै = जीमती है। बारी = पदमावती। सुख सोवा = सुख से सोना। चालि = चलायी। घट = भीतर।

(१४९)

सँदेसी = सदेश देनेवाला कौआ भी नहीं मिल सकता था। गाढे = सकट में। रतन-पदारथ = पदमावती। मुये = मरने पर। ररि = रो-रो कर, पुकार-पुकारकर। रहै न जाइ = रहा नहीं जाता। पूजी = पूरी हो गयी। दुख सौं = दुख सहकर।

(१५०)

घटा = घटित हुआ। परिहँस = ईर्ष्या, दुःख। कौनिउ = किसी लाज के कारण। मांझे = शरीर में। करत न छाजू = सो कोई कर नहीं सकता था। दुहेल = (अपना) कष्ट।

(१५१)

अँजोरा = प्रकाश (हँसी का)। तोर इ० = जो तेरा है वह तुझ से परे और अलग नहीं। परे = दूर। बेरा = अलग। बूझि = समझ। तहूँ = तू ही। बैसाखी = लाठी। टेकु = पकड़। लुबुधि = ललचाकर। ना बाट = रास्ते पर चल पड़ा।

(१५२-१५३)

परेवा = पक्षी की तरह। छरै = छलती है। अगमन होइ = पहले आकर। छांह इ० = राजा के जलते हृदय में छाया की, राजा पदमावती को देखकर प्रसन्न हो उठा। पानि इ० = प्यासे मरते को पानी पिलाया।

नैनन्ह् = नेत्रो से पैरो की धूलि साफ की। ससि = पदमावती का मुख। कँवल = राजा के चरण। दुन्द = झंझट।

(१५४)

नग = रत्न। सरवन = कानो। पखी कर बसू = पक्षी का वश, पक्षी। सावक-सादूर = सिंह का बच्चा। परस = पारस। अगुवा = पथ-प्रदर्शक। भेंट-घाटि कै = मिल-मिलाकर। समदि = विदा लेकर। जगनाथ = जगन्नाथ-पुरी।

(१५५)

बहुरा = लौटा। अगम = शकुन। दहि = जलकर। पलुहायी = हरीभरी हुई। सौंधि = सुगधि। करिल = कल्ला। कोप = कोपल। हुलसि = उल्लसित होकर। हिलोरै इ० = लहराने लगा। अहै उवा = उदित हुआ है।

(१५६)

बखानी = प्रसिद्ध। जोहारा = अभिवादन किया। बोहारा = बुहारा, बटोरा। सब दिन = दिन भर। सौंह = सम्मुख। दीठी = दृष्टि। लागी = लिए।

(१५७ १५८)

पलुहायी = हरी-भरी की। मेर = मिलाप। सुठि = बहुत। लोनी = सुन्दर। सरवरि = बराबर। चन्द्रावली = एक गोपी। सरि इ० = छाया की बराबरी को नहीं पहुँच सकती। बिसैंध = दुर्गन्धित, मछली की गन्ध वाला। लावा = लगाया। भाव = अच्छा लगता है। ओहि ठाव = उस जगह, पदमावती के पास।

तूरहिं = तोडती हैं। रहस कोड = आनन्द-कौतुक। सुख छाह = सुख की छाया में।

(१५६)

चेतन = चतुर, समझदार, ज्ञानी। ग्राऊभर = ज्योतिषी (पाठान्तर ग्राऊ सरि = ग्रायु भर)। होइ इ० = जब बुरी घडी ग्राती है तो चेतन भी चेत-हीन हो जाता है, जब बुरा वक्त ग्राता है तो बुद्धिमान भी बुद्धि खो बैठता है। दुइज = द्वितीया का चन्द्रमा, नया चन्द्रमा। दिसा = ग्रोर। बाउर = बावला, ग्रज्ञान। सरेखा = चतुर, ज्ञानी। भुजा टेकि = दृढता के साथ। डोला = इधर-उधर हो जाय, भूठ निकले। बर = बल। बर खाचा = बलपूर्वक कहा। जाखिनी = यक्षिणी। दुइज = नया चन्द्रमा। वेदपथ = तान्त्रिक साधना वेदसमत नही मानी जाती। भूलहिं = भटकते हैं, धोखा खाते है। बन भाँझ = गहरे जगल मे मार्ग भूलकर।

(१६०)

परा नहिं इ० = हमें धोखा नही हुग्रा है। कौन इ० = इतनी ग्रधिक प्रत्यक्ष बात को कौन पी जा सकता है। घरी वह पूजी = जब वह घडी पूरी हुई, जब समय हुग्रा। ग्रब कस इ० = ग्रब यह कैसा कचन कचन हो गया ग्रौर काच काच हो गया। तेज देखत = ग्रधिक तेज देख पडती। छिस्टिबध = इन्द्रजाल। चेटक = जादू, माया। चाँद = (१) चन्द्र (२) पदमावती। राहु = ग्रलाउद्दीन की ग्रोर सकेत। राजबार = राजा के द्वार पर, राज-दरबार मे। जेहि टोना इ० = जो जादू-टोने की खोज में रहता है।

(१६१)

कसे बानि = रग के कसने पर, परीक्षा होने पर। देसू = देश मे। धनि = पदमावती। उतारा = दान। पँवारा = डाला, फेंका। मारा = माला। बिसँभर = बेसुध। सँभार = होश।

(१६२)

दीन्ह = बद कर दिया। दोखा = कलक लगेगा। सँदेता = सकट मे। पाहाँ = पास में। धौराहर = महल। ऊइ = उदय होकर। ग्रँजोरी

= प्रकाश। जोरी = श्यामा। करमुँहे = काले मुँह वाले, कलमुँहे (गाली), नेत्रों में काली पुतली है इसलिए वे सचमुच में भी कलमुँहे हैं। कित इ० = वे कलमुँहे नेत्र क्यों हुए, जिनके रास्ते से मेरे प्राण हरे गये, हृदय में स्थित प्राणों को नेत्रों के रास्ते निकालकर पदमावती ने हर लिया। सरवर इ० = पानी के बिछुड़ने पर जैसे सरोवर में दरारें पड़ जाती हैं।

(१६३)

देतसि = चेत कर। जेहि = जिसने मारा न जाय। काहु के रूपा = किसी के समान, कोई उसकी उपमा नहीं। एता = इतना। संसौ = संशय, सन्देह। चलि इ०=चलो जल्दी चल दें। अलि = भ्रमर के समान रसिक। होइ = सूर्य के समान। रतन = रत्न के समान रतनसेन।

नोट—[आध्यात्मिक अर्थ]।

(१६४)

ठाढ़ झुराहिं = खड़े-खड़े सूखते हैं, खड़े-खड़े बढ़ पाते हैं। जोहार न पावहिं = जुहार नहीं कर पाते, सलाम करने को भी पास नहीं जाने पाते। नेवान = बिना। पातसाहि इ० = बादशाह सब जाने बूझे हुए था, सब कुछ जानता-बूझता था। सरग-पतार = स्वर्ग और पाताल की बातें। जत = जितने। चाह = खबर। मया इ० = आपके राजच्छत्र की सुख-मयी छाया सदा बनी रहे।

(१६५)

मया = दया। हँकारी = बुलाकर। हुत = था। राघव पाहा = राघवचेतन को। भानु इ० = सूर्य के समान युग-युग राज्य करें। भानु कै करा = सूर्य के समान। पूजै = पहुँचता है, बराबरी कर सकता है। ससार की शिरोमणि। अछरी = अप्सरा का सा।

(१६६)

परगसा = प्रकाश कर उठा। काच जोग = जो व्यक्ति काँच के योग्य है वह यदि किसी से कुछ सोना पा लेता है तो। सुमेरु चढावा = पहाड़

पर चढा देता है। नाव इ० = तुम्हारा नाम भिखारी है, तुम भिखारी कहे जाते हो, अर्थात् भिखारी हो, इस कारण तुम्हारे मुँह मे जीभ अभी तक बची हुई है, नही तो इस असत्य कथन के कारण वह कभी खीच ली जाती। जगत उपराही = जो जगत मे सब से बढकर है। देखि इ० = लावण्य को देखकर उसमे नमक की तरह गल जाय। चक्कवै = चक्र-वर्त्ती। मोरे = मेरे यहाँ। कविलास = स्वर्ग मे।

(१६७)

अनु = और, हाँ, ठीक है। वाजा = जा भिडा, जा पहुँचा। छूना = फिरा। उदय अस्त = जहाँ सूर्य उदय होता है वहाँ से जहाँ वह अस्त होता है वहाँ तक, समस्त ससार मे। दीप = द्वीप। काया इ० = उसकी देह खरे उज्ज्वल सोने की सी है। ताहि = उनमे। वासा = सुगन्धि। सभागा = सौभाग्यशाली। चितेरे = चित्रकार। लिख पारे = चित्रित कर सके। सुरुज = सूर्य की किरण जैसी उज्ज्वल है उससे भी अधिक उज्ज्वल उसका शरीर है। सौंह = सामने। जाइ करि = की जाती है।

(१६८)

बैराग = अरुचि (अन्य पुष्पो के प्रति)। पान दीन्ह = विदा का पान दिया। पहिरावा = विदाई की पहरावनी दी। गज-हस्ति = बडे हाथी। सरजा = एक सरदार (सरजा शब्द का अर्थ सिंह होता है) । बरियारू = बलवान। कला इ० = अनेक चतुराइयो के साथ लिखी गयी थी।

(१६९)

जानो = मानो। दैउ = आकाश मे । सारदूल = मेरा शार्दूल । धरि = पकड कर। पुहुमी-पति = पृथ्वीपति। मोहि तें = मुझ से बढकर। खसि = गिरकर । हमीरु = रणथभौर का प्रसिद्ध चौहान-वशीय राजा जिसके लिए यह उक्ति प्रसिद्ध है—

तिरिया तेल, हमीर हठ चढै न दूजो वार।

फलपि = काटकर । सकबधी = साका करनेवाला । राहु इ० = जिसने अर्जुन के समान मत्स्यवेध करके द्रौपदी को जीता था। साका = कोई पराक्रम का कार्य, किसी पराक्रम के कार्य की स्मृति मे चलाया हुआ सवत् । ताका = उस ओर दृष्टि की । ओछा = छोटा । गहै = पकड सकता है ।

(१७०)

आपु जनाई = अपनी बडाई करके । देवगिरि = यादव-वश की राजधानी । छिताई = देवगिरि के राजा की कन्या, इसकी कथा छिताई-वार्ता काव्य मे है । बारा = देरी । पाहीं = पास । ताकर = उसका, परमात्मा की ओर सकेत । जेहि दिन इ० = काल की ओर सकेत । छेंकिहि = घेरेगा । हाथ इ० = हाथ कौन पकडेगा, कौन रोकेगा ? धाई = दौडकर । इसकदर = सिकन्दर । नाई = समान । मैंहूँ = मैने भी । अगमन = पहले ही ।

(१७१)

देव = हे महाराज । राता = लाल हो गया, क्रुद्ध हुआ । दुन्द घाव भा = डके पर चोट पड़ी, नगारे बजे । सकाना = शकित हो उठा । अरंभ = शोर । बजाई = बाजे बजाकर । पयाना = मजिल । पयान = प्रस्थान । मिलान = डेरा । पेट = शरीर में । हाथ = हाथ से । चापे = दबाये हुए ।

नरवर = मध्य भारत का एक स्थान, कछवाहो की प्राचीन राजधानी । झुराई = भय से सूख गया । दर = दल, सेना । दौरायी = दौडायी, जल्दी से भेजी । जाती = जाति । समुद्र = समुद्र के समान यवन-सेना । काघा = ऊपर लिया, धारण किया । पुरवहु साथ = साथ दो । पार = सकेगा । जौ लगि = जब तक मेंड बनी रहती है तब तक पेड सुखी हैं, मेंड़ के टूट जाने पर वाटिका (के पेडो) की रक्षा नही हो सकती । बारि = बाडी (या, पानी का वेग रोका नही जा सकता) । बीडा = पान का बीडा ।

(१७३)

राय = राजा लोग। परेवा = दूत। बाधहु धीरा = धैर्य धारण करें, आक्रमण न करें। बीरा = विदाई का पान, विदाई। टेका = उठाया। गरु = भारी। का = क्या। परै इ० = जो भार आ पड़ता है, उसे उठाता है।

(१७४)

नियरावा = निकट आ पहुँचा। असूझ = सब बातें अदृश्य हो गयी है, अब और कुछ नहीं सूझता।

सँजोऊ = तय्यारी करो। तबल = नगाड़े। अकूत = अपार। जुझाऊ = युद्ध के। तुखार = घोड़े। रीसा = बराबरी। पौरी = सीढ़ी के डंडे (चढ़कर)। आगे = अपने आगे। पाल = पासंग पर भी। काऊ = किसी को। खेवरे = खौर। खेह = धूल।

(१७५)

पखरे = झूलों वाले। भीर = भीड़। काढ़ी = निकाली, फहरायी। रैनि इ० = रात्रि के अंधकार से ढका हुआ। सूर = अलाउद्दीन। चाँद = रतनसेन। निकसि इ० = वीर बाहर निकल आये। अनी = सेना। दहुँ = न-जाने। कस इ० = कैसा होना चाहता है। जूझ = युद्ध।

(१७६)

अवाई = आना, आगमन। ओनइ आये = उमड़कर आये। दधि-उदधि = दो समुद्र। मेले = स्थापित किये। बाजहिं = भिड़ते हैं। तराहीं = नीचे। दर = सेना। चाँपि = दबकर। धर = धड़। बिलाहिं = विलीन हो जाते हैं।

(१७७)

दल = दल में। फार = फाड़, टुकड़े, हिस्से। काऊ = कभी। लोहे = हथियार। अघाऊ = पेट भरकर, प्रचुरता से। सलिल होइ =

पानी के समान। सकति = शक्ति भर। पोखि = पोषण करके। ओछ पूर इ० = ओछा (कम) या पूरा उसे जानेंगे जो परीक्षा के समय स्थिर रहेगा (युद्ध में पीठ नहीं देगा)।

(१६८-१७८)

चाद = रतनसेन। सूर = बादशाह। मोह कै = सामने। समूहा = शत्रु सेना की भीड़। निपातू = पतन, नाश। छातू = राज-छत्र। सँभारै = भार झेल सकता है। जाइ न लेखी = वर्णन नहीं की जा सकती।

फरैं इ० = फलती हैं, झड़ जाती हैं और नयी डालियाँ आ जाती हैं। अगिदाहु = अग्नि-दाह। बाक = विकट। गरुअ = भारी। नाकहि-नाक = एक-एक नाका।

(१८०)

अँबराव = आम के पेड़। फरे = उनमें फूल लग आये। अरदासैं = अरजी, खबरें। पछिउं = पश्चिम में हरेव देश (-वासी शत्रु) जो हार गया था अब सामने दृष्टि करके चढ़ आया है। जिन्ह इ० = जिन का माथा पृथ्वी पर था उनका माथा आकाश से जा लगा है, जो अधीन थे वे सिर उठाने लगे हैं। थाने = बादशाह के थाने उठ गये, सब लोग डरकर भागे आ रहे है। जिन्ह इ० = जिन मार्गों मे तिनके भी नहीं पड़ते थे (उगते थे) उनमे बेर और बबूल बढ़ आये।

(१८१-१८२)

आन = दूसरी ही। आनि = आकर। अगमन = पहले से। चिंता एक इ० = एक हृदय में दो स्थानों की चिंता उत्पन्न हो गयी। गढ़ इ० = गढ़ से उलझ गये हैं, और तभी छूटा जा सकता है। मेराव = मिलाप, संधि। पाहन = पत्थर का शत्रु पत्थर (हीरा) ही होता है, पत्थर को पत्थर ही काट सकता है। पान देइ बीरा = पान का बीड़ा देकर, मेल करके। सेंति = से। मेळ = भेद। पलटि इ० =

लौटकर रतनसेन के पास जाओ। मानहु सेऊ = सेवा स्वीकार कर लो। कहु = जाकर रतनसेन से कहो। भूरा कीन्ह = तोड़ा हुआ। ग्गहु = भोगो। समदन कीन्ह = विदाई के समय दिये। नग = रत्न। बगीठ = दूत। माना तुरत इ० = दूत का कहा संदेसा मान लिया।

(१८३)

जेवा = भोजन किया। गवना = चला। कवल सहाइ = कमलों के समान सहायकों को। सूर = बादशाह। पवँरि = पौरी। गाढ = विकट। फुर = सच्चा, वास्तव में।

(१८४)

फेरा कीन्ह = फिरता हुआ आया। दुवौ = दोनों। स्रवन लगे = कानों में बात कही। मूसि न जाइ = लूटा नही जाता, ठगा नही जाता। वाक्य=वाणी से। बूझा = पहचाना। मेर = मेल। कै फेर = फेरा डालकर, घुमा-फिरा कर। कृस्न वलिराज = विष्णु और राजा बलि-। छर-बाध = छल से बधन। मेर इ० = मेल को स्वीकार न कीजिये।

(१८५)

मद = नीच के साथ। बिखहारा = विष-नाशक।

(१८६)

दीरघ आयु = आपकी आयु बडी हो। तरई = तारागण। सेव = सेवा में। दिपा = प्रदीप्त हुआ। पदारथ = पदमावती। टेकै = पकड़ता है। छल = कपट से।

(१८७)

लावा = लगाया। आवा इ० = जब पदमावती झरोखे पर आवे। रख = दृष्टि। साजा = बना। सूर इ० = तारागण-रूपी दासियों ने जब सुलतान-रूपी सूर्य को देखा तो जहाँ चन्द्र-रूपी पदमावती थी वहाँ

आकर प्रकाश करने लगी अर्थात् दासियाँ पदमावती के पास गयी। जो छाह = जितनी छाया (ज्योति) है सब उसकी ही छाया है। कित = कहाँ।

(१८८)

बिगसै = चन्द्र का स्थान बताने पर कुमुदिनी विकसित हो जाती है। ससि = पदमावती। गढ़ी = बनाया। सरेखी = चतुर। परस इ० = सुन्दर पारस का सा स्पर्श हुआ। सोना = स्वर्णमय। रुख = (१) शतरंज का हाथी (२) सामना। सहुँ = सामने। झापा इ० = छिपा, गुप्त। भा इ० = (बादशाह) बेहोश हो गया। सोपारी इ० = सुपारी के टुकड़े निगलने मे छाती में रुक जाने से कभी-कभी एकबारगी पीड़ा होने लगती है जिससे आदमी बेचैन हो जाता है इसी को सुपारी लगना कहते हैं (शुक्ल)। सूर = अलाउद्दीन। ससि = पदमावती। करा = उस चन्द्रमा की कला; पदमावती का सौंदर्य।

(१८९)

कस = कैसे। काह = क्यो। बिलब = उठने मे देर हुई।

रहा इ० = पर्दा था भी और नही भी था, पदमावती दिखायी नही पड़ती थी पर दर्पण मे उसकी झलक दिखायी पड़ती थी। सरोवर = दर्पण। रहा पानि इ० = पानी था पर पानी नही था (पदमावती नही थी पर उसकी झलक थी), अथवा, पानी था पर पिया नही जाता था, पदमावती थी पर हाथ नही आती थी, अथवा वह हाथ मे ही था पर उसका पानी पिया नही जा सकता था। सरग = आकाश (पदमावती)। आइ = दर्पण-रूप सरोवर में प्रतिबिंबित होकर। धरत न आवा = पकड़ में नही आता था। करन्ह इ० = हाथो मे था पर हाथ मे नही आता था अर्थात् हाथ नही लगाया जा सकता था। तेहि = उस दर्पण रूप मंदिर में मैंने पदमावती-रूपी मूर्ति को देखा। बिनु तन = जो बिना (हाड़-मास के) शरीर की थी। बिनु = उसके बिना। होइ = समान। कित = कैसे। आछत = रहता। असाध = जो वश मे नही। यह तन

गान = यह [illegible] था [illegible]। [illegible] = [illegible] नहीं कर सकता, [illegible] [illegible]।

नोट— [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], प्रस्तावना पृष्ठ १४१ देखिये।

(१६१)

मोर मैं = मिथ (न्यायतः) मैं। [illegible] इ० = [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible]। [illegible] = [illegible]। [illegible] [illegible]। [illegible] = [illegible], [illegible]। [illegible] [illegible]। [illegible] = [illegible]। [illegible] [illegible] = [illegible]। [illegible] [illegible]। [illegible] = [illegible] [illegible]। [illegible] = [illegible]। [illegible] = [illegible]। माद् = [illegible]। [illegible] इ० [illegible] [illegible] क्यों करे ? गोउ = [illegible]। [illegible] [illegible]। [illegible] = [illegible]। [illegible] = [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] कामना नहीं करेगा जो [illegible] [illegible]। [illegible] = [illegible] गयी।

(१६२)

बिनाना = [illegible] हो गया। [illegible] = [illegible]। [illegible] = [illegible] पट गया, गल गया। दुंदुहि = दुन्दुभी। [illegible] - [illegible], [illegible]। [illegible] = दुन्दुभी। [illegible] = स्थिर।

(१६३)

दुहेली = दुखी। [illegible] - [illegible] की। प्रीति लागे = प्रेम किया (अब वे ही)। निबहुर = (१) [illegible] की [illegible] (२) जहाँ से कोई न बहुरे या लौटे। [illegible] - परलोक की ओर संकेत। [illegible] = जो [illegible]। गवनै = जाता है। [illegible] = कूप की भीतरी [illegible] से बिछुड़े हुए जल के समान। डोल इ० = वह धन्या नेत्र-रूपी डोल अश्रु-रूप जल से भर-भर के रोती है।

नीरे इ० = हे गम्भीर नीर के समान प्रिय। केलि = क्रीडा। हेराइ गयेउ = खो गये। सरोवर = सरोवर के समान प्रियतमा का। कै = करके, करता हुआ। नीरा = जल मे। तीरा = किनारे पर, पास। बेहरानी = बिखर गयी। छार = धूल मे। बिरह = विरह ने कंचन-से शरीर को रेती से रेत डाला। चून इ० = चूर्ण करके धूल में मिला दिया। कंचन इ० = जर्रा-जर्रा होकर धूल मे बिखर गया। छार सरीरू = यह शरीर धूल के समान उड रहा है। नीरू = हे नीर रूपी प्रिय। आकर उस उडती हुई धूल को मिला दो जिससे कंचन के कण फिर एकत्र हो सकें। बिथुरी = बिखरी हुई। अवतार = जन्म।

(१६४)

आगी = आग में। भँवर = (१) भौंरा (२) रसिक, प्रियतम। भुजग = रसिक, प्रिय। ठेघा = टोका। कान न किया = बात नही सुनी। पाहा = पास। सूर = (१) सूर्य (२) शूरवीर। भँवर = (१) भ्रमर (२) प्रियतम। छोरि कै = छुडा कर। सूर इ० = सूर्य के उदय होने पर भँवर कमल में से छुटकारा पाता है। पटोर = पट्टकूल, रेशमी वस्त्र। बुहारी = झाडू। सीस इ० = सिर को पैर बनाकर, सिर के बल चलकर। सिधारौ = जाऊँ। रतन = (१) रत्न (२) रतनसेन।

केसर = केशर वाला (वसंत)। नागेसरि = (१) नागेश्वर का फूल (२) नागमती। रस-रसना = रस को लेनेवाली जिह्वा।

(१६५)

बुझायी = समझाकर शांत की। दगध = जलन। उलटि इ० = गोरा-बादल का कथन। बार = द्वार पर। पारथ = अर्जुन, तुम युद्ध मे अर्जुन के समान हो, और कोई नही। रहै न राखा = रोकने से नही रुकती। खजूरी = खजूर जितनी ऊँची। पूरि = भर गयी। फाटा = फट गया। बेहरि = फटकर। बंदि = बंदीगृह मे। बंदि लेउँ = मैं बन्धन

लूँ। मुकरावौं = छुड़ाऊँ। सूरज = रतनसेन। कँवल = पदमावती। पाट = सिंघासन पर। महूँ = मैं भी। गवनब = जाऊँगी।

(१९६)

इहै = इसलिए। कोहाने=रूठे (क्रोध, कोह)। धरिहै = पकड़ लेंगे। तुरकाने = तुर्क लोग। मति = विचार (राजा का)। निग्रान = निदान; अन्त में। लीन्ह पान = बीड़ा लिया। केंहि इ० = पदमावती का कथन। सावत = सामत। जोड़ा = जोड़ी, बराबर की। सरवरि = उपमा। मेरावहु = मेरी जोड़ी को मिलाओ। लखाघर = लाक्षागृह। भीवँ = भीम ने। जरत = वैसे ही तुम जलते हुए स्तम्भ (रतनसेन) को बचाओ। जीउ = हृदय मे।

(१९७)

जसोवै = यशोमती, यशोदा, बादल की माता का नाम। पाया = पैर। बारा = बालक। जुझारा = लड़नेवाला, योद्धा। धीर = धैर्य शाली भी। जानमि = जान, समझ। आदि = बिलकुल। रनवादी = रण में गरजने वाला। तपा = क्रुद्ध होता है। तौ लगि = हाथियों का समूह तभी तक गरजता है जब तक सिंह का बच्चा नहीं गरजता। जुरौं = भिड़ूंगा। गवन = (१) प्रस्थान (२) गौना। पँवरि = पौरी, द्वार। गवने = चल दिये। अनल = भावी विरह की अग्नि। आजा = पहुँचा।

(१९८)

रहौं इ० = लज्जा करके चुप रह जाती हूँ तो प्रिय चले जायगे, यदि उनको पकड़ती हूँ (पकड़कर रखने का प्रयत्न करती हूँ) तो प्रिय मुझे ढीठ कहेंगे, खड़ी हुई चिन्ता मे पड़ी हूँ कि क्या करूँ, दोनो ही बातें कठिन बैठती है।

(१९९)

जेइ लाजा = जिस लज्जा के कारण। फेंटा = दुपट्टा। ताईं = लिए। गवन = गौना। साईं = स्वामी। अलक = केशपाश। फँदवार = फन्दा। पाँय = पैर।

(२००)

पुरुख-गवन = पुरुष के गमन के समय। गहा = पकड़ती है। गज-गामी = गजगामिनी। जो = यद्यपि। करुवाने = दुखने लगे। लागे परै = गिरकर पड़ने लगे। रोवँ = रोम। काहू = कभी। जूझ रन = युद्ध में जूझ जाने का निश्चय किया। सर-साज = चिता का साज (सती होने के लिए)।

(२०१)

मतैं = सलाह करते है। मत = सलाह, विचार। कीज = कीजिये। परै इ० = जिसमे धोखा न खाना पड़े। ससा सिंघ कहँ मारा = सिंह और खरगोश की प्रसिद्ध कहानी। राजा इ० = राजा के साथ छल किया। चडोल = पालकी। कुँवर = राजपूत, योद्धा। मजोइल कै = सजाकर। बिवान् = पालकी। बैठ इ० = उसमें एक लुहार बैठा जिसकी खबर सूर्य को भी न हुई। सुरंग = सुन्दर। ओहार = पालकियो पर पड़े हुए पर्दे। ओल = hostage। तुरि इ० = घोड़े साथ मे चले।

(२०२)

राजा इ० = जिसकी सुपुर्दगी मे राजा बंदी था अर्थात् बंदीखाने का अफसर। अगमना = पहले। टका = रुपया। अकोरी = रिश्वत। आइ = आयी। मोहि स्यौं = मेरे साथ। किल्ली = कुंजी। मंदिर = महल। सुलतानी = शाही। जेहि = जिसके हाथ मे।

(२०३)

जावत = जितनी। नखत तराई = सखियाँ। जेति = जितनी। राजा = राजा को। छूछि इ० = जो घड़ी खाली थी उसे विधाता ने फिर भर दिया अर्थात् अच्छी घड़ी फिर लौटी। बंदि = बन्धन। निकसि पालकियो मे से निकलकर। तीख = तेज। टेकी = पकड़ी। बागा = लगाम। जिउ ऊपर = मरने को तय्यार होकर। ससि और नखत =

पदमावती और उसकी सहेलियां । छर कै ३० = इन्ह कन्ह्के जिन्हें ग्रहण-ग्रस्त किया था वे ग्रहण लगाकर जा रहे है ।

(२०४)

लेइ राजा = राजा को लेकर । मिरिग = मृग अर्थात् बादशाह के लोग । गोहारी = पुकार । कारी = कालिमा, अन्धकार (अपार सेना के कारण जगत मे अधेरा हो गया)। लोपत भानू = सूर्य को ग्रस्त करता हुआ ग्रहण आ रहा है। अब = अब यही गेंद है और यही मैदान है। गोइ = चौगान नाम के खेल की गेंद। मा जोरा = प्रबल होकर, जोर से। वह चौगान = देखें तुर्क वह चौगान का खेल कैसा खेलते है। मैदान = रणक्षेत्र-रूपी चौगान खेल के मैदान मे। चौगान = चौगान खेल का लंबा डंडा जिससे गेंद चलायी जाती है। सौह = सामने होकर। हाल = हल्ला, हलचल।

(२०५)

अगमन होइ = आगे आकर। भरी = पूरी आयु पा ली। भूँजी = भोग ली, जीवन के सुख भोग लिये। पूजी = पूरी हो गयी। मन बूझी = मन मे समझकर, मन मे धीरज धरकर। समदि = विदाई लेकर, विदाई का मिलन मिलकर। उलटि = लौटकर। खेत = रणक्षेत्र। पूरुख = आदमियो को, योद्धाओ का। चाव = उत्साह। सुलतानी = सुलतान का। मसि = अधकार। दिन = दिन मे ही।

(२०६)

ओनयी = उमडी। छूटहि = बान छूटते है मानो मेघो की झडी लगी है। सहसौं = हजारो ने ही। बूझ = युद्ध का पहाड सा भार कधे पर किया। बाग = घोडे की लगाम। मोर = पीछे मोडते है। अधर ह० = धड (कबध) आकाश मे वार करते हैं। लोटहिं = धड-के धड यहाँ-से-वहाँ तक लोट रहे हैं। निनारं = बिलकुल, सर्वत्र। रुहिर = रुधिर में। माते = मतवाले बने हुए। भारत = युद्ध। निबरे = समाप्त हुए।

(२०७)

नियर आ = निकट आ गया। देख = देखा। बूझा = समझा। कोंपि = वह सिंह गोरा क्रुद्ध होकर सामने युद्ध में जा भिड़ा। ठटा = ठाट, झुंड। घटा = बादलों का झुंड। करवारू = तलवार। टूटै = कट जाता है। निनारे = अलग-अलग। माठ मजीठ = मजीठ के मटके (मजीठ का रंग लाल होता है)। चाचरि = होली का नाच। आगि लावा = होली जला दी (रुधिर अग्नि ज्वाला के समान दिखायी पड़ता है)। धूका = जिस पर दौड़कर झुका। रुहिर = लोहू से। भभूका = अगारे सा (लाल)। हाथ करहु = पकड़ लो। रतन = रतनसेन। पदारथ = पदमावती।

(२०८)

छेका = घेर लिया। घू जत = गरजता हुआ। टेका = पकड़ा। पलटि = जहाँ एक बार पहुँच जाता है वहाँ दुबारा लौटकर नहीं आता। बोलै बाहा = गोरा नहीं बोलता, उसकी भुजाएँ ही बोलती हैं, ललकार का उत्तर वह भुजा से प्रहार करके देता है। धरी = निश्चित समझ ली। जाज = जाजदेव, एक वीर जो रथभौर के चौहानवंशीय राजा हम्मीरदेव यहाँ था। जगदेव = प्रसिद्ध परमार-वंशीय वीर जो अपनी युद्धवीरता और दानवीरता के लिए विख्यात है। केऊ = कोई। मेला = डाल सकता है। धरावा= पकड़वाता है, पकड़ में आता है। घिसियावा = घसीटे। मसि = कलंक। गोरा इ० = गोरा और कलंक का विरोधाभास ध्यान रखने योग्य है। रुहिर इ० = रुधिर से, प्राण देकर ; रुधिर से धोना (साफ करना) विलक्षणतापूर्ण और विरोधाभास-मय है। रात = (१) लाल (२) निष्कलंक, उज्ज्वल।

(२०९)

सरजा = बादशाह का एक सरदार जो सिंह की सवारी करता था। बाजा = भिड़ा। बरियारु = बलवान। साग = भाला। काढेसि

हुमकि = जोर से वापिस खीची । खसी = गिरी । कहेसि = गोरा ने कहा । अत = अत मे । अव = अव पृथ्वी पर पडना है । परना = गिरना । अत त = आखिर तो । खसे = गिरने पर । खेह = धूल । घाऊ = प्रहार, वार । परा इ० = गोरा की तलवार का वार साग पर ऐसा पडा मानो निहाई पर पडा । डाँडा = खडग । उठी = जैसे ही खडग पडा वैसे ही आग जल उठी । गाजा = वज्रपात । हठि = हठ-पूर्वक । सिघ-सदूर = सिह और शार्दूल, गोरा और सरजा । लागि = प्रतिद्वदितापूर्ण मुठभेड ।

(२१०)

तस बाजा = ऐसा आघात पडा । ठाठरि = ठठरी, अस्थि-पजर । स्यो = सहित । नियराना = निकट जा पहुँचा । वरी = वली । बडाई = बडप्पन, अधिकता, बल की विशेषता । सुर इ० = देवताओ ने उसे पान दिया, स्वागत किया । पान = स्वागत का बीडा ।

(२११)

झूरना = सूखना, दुखी होना, रोना, विसूरना । गा पूरी = भर गया (आनन्द-जल से) । अद्रा = आर्द्रा नक्षत्र (मे सूर्य के) आने पर वर्षा का आरभ होता है । हुलास = उल्लास । सोई = वैसा ही । जस = जैसे, मानो । अजोरा = प्रकाश । चाँद = पदमावती । सूरू = रतनसेन । गोहन = साथ । रानी = रानियाँ, सामन्तो की स्त्रियाँ । जह ताई = जितनी । कहँ = को, के लिए ।

आनी = लायी । तुरय इ० = घोडे के पैर हाथी से दबाये । गज-गवन = हाथी के समान मस्त । सेंदुर तिलक = सिंदूर का तिलक रूपी । अहा = था । आकुस = गर्व-रूप का अकुश । काछि-काछि = कमर बाँधकर । मजूसा मेला = तुमने मेरे शरीर-रूपी पिंजर मे प्राण डाले (शुक्ल) । छात=राजच्छत्र, राज्य । औधारा = टारना । हनुवत होइ = जैसे हनुमान अर्जुन के रथ

की ध्वजा पर बैठे थे । नेत = रेशमी चद्दर । खाट = मंच पर । पाट = सिंहासन ।

(२१२)

नारि = नाड़ी, प्राण । छुरै = छलने को । ग्राहु = हूं । साधा=भरा । कहुँ इ० = कमल कहीं शिकार करने नहीं जाता । चहै इ० = चाहे भौंरा भी चक्कर लगावे । बुझाइउँ = मैंने समझाया । मुठि = अत्यन्त । फूल बास इ० = जैसे फूल के अंदर सुगंधि, और दूध के अंदर घी, इकट्ठे मिले हुए निकट ही रहते हैं वैसे ही प्रियतम को शरीर-रूप घर में रख कर जीवित रही । अगिन कहँ खाइ = संताप सहती हुई ।

(२१३)

चालू = चाल, करतूत । सालू = काँटा । तेहि इ० = मुर्गा उसकी बराबरी की इच्छा करता है । तमचूरु = मुर्गा । धरि आनौं = देवपाल को पकड लाऊँ । झाका = देखा नहीं जाता । रोपा = डट गया । अनी = सेनाएँ । लोहा = युद्ध । असूझ = अपार । निवरे = समाप्त हुए । एक इ० = केवल दोनों में द्वन्द्वयुद्ध बाकी रह गया ।

(२१४)

जूझ एकौझा = अकेलों का, एक-से-एक का युद्ध, द्वन्द्व-युद्ध । मेलेसि = मारी । चला मारि इ० = देवपाल राजा को मारकर कर चला । निनारा = अलग । साधा = बदला ले लिया । फिरा = लौटा । हरा = क्षीण हुआ । लोहै धरा = हथियार छोड दिया । मझ = बीच रास्ते में ही । कारी = भयंकर । को काकर = कौन किसका है । आनी गइ = लायी गयी ।

(२१५)

सर = चिता । गोहन = साथ । आदि इ० = आदि से अन्त तक । छोरी = छुडायी, खोली । काह = क्या । अथि-निअथी = सुख-दुख-मय, अर्थ-अनर्थ पूर्ण । राती = अनुरक्त । सरग = आकाश । रतनार = चिता

की ज्वाला से, मानो उनके अनुराग से। उवा = उदय हुआ जनमा। अथवा = अस्त हुआ।

(२१६)

राम औ सीता = अर्थात् रतनसेन और पदमावती। अखारा = दरबार मे। होइगा = रात के समान अन्धेरा हो गया। पिरथमी = कहा कि पृथ्वी झूठी है। सगरिउ = सारे ही। पवरि = पौरी, दरवाजा। इसलाम = मुसलमानी, मुसलमानो का अधिकार।

(२१७)

एहि = इस (कथा) का। तर-उपराही = नीचे ऊपर। निरगुन = परमात्मा। वाचा = बचा। पारहु = सको।

(२१८)

कबि = कविता, कथा। जोडी = रची। लाइ = लेकर, लगाकर। लेई = चिपकाने का लेप। गाढी इ० = गहरे प्रेम के साथ। भेई = भिगोकर। मकु = (वाक्यो को जोडनेवाला एक अव्यय जो राजस्थानी में मको के रूप मे अब भी प्रयुक्त होता है) कि, कदाचित्। चीन्हा = निशानी। उपराजा = उपायी। केइ = किस ने। जस बेचा = यश को खोया। मोल लीन = कमाया। हम्ह = हमे। दोइ बोल = दो शब्दो में।

सहायक पुस्तकों की सूची

१—जायसी-ग्रंथावली — रामचन्द्र शुक्ल
(नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी)

२—पदमावत पूर्वार्ध सटीक — मुंशीराम शर्मा
(मनोहर पब्लीकेशन्स, चौक, कानपुर)

३—पदमावत सटीक — वासुदेवशरण अग्रवाल
(साहित्यसदन, चिरगाँव, झाँसी)

४—जायसी और उनका पदमावत—दानबहादुर पाठक और जीवनप्रकाश जोशी
(हिन्दी साहित्य संसार, नयीसड़क, दिल्ली)

५—सूफी महाकवि जायसी — जयदेव
(भारत प्रकाशन मंदिर, अलीगढ़)

६—पदमावत का काव्य सौन्दर्य— शिवसहाय पाठक
(हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर, बम्बई)

७—सूफी साधना और साहित्य— रामपूजन तिवारी
(ज्ञानमंडल, वाराणसी)

८—पदमावत का अंग्रेजी अनुवाद— A G Sherif
(एशियाटिक सोसाइटी, बंगाल)

९—जायसी के परवर्ती हिन्दी सूफी कवि—सरला शुक्ल